पुराण और इतिहास

भारतीय इतिहास संकलन समिति

गोरक्षप्रान्त, उत्तर प्रदेश

सम्पादक मण्डल

प्रदीप कुमार राव

मिथिलेश कुमार तिवारी

ओमजी उपाध्याय

रत्नेश कुमार त्रिपाठी

महेश नारायण त्रिगुणायत

इन्द्रा पब्लिकेशन्स

नयी दिल्ली-गोरखपुर

ISBN: 978-81-921516-03
पुराण और इतिहास
प्रथम संस्करण, गुरुपूर्णिमा, 2012
© भारतीय इतिहास संकलन योजना
परामर्श
प्रो. माता प्रसाद त्रिपाठी
प्रो. अशोक श्रीवास्तव
श्री बाल मुकुन्द पाण्डेय
सम्पादक मण्डल
प्रदीप कुमार राव
मिथिलेश कुमार तिवारी
ओमजी उपाध्याय
रत्नेश कुमार त्रिपाठी
महेश नारायण त्रिगुणायत

मूल्य रु. ५०/-

प्रकाशक
इन्द्रा पब्लिकेशन्स
• जी-19, द्वितीय तल; विजय चौक
लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092 : +91-9911042001
• इन्द्रा निकेतन, दक्षिणी हुमायूँपुर
गोरखपुर, 273001, +91-7668402925
e-mail: indrapublications@gmail.com

मुद्रक
कमल ऑफसेट प्रिन्टर्स
दुर्गाबाड़ी, गोरखपुर-273001

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते।
वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे।।
तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्।
श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम्।।
मुनीन सूर्यप्रभान् धर्मान् पाठयन्तं सुवर्चसम्।
नानापुराणकर्तारं वेदव्यासं महाप्रभम्।।

(बृहद्धर्मपुराण, १.१.२३-२५)

जो तपोनिष्ठ, मुनीश्वर, अमित तेजस्वी, महाकवि, राग से सर्वथा शून्य तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धि से संयुक्त एवं महामुनि शिवस्वरूप, श्यामवर्ण के हैं, जिनका मुखमण्डल जटाजूट से सुशोभित है, और जो धर्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं तथा सूर्य के सामान प्रभा वाले मुनियों को धर्मशास्त्रों का पाठ पढ़ाने वाले हैं, ज्योतिर्मय हैं, अत्यन्त कान्तिमान हैं, सभी पुराणों तथा उपपुराणों के रचयिता हैं, उन महाप्रभु वेदव्यास को बारम्बार नमस्कार है। □

साम्राज्यवादी एवं साम्यवादी इतिहासकारों द्वारा बन्धक बनाये गये भारतीय इतिहास को वैश्विक इतिहास के मंच पर तथ्यों-प्रमाणों के साथ मुक्त कराकर भारत के वास्तविक इतिहास लेखन को समर्पित प्रतिष्ठित, तपस्वी एवं राष्ट्रभक्त इतिहासकारों-

प्रो0 शिवाजी सिंह
प्रो0 सतीशचन्द्र मित्तल
डॉ0 राजेन्द्र सिंह कुशवाहा
प्रो0 ठाकुर प्रसाद वर्मा
डॉ0 कुँवर बहादुर कौशिक

के दीर्घायु होने की कामना के साथ उनके शुभाभिनन्दन में समर्पित।

पुराण और इतिहास

सम्पादकीय

सामाजिक-मानविकी विषयों में 'इतिहास' विषय का अनेक दृष्टियों एवं कारणों से अपना अलग महत्त्व है। अन्य विषयों से यह विषय और महत्त्वपूर्ण इसलिए हो जाता है कि यह विषय सभी राष्ट्रों-समाजों का अस्तित्व, उनकी पहचान, उनकी विरासत का उद्‌घाटन करते हुए उस राष्ट्र-समाज के मान-सम्मान, उसकी श्रेष्ठता-न्यूनता आदि का विवेचन प्रस्तुत करता है। इतिहास के ही पन्नों से वह राष्ट्र एवं समाज अपने पूर्वजों, अपने अतीत एवं अपनी विरासत की श्रेष्ठतम विशेषताओं पर गर्व करता है तो कमियों से सीख लेता है। अतीत से भी प्रशस्त वर्तमान के निर्माण के लिए वह राष्ट्र एवं समाज अपने अतीत की विशिष्टताओं से प्रेरणा ग्रहण करता है। सभ्यताओं के श्रेष्ठतावादी संघर्ष में इन्हीं कारणों से 'इतिहास' महत्त्वपूर्ण हो जाता है। परिणामतः 'इतिहास रचना' में इतिहासकार एवं उसकी दृष्टि की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इतिहास क्या है? इतिहास लेखन में तथ्य एवं इतिहासकार की भूमिका क्या है? इन प्रश्नों पर अनवरत विचार होता रहा है। इतिहास की मनगढ़न्त व्याख्या करने वाले इतिहासकार भी यही दावा करते हैं कि इतिहास विज्ञान है और इतिहास लेखन की पद्धति वैज्ञानिक होनी चाहिए।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के समर्थक साम्यवादी इतिहासकारों की जमात भी यही ढोल पीटती है, किन्तु वास्तविकता में राज्याश्रित इतिहास, पाल्य इतिहासकारों द्वारा राज्य की रुचि, उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित दृष्टि के अनुसार खींचे गये साँचे के अनुरूप तथ्य संग्रह कर लिखा गया इतिहास होता है, क्योंकि राज्याश्रित इतिहास लेखन शासन द्वारा पहले से तय किये गये एजेण्डे के अनुरूप होता है। साम्यवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध इतिहासकारों पर भी यही बात लागू होती है। यद्यपि कि सच यही है कि 'इतिहास' विज्ञान नहीं है, वह विज्ञान हो भी नहीं सकता, उसका

विज्ञान होना ही उसे अप्रासंगिक बना देता है। विज्ञान भौतिक पदार्थों की रचना का शास्त्र है, इतिहास मानव रचना का शास्त्र है। विज्ञान यन्त्र बनाने का शास्त्र है तो इतिहास चेतना निर्मित करने का शास्त्र है। विज्ञान सभ्यता-निर्मिति का शास्त्र है तो इतिहास संस्कृतियों की निर्मिति एवं उसकी सातत्यता बनाये रखने का शास्त्र है। वर्तमान समाज को गढ़ने के लिए अतीत से मार्गदर्शन प्राप्त करने का प्रेरणा-स्रोत होना ही इतिहास को प्रासंगिक बनाता है। ऐसे में इतिहास रचना के अन्तर्गत समकालीन इतिहासकार द्वारा तथ्यों पर आधारित अतीत के राष्ट्र-समाज एवं उसके अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का वह वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना होता है जिससे कि वह राष्ट्र-समाज अपना वर्तमान अतीत से भी बेहतर गढ़ सके और वर्तमान से भी बेहतर भविष्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर सके अथवा उसका सपना देख सके। अतः किसी भी राष्ट्र-समाज द्वारा इतिहास की रचना इसी दृष्टि से की जानी चाहिए तभी उसकी प्रासंगिकता है।

अतः इतिहास रचना में जितना महत्त्वपूर्ण 'तथ्य' है उतना ही महत्त्वपूर्ण भूमिका 'इतिहासकार' की है। वह शास्त्र जिसकी रचना में मानव मस्तिष्क और चेतना का उपयोग होगा, वह शास्त्र रचने वाले व्यक्ति की सोच, उसके मानस के प्रभाव से अछूता रहेगा यह काल्पनिक हो सकता है वास्तविक नहीं। इतिहासकार के दृष्टि की प्रभावी भूमिका के कारण ही 'इतिहास लेखन' एवं 'इतिहास रचना' सदैव विवादास्पद रही है। विशेषतः 'भारत का इतिहास' अंग्रेज शासकों, उनके पाल्य इतिहासकारों एवं स्वतन्त्र भारत में उनके उत्तराधिकारी इतिहासकारों द्वारा 'विशेष उद्देश्य' एवं 'विशेष दृष्टि' से लिखा गया। रही-सही कमी पूरा किया स्वतन्त्र भारत के साम्यवादी इतिहासकारों की दृष्टि ने। वस्तुतः भारत का इतिहास पाश्चात्य के श्रेष्ठतावाद की कुण्ठा एवं साम्यवादी इतिहासकारों के ऐतिहासिक भौतिकवाद का शिकार हुआ। परिणामतः भारत का विपुल धार्मिक साहित्य, यथा- वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृतियाँ, अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत, आदि का ऐतिहासिक

स्रोत के रूप में उपयोग इतिहासकारों द्वारा सुविधानुसार किया गया। अर्थात् यदि भारत को गाली देना है तो उपर्युक्त ग्रन्थ के सन्दर्भित उल्लेख तथ्य हैं, किन्तु भारत की गौरव-गाथा के सन्दर्भ में उन्हीं ग्रन्थों के उल्लेख इन इतिहासकारों द्वारा कपोल-कल्पित घोषित किये जाते रहे। एक ही ग्रन्थ एक सन्दर्भ में 'प्रमाण' बना तो दूसरे सन्दर्भ में वही ग्रन्थ 'बकवास' कह दिया गया। इतिहासकारों की इसी दृष्टि-दोष के शिकार 'भारतीय इतिहास' के अनेक उज्ज्वल अध्याय यद्यपि कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों के प्रयासों से प्रकाशित हुए तथापि भारत का सम्पूर्ण इतिहास आज भी दोषपूर्ण है, इतिहासकारों के दृष्टि-दोष का शिकार है। भारत की वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को प्रेरणा देने की दृष्टि से असफल है।

ब्रिटिश शासकों एवं साम्राज्यवादी-साम्यवादी इतिहासकारों द्वारा भारत का सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक जीवन का इतिहास जान-बूझकर विकृत किया गया। इतिहास रचना में तथ्य को महत्त्वपूर्ण मानने वाले, तथ्याधारित प्रामाणिक इतिहास-रचना की घोषणा करने वाले इतिहासकारों ने ही 'तथ्यों' के चुनाव, उनकी व्याख्या में अपनी दृष्टि को महत्त्वपूर्ण माना और जो चाहा उसके अनुसार तथ्यों का संकलन किया। भारत के विपुल साहित्य से प्राप्त उज्ज्वल पक्षों को परम्परा, प्रगति-विरोधी एवं कल्पित कहकर उन्हें भारतीय इतिहास का हिस्सा ही नहीं बनने दिया। डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'पश्चिमी एशिया एवं ऋग्वेद' की भूमिका लिखते हुए श्री श्याम कश्यप ने ठीक ही लिखा है कि- "इधर हम लोग समकालीनता के प्रति उत्साह से कुछ इस कदर आक्रान्त हैं कि इतिहास और परम्परा का तिरस्कार 'आधुनिक' होने की प्रथम शर्त बन गया है। साहित्य, कला, संस्कृति से लेकर शिक्षा तक सभी क्षेत्रों में इसी फैशन की छूत फैली हुई है।" भारतीय इतिहास को भारत-विरोधी दृष्टि में कैद करने वाले इतिहासकारों की भूमिका को प्रकारान्तर से रेखांकित करते हुए प्रो. शिवाजी सिंह अपनी पुस्तक 'प्राग्वैदिक आर्य और सरस्वती-सिन्धु सभ्यता' के आमुख में हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं- "हमारी

इतिहास-चेतना का निर्माण जिस इतिहास के आधार पर होता है उसके दो रूप हैं। एक इतिहास वह है जो किसी देश-काल के सन्दर्भ में घटित हुआ है। यह ऐतिहासिक यथार्थ है, इतिहास का सच, जो सदैव एक ही होता है और बदला नहीं जा सकता। दूसरा इतिहास यह है जो इतिहासकारों द्वारा लिखा गया है या लिखा जा रहा है। यह विविध प्रकार का दिखाई देता है और अक्सर संशोधित होता रहता है। घटित और लिखित इतिहासों के बीच इस विसंगति से अक्सर सम्भ्रमात्मक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिनसे इतिहास-चेतना के समुचित निर्माण में बाधा पड़ती है। किन्तु यह विसंगति क्यों, ऐतिहासिक यथार्थ एक, पर व्याख्याएँ अनेक क्यों?.....

इतिहास निरूपण के सर्वोपरि नियामक तथ्य और प्रमाण हैं, इतिहासकार नहीं। इतिहास की स्वाभाविक संरचना में व्यतिक्रम तब प्रारम्भ होता है जब कोई इतिहासकार या इतिहासकारों का कोई समूह एक न्यायाधीश का रूप धारण किये हुए भी एक अधिवक्ता की तरह आचरण करने लगता है, जिसका उद्देश्य सत्य का निश्चयन नहीं अपितु अपने ग्राहक का पक्षपोषण होता है। वह तथ्यों और प्रमाणों की अनदेखी करने, उन्हें दबाने अथवा तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का अभ्यस्त हो जाता है। फलतः इतिहास का विरूपीकरण होने लगता है। भारतीय इतिहास में जो विकृतियाँ दृष्टिगत होती हैं वे सब इन्हीं 'अधिवक्ता छाप' इतिहासकारों की देन है। राजनीतिक स्वार्थों और पूर्वाग्रहों से अभिप्रेरित एवं प्रतिबद्ध इन इतिहासकारों में प्रमुख हैं एक तो वे उपनिवेशवादी-मिशनरी लेखक जिन्होंने भारत में अपने राजनीतिक-धार्मिक वर्चस्व की स्थापना के लिए इस देश के इतिहास को विकृत किया, और दूसरे वे मार्क्सवादी विचारक जिनकी मताग्रही संकीर्ण सोच यह स्वीकार नहीं कर पाती कि मूलतः आध्यात्मिक नींव पर आधारित भारतीय संस्कृति के इतिहास की सम्यक व्याख्या भौतिकवादी दृष्टि से सम्भव नहीं है। अधिवक्तृता में ये इतिहासकार पारंगत रहे हैं और उन्हें राज्याश्रय भी प्राप्त रहा है। समाज में वे प्रायः आधिकारिक इतिहासकारों के रूप में प्रायोजित रहे हैं।"

वस्तुतः ब्रिटिश भारत में उपनिवेशवादी-मिशनरी इतिहासकारों को राज्याश्रय प्राप्त था तो स्वतन्त्र भारत (नेहरू-इन्दिरा-सोनिया के भारत) में मार्क्सवादी इतिहासकार राजकीय संरक्षण में पुष्पित-पल्लवित हैं और भारत के सभी प्रमुख शिक्षण-प्रशिक्षण एवं उनसे सम्बन्धित संस्थानों पर वर्चस्व बनाए हुए हैं। उनके प्रभाव शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाये जाने वाले इतिहास के पाठ्यक्रमों के निर्माण एवं इतिहास रचना में आज भी देखा जा सकता है। सनातन युग से भारतीय समाज में आस्था के केन्द्र वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियों की इनके द्वारा मनमानी व्याख्या- उदाहरणार्थ वैदिक आर्य गोमांस खाते थे, हनुमान एक बन्दर था जो लंका के घरों में ताक-झांक करता था, इत्यादि- कर प्रगतिशील एवं धर्मनिरपेक्ष इतिहासकार होने का स्वांग रचा जाता है। इतिहास को वैज्ञानिक, तथ्यपूर्ण, निष्पक्ष होना चाहिए, का डंका पीटने वाले इन इतिहासकारों द्वारा ही 'भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्' की सरकारी संस्था पर कब्जा कर 'भारतीय इतिहास' लेखन को 'हिन्दू विरोध' या यह कहा जाय कि 'भारत विरोध' पर केन्द्रित कर दिया गया। इसी अभियान के साथ 'साम्यवाद' के पक्षधर इतिहासकारों एवं राजनीतिक शक्ति का एक ऐसा संघ गठित एवं विकसित हुआ, जिसमें सम्मिलित होना ही आधिकारिक इतिहासकार होने का प्रमाण-पत्र पाना था। परिणामतः 'भारत के इतिहास लेखन' में भारतीयता विरोधी तथ्यों को ढूँढ़ने अथवा तथ्यों की भारतीयता विरोधी व्याख्या करने की होड़ मची रही। इन तथ्यों की पुष्टि अरुण शौरी द्वारा लिखी गयी पुस्तक- एमिनेन्ट हिस्टोरियन्स, देयर टेक्नॉलॉजी, देयर लाइन, देयर फ्राड - के प्रामाणिक विवरण से स्पष्ट हो जाता है। अरुण शौरी ने भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् की स्थापना से लेकर सन् 1998 तक इस संस्था को गिरवी रखकर साम्यवादी विचारधारा पर केन्द्रित इतिहास रचना करने वाले तथाकथित आधिकारिक इतिहासकारों का सरकारी दस्तावेजों के प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। ये तथ्य ही 'भारतीय इतिहास' की रचना करने एवं उन्हें पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किये

जाने की योजना-रचना बनाने वाले कर्णधार इतिहासकारों का वास्तविक चेहरा सामने ला देते हैं और तब यह बात और साफ हो जाती है कि भारत का इतिहास जान-बूझकर षड्यन्त्रपूर्वक तोड़-मरोड़कर भारत-विरोधी सांचे में लिखा गया। डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'पश्चिमी एशिया एवं ऋग्वेद' की भूमिका में इसी बात को स्वीकारते हुए श्याम कश्यप लिखते हैं- "भारत पर आर्यों के आक्रमण के गलत सिद्धान्त..... की नींव पर ही सारी कपोल-कल्पनाओं के महल खड़े किये गये हैं। इस खोखली नींव के एक बार भहराकर गिर जाने के बाद प्राचीन भारत के इतिहास का सारा रूपवादी ढाँचा ध्वस्त हो जाता है और तथाकथित सर्वमान्य धारणाएँ कोरी दन्तकथाएँ साबित हो जाती हैं।.....ये धारणाएँ और मान्यताएँ कभी सर्वमान्य रहीं भी नहीं। यह बात दीगर है कि भारत के स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के तमाम पाठ्यक्रमों से लेकर इतिहासवेत्ताओं तक आमतौर से इन एकपक्षीय धारणाओं को ही सर्वमान्य बताकर इतिहास का एक गलत और हास्यास्पद ढाँचा सामने रखा जाता रहा है।.....इन धारणाओं के पीछे उपनिवेशवादी स्वार्थों की निहित भूमिका रही है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऋग्वेद की मनमानी व्याख्या ...के प्रयास किये जाते रहे हैं। यह सभी कुछ एक सोचे-समझे और सुनियोजित साम्राज्यवादी षड्यन्त्र का हिस्सा रहा है।" अर्थात् ब्रिटिश शासन में जो भूमिका साम्राज्यवादी इतिहासकारों की थी स्वतन्त्र भारत में वही भूमिका साम्यवादी इतिहासकार निभा रहे हैं। परिणामतः आजादी के साढ़े छः दशक बाद भी भारत का पूर्वाग्रह रहित भारत केन्द्रित वास्तविक इतिहास भारत की सरकारी अनुदान से संचालित संस्थाओं द्वारा नहीं लिखा जा सका। अपितु इसके विपरीत भारतीय जनता के खून-पसीने की कमाई पर मौज करने वाले सरकारी संरक्षण प्राप्त इतिहासकारों के एक गिरोह द्वारा 'वैज्ञानिक इतिहास लेखन' के नाम पर भारत के अतीत का माखौल उड़ाने वाला इतिहास लिखा जाता रहा। इन तथाकथित प्रतिष्ठित तथा प्रगतिशील इतिहासकारों द्वारा 'हिन्दू विरोधी-मुस्लिम समर्थक' इतिहास का ढाँचा तैयार किया गया। इनके द्वारा

लिखित 'भारत के इतिहास' से यह बात सिद्ध हो गयी कि 'इतिहास लेखन' में इतिहासकारों की भूमिका तथ्य और प्रमाण से महत्त्वपूर्ण है। इतिहासकार का 'मानस' अथवा उसकी षड्यन्त्रकारी दृष्टि तथ्यों की व्याख्या अपने अनुरूप कर इतिहास का स्वरूप बदल सकती है। कई बार ऐसा जान-बूझकर किया जाता है तो कभी-कभी ऐसा अनजाने में इतिहासकार के मानस के अनुसार होता है। इस बात को और स्पष्ट रूप से समझाने के लिए एक प्रसंग का उल्लेख प्रासंगिक होगा। ज्योतिष शास्त्र पर चर्चा के दौरान एक बार श्री अजय ओझा ने कहा कि ज्योतिष की गणनाओं का निष्कर्ष ज्योतिषी के सोच, उसकी समझ अथवा उसकी दृष्टि पर निर्भर करता है। जैसे कि एक बार ब्रह्मा ने अपने दो शिष्यों बृहस्पति और शुक्र को दर्शन एवं ज्योतिष का ज्ञान कराने के बाद व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु एक गाँव में भेजा। दोनों गाँव में घूमते-घूमते एक बुढ़िया के दरवाजे पर रुके। बुढ़िया का बेटा ज्ञानार्थ काशी गया हुआ था। बुढ़िया यह जानना चाहती थी कि उसका बेटा घर कब लौटेगा। दोनों ऋषियों को देखकर बुढ़िया ने अपना प्रश्न किया और ऋषिद्वय को पानी पिलाने हेतु कुएँ से जल निकालने लगी। जल निकालते समय रस्सी टूट गयी और जल-पात्र कुएँ के पानी में जा गिरा। इस घटना के साक्षी बृहस्पति ने कहा कि- तुम्हारा बेटा अब इस लोक में नहीं है जबकि शुक्र ने कहा कि तुम्हारा पुत्र ढाई घड़ी में तुम्हारे पास आ रहा है। दोनों का निष्कर्ष रस्सी के टूट जाने पर ही आधारित था। बृहस्पति का कहना था कि रस्सी टूट गयी अतः तुमसे तुम्हारे बेटे का सम्बन्ध टूट चुका है जबकि शुक्र कह रहे थे कि जल से उसका हिस्सा दूर खींचा जा रहा था किन्तु अलग हुआ जल रस्सी टूट जाने से अपने उद्‌गम में तुरन्त जा मिला। तथ्य एक ही है निष्कर्ष दो हैं। यद्यपि कि इस दो निष्कर्ष में षड्यन्त्र नहीं है। ऐसे ही इतिहासकारों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो नासमझी में अथवा दशकों से बनाये गये विकृत इतिहास के साँचे से भ्रमित अनजाने में षड्यन्त्रकारी इतिहासकारों के गिरोह का समर्थक हो जा रहा है। भारतीय इतिहास लेखन के समक्ष यह कठिन चुनौती है।

भारतीय इतिहास को विकृत करने वाले गिरोहबन्द इतिहासकार भारत का पूर्वाग्रह मुक्त वास्तविक इतिहास लिखेंगे यह कल्पना ही बेमानी है किन्तु बड़ी संख्या में इतिहासकारों का वह समूह जो इनके भ्रमजाल का शिकार है, उन्हें इनके षड्यन्त्र से मुक्त कर भारत का तथ्यपूर्ण, वास्तविक एवं भारत केन्द्रित इतिहास लेखन की ओर प्रेरित किया जा सकता है। यह कार्य संगठित होकर योजनापूर्वक दीर्घकालिक नियोजन के साथ ही सम्भव है। भारतीय इतिहास संकलन योजना ने इस दिशा में भगीरथ प्रयास प्रारम्भ किये हैं। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के प्रयास का परिणाम भी सामने आ रहा है। भारतीय इतिहास का प्रतिमान बदलने लगा है तथापि इस दिशा में अभी बहुत दूर तक चलना शेष है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारतीय इतिहास लेखन की इन्हीं उपर्युक्त विसंगतियों का शिकार भारत के विपुल ऐतिहासिक स्रोत पुराण हुए। पुराणों में अपनी विशिष्ट शैली में विविध कथानकों के माध्यम से प्राचीन भारत का इतिहास सुरक्षित है। साम्राज्यवादी एवं साम्यवादी इतिहासकारों ने अपनी दृष्टि एवं अपने उद्देश्य के अनुरूप निर्धारित साँचे में ठीक बैठने वाले तथ्य तो पुराणों से ग्रहण किये, किन्तु पुराणों में प्राप्त समस्त ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग कर भारतीय राज्य एवं समाज का समग्र चित्र प्रस्तुत करने का कभी प्रयास नहीं किया। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना ने गत दो वर्षों से पुराणों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर पौराणिक भारत के इतिहास-लेखन का कार्य प्रारम्भ किया है। इस दृष्टि से पुराणों की ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षा, उनका अध्ययन, उनमें प्राप्त तथ्यों का संकलन पूरे देश में चल रहा है। किन्तु इस बात की सावधानी रखनी होगी कि साम्राज्यवादी एवं साम्यवादी इतिहासकारों की तरह ही कहीं भारत केन्द्रित इतिहास लेखन ही दूसरे अतिवाद के छोर पर न जा टिके। अर्थात 'हमारा जो भी है वह अच्छा है' की दृष्टि से भी लिखा गया भारत का पूर्वाग्रह युक्त इतिहास अस्वीकृत होगा। इतिहास तथ्य आधारित ही होना चाहिए। किन्तु राष्ट्र

समाज की प्रेरणा के लिए उपयोगी होना चाहिए। तथ्यों का प्रस्तुतीकरण पूर्वाग्रह युक्त हो किन्तु उसकी व्याख्या राष्ट्र-समाज हित में एवं सकारात्मक ही होनी चाहिए। इसी योजना के अन्तर्गत भारतीय इतिहास संकलन समिति गोरक्ष प्रान्त द्वारा ऐतिहासिक स्रोत के रूप में पुराणों की समीक्षा एवं उनमें भरे-पड़े ऐतिहासिक तथ्यों का भारतीय इतिहास लेखन में उपयोग की दृष्टि से अब तक तीन कार्यशालाएँ की जा चुकी हैं। पहली कार्यशाला 14 मार्च, 2010 ई. को दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर में सम्पन्न हुई। कार्यशाला का वृत्त प्रकाशित हुआ। कार्यशाला एवं उसके प्रकाशन को अकादमिक क्षेत्र मिले समर्थन से प्रोत्साहित भारतीय इतिहास संकलन समिति गोरक्षप्रान्त द्वारा 'पुराणान्तर्गत इतिहास' विषय पर दो और कार्यशालाएँ हुईं जिनमें युवा इतिहासकारों एवं शोध विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया। पहली कार्यशाला 7 अगस्त, 2011 ई. को राजा रतनसेन डिग्री कालेज बाँसी, सिद्धार्थनगर में तथा दूसरी कार्यशाला 11 मार्च, 2012 ई. को महाराणा प्रताप पी. जी. कॉलेज जंगल धूसड़, गोरखपुर में सम्पन्न हुई। दोनों कार्यशालाओं में पुराणों पर प्रस्तुत शोध-पत्रों को इस ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है। कुछ अन्य प्रमुख संकलित आलेख भी इस ग्रन्थ में सम्मिलित किये गये हैं।

प्रकाशित किये जा रहे अनेक शोध-पत्रों में यद्यपि कि इतिहास की दृष्टि से विवेचना की कमी है, तथ्यों के संकलन एवं उनकी उद्देश्यपरक व्याख्या में क्रमबद्धता का अभाव है, युवा इतिहासकारों की न्यायाधीश जैसी सम्यक दृष्टि का पैनापन कम है, अनेक शोध-पत्र मात्र पुराणों में किये गये उल्लेखों के संकलन मात्र हैं तथापि यह प्रकाशन इस मायने में महत्त्वपूर्ण होगा कि पुराणों में उल्लिखित विविध पक्षों पर पाठकों, शोधार्थियों एवं अन्य अध्येताओं का ध्यान आकर्षित करेगा और वे पुराणों में प्राप्त विपुल ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग करते हुए प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक नवीन अध्यायों का उद्घाटन करने में जुटेंगे। भारतीय इतिहास लेखन में पुराणों में प्राप्त ऐतिहासिक स्रोत के उपयोग से भारतीय इतिहास लेखन के एक नये युग का सूत्रपात होगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में गत सत्र के 'पुराणान्तर्गत इतिहास' विषय पर राजा रतनसेन डिग्री कॉलेज बाँसी में आयोजित कार्यशाला का प्रमुख योगदान है। वह कार्यशाला सम्पन्न कराने में महाविद्यालय के प्रबन्धक एवं विधायक माननीय राजकुमार जयप्रताप सिंह जी एवं प्राचार्य डॉ. हरेश प्रताप सिंह के अमूल्य योगदान के हम हृदय से आभारी हैं। पुराणान्तर्गत इतिहास पर आयोजित कार्यशाला में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. शिवाजी सिंह एवं राष्ट्रीय संगठन मन्त्री श्री बालमुकुन्द जी, प्रो. अशोक श्रीवास्तव एवं श्रद्धेय गुरुवर डॉ. कुँवर बहादुर कौशिक के हम कृतज्ञ हैं जिनकी उपस्थिति एवं मार्गदर्शन के बिना कार्यशाला की सफलता सम्भव नहीं थी। मैं सम्पादक मण्डल के समस्त सहयोगियों एवं कार्यशाला में सम्मिलित समस्त विषय विशेषज्ञों तथा शोधार्थियों का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह प्रकाशन पुराणों पर कार्य करने वाले शोधार्थियों को प्रेरणा देने की दिशा में एक छोटे से दीप का कार्य अवश्य करेगा।

प्रदीप कुमार राव

गुरुपूर्णिमा, 2012 **(प्रदीप कुमार राव)**

अनुक्रम

1. पुराण	श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वती	17
2. पुराणों में धर्म और सदाचार	स्वामी करपात्रीजी महाराज	19
3. सिद्धों की पौराणिक प्रासंगिकता	महन्त अवेद्यनाथजी महाराज	22
4. हमारे पुराण - एक समीक्षा	अ. द. पुसालकर	25
5. विष्णुपुराण में राज्य एवं समाज	बाल मुकुन्द पाण्डेय	39
6. विष्णुपुराण और भारत	डॉ. कुँवर बहादुर कौशिक	45
7. श्रीविष्णुपुराण में वर्णित	डॉ. रत्नेश कुमार त्रिपाठी	55
8. पौराणिक राजवंश	डॉ. प्रदीप कुमार राव	60
9. विष्णुपुराण में वर्णित मनु एवं.....	लोकेश कुमार प्रजापति	73
10. पुराणों में विलक्षण विद्याएँ	डॉ. रामप्यारे मिश्र	78
11. पुराणों में इतिहास संकल्पना	डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी	85
12. पुराणों में विज्ञान	रेनू यादव	89
13. पुराभवम् पुराणम्	डॉ. किरन देवी	95
14. पौराणिक इतिवृत्त एवं पुरातत्त्व	डॉ. अजय कुमार मिश्र	100
15. पुराणों का वैदिक धरातल	स्वेजा त्रिपाठी	104
16. पुराण परिचय	डॉ. प्रज्ञा मिश्रा	109
17. शैव धर्म से सम्बद्ध देवियाँ पुराणों....	डॉ. रत्न मोहन पाण्डेय	112
18. पुराणों में राजा की भूमिका	डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र	116
19. पुराणों की ऐतिहासिक विवेचना	डॉ.संगीता शुक्ल	122
20. मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख स्रोत	डॉ. चन्द्रमौलि त्रिपाठी	129
21. पुराणों में नदियों का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. बृज भूषण यादव	133
22. पुराणों में नगर योजना	डॉ. राम गोपाल शुक्ल	143
23. पुराण-वेद-इतिहास	राजेश कुमार शर्मा	146
24. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में	नीतू द्विवेदी	149
25. भारतीय इतिहास लेखन और.....	राजेन्द्र देव मिश्र	154
26. पुराण विद्या	कृतिका शाही	158
27. विष्णुपुराण में भारतीय समाज	डॉ. भारती सिंह	167
28. भारतीय इतिहास का प्रस्थान बिन्दु....	गुंजन अग्रवाल	173

पुराण

श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वती*

पुराण भारत का सच्चा इतिहास है। पुराणों से ही भारतीय जीवन का आदर्श, भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा भारत के विद्या-वैभव के उत्कर्ष का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयता की झाँकी और प्राचीन समय में भारत के सर्वविध उत्कर्ष की झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणों में। पुराण इस अकाट्य सत्य के द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन काल में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नति का मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

वेदों की महिमा अपार है, पर उनकी शब्दावलि दुर्बोध और प्रतिपादन-प्रक्रिया पर्याप्त जटिल है। उन्हें निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र तथा व्याकरण आदि अंगों, ऋषि, छन्द, देवता आदि अनुक्रमणी और भाष्यों के आधार पर बड़ी कठिनता से ठीक-ठीक समझा जा सकता है। पर पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थों को सरल शब्दों में और कथानक शैली के सहारे सामान्य बुद्धि वाले पाठकों को भी हृदयंगम करा देते हैं। इसीलिए सभी स्थानों पर वेदों को इतिहास, पुराण के द्वारा समझने की सम्मति दी गयी है। जो विद्वान् इतिहास-पुराण से अनभिज्ञ हैं, उन्हें अल्पश्रुत, अल्पज्ञ कहकर वेदार्थ-प्रतिपादन का अधिकार नहीं दिया गया है। वेद उनसे डरते हैं कि ये मेरा निश्चय रूप से अनर्थ कर जनसमुदाय में उद्भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे। इतिहास शब्द से महाभारत तथा वाल्मीकि आदि रामायण एवं योगवासिष्ठादि ग्रन्थ भी अभिव्यक्त होते हैं। पुराण शब्द से पद्म, स्कन्द आदि अठारह महापुराण, विष्णुधर्मोत्तरादि उपपुराण तथा नीलमत, एकाम्रादि स्थलपुराण भी गृहीत होते हैं। इन पुराणों में सभी विद्याओं का संग्रह हुआ है।

ज्ञान के भण्डार और धर्म के मूल स्रोत वेद हैं अवश्य, पर उनमें ग्रहों का संचार, समय की शुद्धि, खर्वा, त्रिस्पृशा आदि विशिष्ट लक्षणों सहित प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की कालबोधिनी तिथियों का सुस्पष्ट निर्देश नहीं हुआ है, इसीलिए एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतों का माहात्म्य, ग्रहण आदि विशिष्ट पर्वों के कृत्य

*पुराणकथांक से

और दर्शन-शास्त्रों के सूक्ष्मज्ञान तथा पाञ्चरात्र आदि विविध वैष्णव, शैव, शाक्तादि आगमों के प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट रूप से उपदिष्ट नहीं हैं, किन्तु पुराणों में समस्त वेदार्थ सहित ये सभी उपर्युक्त विषय, सभी वेदांग एवं धर्मशास्त्रों के धर्म-कृत्य, देवोपासना-विधि, सदाचार के विस्तृत उपदेश और कथा उदाहरण सहित वेदान्त, सांख्य आदि प्रक्रियाओं को भी सबको हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी क्रियाओं की जानकारी के लिए ये ही चिरकाल से आश्रयणीय रहे हैं। इन पुराणों से ही पूर्व के विद्वानों ने अनेक सुन्दर निबन्ध एवं प्रबन्ध ग्रन्थों की रचना की है, जो दैनन्दिन सभी कृत्यों से लेकर यावज्जीवन होने वाले विशेष प्रयोजन-युक्त कर्म, संस्कार तथा यज्ञादि अनुष्ठान, पर्व-महोत्सव आदि के भी निर्देशक हैं। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यास ने बड़े परिश्रम से वेदों को शाखा-प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, निरुक्त आदि की प्रक्रियाओं में विभाजन करके भी जब पूर्णलोकोपकार में सफलता नहीं देखी, तब उन्होंने विशेष ध्यानस्थ होकर भागवतादि पुराणों, महाभारतादि इतिहासों की रचना कर वेदों के गूढ़तम सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प किया। उन्हीं की भास्वती कृपा से समुद्भूत समग्र पुराण-राशि हमारे सामने उपस्थित होकर विश्वकल्याण में निरन्तर प्रवृत्त है। यह पुराण-वाङ्मय सूक्ष्म विचार करने पर वर्तमान समस्त विश्व साहित्य की अपेक्षा सभी प्रकार शुद्ध, सभ्यभाषायुक्त, सुबोध कथाओं से समन्वित और मधुरतम पदविन्यासों से समलंकृत है। इस प्रकार यह पुराण साहित्य सभी के हृदय को आकृष्ट कर कल्याण करने के लिए नित्य-निरन्तर तत्पर हैं। विश्व-कल्याण के लिए श्रीभगवान् भारतीयों को कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणों के प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है। □

पुराणों में धर्म और सदाचार

स्वामी करपात्री जी महाराज*

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र-किं बहुना अखिल विश्व के धारण, पोषण, संघटन, सामन्जस्य एवं ऐकमत्य का सम्पादन करने वाला एकमात्र पदार्थ है-धर्म। धर्म का सम्यक् ज्ञान अधिकारी व्यक्ति को अपौरुषेय वेद-वाक्यों एवं तदनुसारी पुराणादि आर्षधर्मग्रन्थों द्वारा ही सम्पन्न होता है। सभी परिस्थितियों में सभी प्राणी धर्म का शुद्ध ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। राजर्षि मनु का कहना है कि सज्जन विद्वानों द्वारा ही धर्म का सम्यक् ज्ञान एवं आचरण हो सकता है। जिन सज्जनों का अन्तःकरण राग-द्वेष से कलुषित है, वे परिस्थितिवशात् धर्म के यथार्थ स्वरूप का अतिक्रमण कर सकते हैं, अतः ऐसे सज्जन-जिनके अन्तःकरण में कभी राग-द्वेषादि का प्रभाव नहीं पड़ता, वे ही सही माने में धर्म का तत्त्व समझ सकते हैं। किन्तु उनका आचरण (कर्म) भी कभी-कभी किसी कारण से धर्म का उल्लंघन कर सकता है, इसलिए ऐसे सज्जन विद्वान् जिनका हृदय राग-द्वेष से कभी कलुषित नहीं होता, वे हृदय से वेद-पुराणादिसम्मत जिस कर्म को धर्म मानते हैं, वे ही असली धर्म हैं। मनु का वचन इस प्रकार है-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥
(मनु. २.१)

इसके अनुसार उपर्युक्त सज्जनों के आचरण को ही सदाचार कहा जाता है-'आचारप्रभवो धर्मः' (महाभारत अनु. पर्व १४९.३७)। यहाँ उसी सदाचार धर्म का कुछ सामान्यतः दिग्दर्शन कराया जा रहा है। मीमांसक कुमारिलभट्ट के अनुसार वे धर्म या आचार भी वेदपुराणानुमोदित ही प्रशस्त होते हैं। सर्वत्र सभी देशों की परम्परा भी प्रशस्त नहीं होती, किन्तु जहाँ अनादिकाल से वर्णाश्रम, गुणधर्म आदि सभी का पालन होता आ रहा है, उसी देश की सदाचार की परम्परा प्रशस्त मानी गयी है। इसीलिए भगवान् मनु कहते हैं-

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

*पुराणकथांक से

सरस्वती और दृषद्वती-इन देवनदियों का अन्तराल (मध्यभाग) विशिष्ट देवताओं से अधिष्ठित रहा, अतः यह देवनिर्मित देश 'ब्रह्मावर्त' कहा जाता है। यहाँ तथा आर्यावर्त में उत्पन्न होने वाले जनों का अन्तःकरण पवित्र नदियों के विशिष्ट जल पीने के कारण अपने प्राचीन पितृ-पितामह, प्रपितामहादि द्वारा अनुष्ठित आचारों की ओर ही उन्मुख होता है, अतः वर्णाश्रमधर्म तथा संकर जातियों का धर्म यहाँ के सभी निवासियों में यथावत् था। यहाँ उत्पन्न होने पर भी जिन लोगों का अन्तःकरण प्राचीन परम्पराप्राप्त धर्म की ओर उन्मुख नहीं हुआ और वे लोग मनमानी नयी-नयी व्यवस्था करने लगें तो उनका भी आचार धर्म में प्रमाण नहीं हो सकता, अतः परम्परा भी वही मान्य होगी, जो अनादि-अपौरुषेय वेद एवं तदनुसारी आर्ष-धर्मग्रन्थों से अनुमोदित, अनुप्राणित हो।

मनुष्यों को सदा ही सदाचार का पालन और दुराचार का परित्याग करना चाहिए। आचारहीन दुराचारी प्राणी का न इस लोक में कल्याण होता है, न परलोक में। असदाचारी प्राणियों द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, दान, तप-सभी व्यर्थ जाते हैं, कल्याणकारी नहीं होते। सदाचार के पालन से अपने शरीरादि में भी वर्तमान अलक्षण दूर होते हैं, अपना फल नहीं देते। सदाचाररूप वृक्ष चारों पुरुषार्थों का देने वाला है। धर्म ही उसकी जड़, अर्थ उसकी शाखा, काम (भोग) उसका पुष्प और मोक्ष उसका फल है-

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।
(वामनपुराण १४.१९)

यहाँ इस सदाचार के स्वरूप का कुछ वर्णन किया जाता है- सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्त में उठकर भगवान् शंकर द्वारा उपदिष्ट प्रभात-मंगल का स्मरण करना चाहिए। इसके द्वारा देवग्रहादि-स्मरण से दिन मंगलमय बीतता है और दुःस्वप्न का फल शान्त हो जाता है। वह सुप्रभातस्तोत्र इस प्रकार है-

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिंगलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तवर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

इस प्रकार इस परम पवित्र सुप्रभात के प्रातःकाल भक्तिपूर्वक उच्चारण करने से, स्मरण करने से दुःस्वप्न अनिष्ट फल नष्ट होकर सुस्वप्न के फल रूप में प्राप्त होता है। सुप्रभात का स्मरण कर पृथ्वी का स्पर्शपूर्वक प्रणाम करके शय्या त्याग करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है-

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

फिर शौचादि कर्म करना चाहिए। शौच जाने के बाद मिट्टी और जल से इन्द्रियों की शुद्धि कर दन्तधावन करना चाहिए। तदनन्तर जिह्वा आदि की मलिनता दूरकर स्नान करके संध्योपासन करना और सूर्यार्घ्य देना चाहिए। केवल जननशौच और मरणाशौच में ही बाह्यसंध्या का परित्याग निर्दिष्ट है। उसमें भी मानसिक गायत्री-जप और सूर्यार्घ्य विहित है।

सदाचारी व्यक्ति को धर्म का परित्याग कभी नहीं करना चाहिए। जो धर्म का परित्याग कर देता है, उसके ऊपर भगवान् भास्कर (सूर्य) कुपित हो जाते हैं। उनके कोप से प्राणी के देह में रोग बढ़ता है, कुल का विनाश प्रारम्भ हो जाता है और उस पुरुष का शरीर ढीला पड़ने लगता है-

स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत्।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥
कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥
(वामनपुराण १४. १२१-१२२)

महाभारत (आश्वमेधिकपर्व) के अनुसार 'अन्त में धर्म की ही जय होती है, अधर्म की नहीं, सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं। क्षमा की जय होती है, क्रोध की नहीं', अतः सभी को सदा क्षमाशील रहना चाहिए-

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधः क्षमावान् ब्राह्मणो भवेत्॥ □

सिद्धों की पौराणिक प्रासंगिकता

महन्त अवेद्यनाथजी महाराज*

तप:पुंज परम कारुणिक महर्षि व्यासरचित अठारह पुराण तथा उपपुराणादि समग्र सार्वभौम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदि जीवन-दर्शन के जीवन्त भाष्य अथवा विश्वकोष हैं। पुराणों में भारतीय सांस्कृतिक सम्पत्ति सुरक्षित है। योगदर्शन ही नहीं, विशेष परिप्रेक्ष्य में महायोगी शिवगोरक्ष-गोरक्षनाथ जी द्वारा संरक्षित शिवोपदिष्ट नाथयोगामृत और अनेक नाथसिद्धयोगियों के साधनामय जीवन के यत्र-तत्र सहज यथावश्यक सन्दर्भ से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी रहनी-करनी में कितने व्यापक रूप में पौराणिक प्रासंगिकताएँ भरी पड़ी हैं। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि में सिद्धयोगियों और उनकी साधना-पद्धति तथा योग की सामान्य उपादेयताओं का निरूपण इस तथ्य का संकेत है कि उनमें योग और सिद्धों के सम्बन्ध में कितना उदार दृष्टिकोण परिलक्षित है।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में ब्रह्माण्डपुराण के ललिताखण्ड में ललितापुर वर्णन में योगमहाज्ञान-चिन्तन में तत्पर महायोगी गोरक्षनाथ और अनेक सिद्धसमूह, दिव्य ऋषिगण तथा प्राणायामपरायण योगियों के प्रसंग मिलते हैं।

ललितापुर के उत्तरकोण में अत्यन्त प्रकाशमय वायुलोक है। उस लोक में वायुशरीरधारी, महान् दानी, सिद्धसमूह, दिव्य ऋषिगण, प्राणायाम के अभ्यासी दूसरे योगी तथा योगपरायण, योगमहाज्ञानचिन्तन में तत्पर श्रीगोरक्षनाथ जी आदि अनेकानेक योगियों के समुदाय निवास करते हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण में, वातरशना मुनियों के सन्दर्भ में, नाथसिद्धों के सम्बन्ध में यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। वातरशना की यह परम्परा ऋग्वेद (१०.१३६) में परिलक्षित है जो प्राणायामादि यौगिक क्रियाओं में प्रवृत्त कायादण्डन तथा निवृत्तिप्रधान जीवन-यापन में विश्वासी और आस्थावान् चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥
(५.४.११)

श्रीमद्भागवत में वर्णित नवयोगेश्वरों की, नवनाथों की मान्यता में शिवगोरक्ष महायोगी की गणना नहीं की गयी है। उन्हें तो साक्षात् शिव का अवतार शिवस्वरूप कहा गया है।

आदिनाथ भगवान् महेश्वर ने क्षीरसागर में मणिप्रदीप्त सप्त शृंग पर्वत पर भगवती उमा के प्रति महायोगज्ञान का वर्णन आरम्भ किया। भगवती के निद्राभिभूत होने पर मत्स्य के उदर से निकलकर मत्स्येन्द्रनाथ जी ने यह योगोपदेश सुना। उन्होंने महेश्वर को देवीसहित नमस्कार कर समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया।

तं कल्पयामास सुतं शुभाङ्गे
सोत्सङ्ग आस्थाप्य चुचुम्ब वक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः ॥
(नारद पुराण उत्तर. ६९.२३)

संतयोगी ज्ञानेश्वर ने नारदपुराण के इसी प्रासंगिक उद्धरण के अनुरूप श्रीमद्भगवद्गीता की टीका ज्ञानेश्वरी के १८वें अध्याय में वर्णन किया है कि क्षीरसमुद्र के तट पर श्री शंकर ने न जाने कब एक बार शक्ति-पार्वती के कान में जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्र की लहरों में किसी मत्स्य के पेट में गुप्त मत्स्येन्द्रनाथ के हाथ लगा-अचलसमाधि का उपभोग लेने की इच्छा से मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरखनाथ को उपदेश दिया।

क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तिच्या कर्णकुहरीं।
नैणाके श्रीत्रिपुरारी। सांगितलेजे।
ते क्षीरकल्लोला आंतु। मकरोदरीं गुप्तु।
होता तया चा हातु। पैहो जाले।
....
मग समाधि अव्यत्ययां। भोगावीं वासना यया।
ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधलीं मीनीं॥
(ज्ञानेश्वरी, अध्याय १८)

अवधूत दत्तात्रेय की तपस्या, योग-साधना और जीवन-वृत्तान्त का पर्याप्त वर्णन मार्कण्डेयपुराण के अनेक अध्यायों में प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के

*पुराणकथांक से

एकादश स्कन्ध में दत्तात्रेय का वर्णन उनकी योग-साधना का परिचायक है। वे श्रीमद्भागवत में दिष्टभुक् रूप में वर्णित हैं। उनका कथन है कि दिन-रात में जो कुछ मिल जाता है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ तथा दिष्ट-जैसा भोग करता हूँ, उससे सन्तुष्ट रहता हूँ।

वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्॥

(७.१३.३९)

मार्कण्डेयपुराण के १७ से १९वें अध्याय में दत्तात्रेय के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे सती अनसूया और महर्षि अत्रि के पुत्र के रूप में प्रकट हुए थे। उन्होंने कावेरी नदी के तट पर तथा सह्याद्रि क्षेत्र में तपस्या की थी। मार्कण्डेयपुराण के ३९वें से ४१वें अध्याय में वर्णन है कि उन्होंने मदालसा के पुत्र अलर्क को योगोपदेशामृत प्रदान किया था। उनका कथन है-

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥

मार्कण्डेय और श्रीमद्भागवतपुराण की प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में सिद्ध अवधूत-रूप में वर्णित नाथसिद्ध दत्तात्रेय ने शिवयोगी गोरखनाथ को प्रणाम किया है।

निःसन्देह पौराणिक आख्यानों और प्रासंगिकताओं में यथेष्ट रूप से उदारता और सर्वमंगलमयता का स्वर अक्षर-अक्षर में अनुप्राणित है। □

हमारे पुराण - एक समीक्षा

अ. द. पुसालकर*

हिन्दुओं के धार्मिक तथा तदतिरिक्त साहित्य में पुराणों का विशेष स्थान है। वेदों के बाद इन्हीं की मान्यता है। महाभारत के साथ इन्हें पंचम वेद[1] कहा गया है। इनका बाह्यरूप और अन्तःस्वरूप प्रायः रामायण, महाभारत और स्मृतियों के समान ही है। इन पुराणों को समष्टिरूप से प्राचीन एवं समकालीन हिन्दुत्व का-उसकी धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृति का लोकसम्मत विश्वकोष ही समझना चाहिए।

'पुराण' पद का अर्थ ही है 'वह' जो प्राचीन काल से जीवित हो।

यस्मात्पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन हि स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(वायु पुराण १.२०३)

'प्राचीन काल से प्राणित होने के कारण पुराण कहा जाता है। जो इसकी व्याख्या जानता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।'

अथवा यह भी कह सकते हैं कि-

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।

(मत्स्यपुराण ५३.६३)

'पुरातन काल की घटनाओं को पण्डितजन पुराण कहते हैं।'

इस प्रकार एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य के अर्थ में 'पुराण' शब्द का प्रयोग जब तक नहीं होता था, तब तक इस शब्द का अर्थ 'प्राचीन कथा' अथवा 'प्राचीन विवरण' था और अज्ञात आदिकाल से, वेदों के प्रकट होने के भी पहले से, इस रूप में पुराण विद्यमान थे। अथर्ववेद[2] में पुराणों का नाम आता है। उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उस समय ये पुराण ग्रन्थों के रूप में भी रहे हों। पर छान्दोग्य उपनिषद् और सूत्र-ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि असली पुराण उपनिषदों और सूत्रों[3] के समय में आये।

'पुराण' की साहित्यिक परिभाषा अमरकोश तथा कुछ पुराणों में की गयी है और उसके पाँच लक्षण बतलाये गये हैं-

*हिन्दू संस्कृति अंक से

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (लय और पुनः सृष्टि), वंश (देवताओं की वंशावलि), मन्वन्तर (मनु के काल विभाग) और वंशानुचरित (राजाओं के वंशवृत्त)- पुराण के ये पाँच लक्षण हैं।

उपस्थित पुराणों में कोई भी पूर्णरूपसे इस परिभाषा के अनुरूप नहीं है। कुछ पुराणों में तो इनसे कई विषय अधिक हैं और कुछ में इनकी प्रायः कोई चर्चा तक नहीं है, अन्य विषय बहुत-से हैं। फिर यह पंचलक्षण उपस्थित पुराणों का बहुत ही छोटा अंश है। इससे यह मालूम होता है कि धर्मानुशासन पुराणों के मूल उद्देश्यों में नहीं था, न इनकी प्रारम्भिक रचना का कोई साम्प्रदायिक हेतु ही था। पीछे की रचनाओं को पुराण की परिभाषा में लाने के लिए स्वयं पुराणों ने ही यह कहा है कि पंचलक्षण केवल उपपुराण के लिए हैं, महापुराण होने के लिए तो उसमें दस लक्षण होने चाहिए। इन दस में पंचलक्षण के अतिरिक्त अन्य लक्षण ये हैं- वृत्ति, रक्षा (ईश्वरावतार), मुक्ति, हेतु (जीव) और अपाश्रय (ब्रह्म)।

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित्पंचविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥
(श्रीमद्भा. ११.७.९-१०)

पुराणवित् पुराण को इन दस लक्षणों से युक्त मानते हैं- सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय। कोई पाँच ही लक्षण मानते हैं- महदल्पव्यवस्था से ऐसा होता है (अर्थात् महापुराणों के दस और उपपुराणों के पाँच लक्षण होते हैं)।

मत्स्यपुराण ने इसमें ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र की स्तुति, सृष्टि का लय और स्थिति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन विषयों को और जोड़ा है।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पंचवर्णके॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्॥
(मत्स्य. ५३.६६.७)

'ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र का माहात्म्य, सृष्टि के लय और स्थिति का

माहात्म्य, पाँच विषयों का वर्णन करने वाले पुराण में वर्णित हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कीर्तन है। यह सब पुराणों में है और इसके विरुद्ध जो कुछ है, उसका भी फल वर्णित है।'

पुराणों में १८ महापुराण और १८ उपपुराण गिने जाते हैं। महापुराणों की नामावलि का क्रम सभी पुराणों में प्रायः एक-सा ही है। इसमें केवल दो-एक परिवर्तनों को छोड़ एकरूपता ही है। नामावलि यह है-ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वराह, लिङ्ग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड। निम्नलिखित अनुष्टुप में पुराणों की पूरी नामावलि संक्षेप में आ गयी है-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
नालिंपाग्निपुराणानि कूस्कं गारुडमेव च॥
(देवीभागवत १.२)

आदि अक्षर 'म' वाले २, 'भ' वाले २, 'ब्र' वाले ३, 'व' वाले ४, 'ना' वाला १, 'लिं' वाला १, 'प' वाला १, फिर अग्निपुराण १, 'कू' वाला १, 'स्क' वाला १ और गरुड़पुराण १।

उपपुराणों की गणना में एकरूपता नहीं है। दुर्भाग्य से इन उपपुराणों की अब तक अपेक्षाकृत उपेक्षा रही है। उपपुराण महापुराणों से पीछे की रचनाएँ हैं, इनका स्वरूप भी अधिक साम्प्रदायिक है और इनमें कई विषयों का मिश्रण है। कई स्थानों में मिली हुई इनकी नामावलियों को मिलाकर देखने से १८ उपपुराण ये निश्चित होते हैं- सनत्कुमार, नरसिंह, नन्द, शिवधर्म, दुर्वासस्, नारदीय, कपिल, वामन, उशनस्, मानव, वरुण, कलि, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, मारीच और भार्गव।

कौन पुराण ठीक-ठीक पंचलक्षणयुक्त हैं और कौन नहीं हैं, यह देखकर इनके प्राचीन और प्राचीनोत्तर-दो वर्ग किये जा सकते हैं। इस कसौटी के अनुसार वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णु प्राचीन पुराण मालूम होते हैं। महापुराणों का फिर और एक वर्गीकरण उनमें विशेषरूप से वर्णित विष्णु, शिव और अन्य देवताओं के विचार से किया गया है और वैष्णव दृष्टि से उन्हें सात्त्विक, राजस और तामस कहा गया है।

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्॥

गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं, वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २६३.८१-८४)

मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अग्नि- ये छः पुराण तामस हैं। विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह- ये सात्त्विक पुराण हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्म- ये राजस हैं।

मत्स्यपुराण में अग्नि का माहात्म्य वर्णन करने वाले पुराणों को राजस और सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य वर्णन करने वाले पुराणों को संकीर्ण कहा है।

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते॥
(मत्स्य. ५३.६८-६९)

सात्त्विक पुराणों में श्रीहरि का माहात्म्य विशेष है, राजस पुराणों में ब्रह्मा का, उसी प्रकार तामस पुराणों में अग्नि और शिव का। संकीर्ण पुराणों में सरस्वती और पितरों का माहात्म्य वर्णित है।

एक और तरह का वर्गीकरण स्कन्दपुराण में इस प्रकार है-

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः॥
(स्कन्द. केदारखण्ड १)

'अठारह पुराणों में दस में शिव-स्तुति है, चार में ब्रह्मा की और दो में देवी तथा हरि की है।'

पुराणों में वर्णित विषयों का पूर्ण और आलोचनात्मक परीक्षण करने के पश्चात विषय विभाग के अनुसार पुराणों के छः वर्ग किये गये। प्रथम वर्ग में साहित्य का विश्व-कोष है। इसमें गरुड़, अग्नि और नारदपुराण आते हैं। द्वितीय वर्ग में मुख्यतः तीर्थों और व्रतों का वर्णन है। इसमें पद्म, स्कन्द और भविष्य पुराण आते हैं। तृतीय वर्ग ब्रह्म, भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराणों का है। इनके दो-दो संस्करण हो चुके हैं। इनका मूल भाग वही है, जो इनका केन्द्रस्थ सारभाग है। इनके दो बार के संस्करणों में आगे-पीछे बहुत कुछ जोड़ा गया है। चतुर्थ वर्ग में, जो

ऐतिहासिक कहलाता है, ब्रह्माण्ड और वायुपुराण आते हैं। साम्प्रदायिक साहित्य का पंचम वर्ग है। इसमें लिंग, वामन और मार्कण्डेयपुराण आते हैं। अन्त में षष्ठवर्ग उन वाराह, कूर्म और मत्स्यपुराणों का है, जिनके पाठों का संशोधन होते-होते मूल पाठ रह ही नहीं गया है। तमिल ग्रन्थों में पुराणों के ये पाँच वर्ग किये गये हैं-(१) ब्रह्मा- ब्रह्म और पद्म; (२) सूर्य- ब्रह्मवैवर्त; (३) अग्नि- अग्नि; (४) शिव- शिव, स्कन्द, लिंग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय और ब्रह्माण्ड; और (५) विष्णु- नारद, भागवत, गरुड़ और विष्णु।

पुराण भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। विष्णुपुराण में यह वर्णन है कि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करने के बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों और जनश्रुतियों तथा तथ्यों को एकत्रकर एक पुराण-संहिता[४] निर्माण की और अपने शिष्य सूत रोमहर्षण को उसकी शिक्षा दी। इसकी छः प्रकार की व्याख्याएँ रोमहर्षण ने अपने शिष्यों को पढ़ायीं। रोमहर्षण की यह संहिता और तीन संहिताएँ उनके शिष्यों की मिलाकर पुराणों की चार मूल संहिताएँ कही जाती हैं। इनमें से इस समय कोई संहिता विद्यमान नहीं है। एक दूसरा ही विवरण वायुपुराण में इस प्रकार है कि ब्रह्मा ने पहले सब शास्त्रों के पुराण का स्मरण किया, पीछे उनके मुख से वेद निकले।[५] पुराणों का संरक्षण करने का कार्य सूतों को सौंपा गया था। मूल सूत प्रथम यज्ञ से योगशक्ति के द्वारा उत्पन्न हुए और पुराण-परम्परा की रक्षा उन्हें सौंपी गयी।

अथर्ववेद में 'पुराण' शब्द का एकवचन में प्रयोग, पुराणों में दी हुई वंशावलियों की भाषा का सर्वत्र एक-सा होना और यह परम्परागत जनश्रुति कि आरम्भ में केवल एक ही पुराण था- इन बातों से जैक्सन तथा अन्य विद्वानों को यह विश्वास हो गया कि आरम्भ में केवल एक ही पुराण था।[६] परन्तु एकवचन का प्रयोग पुराणों की समष्टि पुराण-संहिता का वाचक है। वंशावलियों की यह बात है कि विभिन्न पुराण विभिन्न वंशावलियों के साथ आरम्भ होते और विभिन्न समयों में समाप्त होते हैं, तथा विभिन्न स्थानों में उनका निर्माण हुआ है। अतः एक ही पुराण नहीं था- जैसे एक ही वेद नहीं है, न एक ही ब्राह्मण है।

पुराणों की जो परिभाषा पहले दी जा चुकी है, उसके अनुसार पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, देवताओं और ऋषियों के वंशवृत्त, मन्वन्तर और राजवंश वर्णित होते हैं। इनमें से पूर्वोक्त तीन विषयों में प्राचीन धर्म, आख्यान और तत्त्वज्ञान तथा सृष्टि-वर्णन- ये विषय आ जाते हैं। पिछले दो विषयों में राजाओं के वंशवृत्त और इतिहास की सामग्री मिलती है। इनके अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, दान,

व्रत, भक्ति, योग, विष्णु और शिव के अवतार, श्राद्ध, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण, साहित्य, छन्दशास्त्र, नाट्य, ज्योतिष, शिल्पशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजधर्म इत्यादि उन सभी बातों का इनमें समावेश होता है, जिनका जीवन के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन चतुर्विध पुरुषार्थों के साथ सम्बन्ध है।

अब हम पुराणों के तत्त्वज्ञान और उपाख्य, वंशवृत्त, भौगोलिक पृष्ठभूमि तथा काल-सम्बन्धी पौराणिक भावना का किंचित विचार करेंगे।

तत्त्वज्ञान- विश्वोत्पत्ति-जगदुत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक प्रकार के वर्णन हैं। एक वर्णन ऐसा है कि स्वतःसिद्ध ब्रह्म मूलतः और तत्त्वतः एक होने पर भी एक-के-बाद-एक उत्पन्न होने वाले पुरुष, प्रधान और काल- इन त्रिविध रूपों में निवास करता है। जब परमपुरुष पुरुष और प्रधान में प्रवेश करते हैं, तब प्रधान से महान् अथवा बुद्धि-तत्त्व उत्पन्न होता है। बुद्धि से अहंकार और अहंकार से पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत और एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। पंचीकृत पंचमहाभूतों से घटित ब्रह्माण्ड समुद्र पर ठहरा है और आप, अग्नि, वायु, अहंकार, बुद्धि और प्रधान- इन सात आवरणों से घिरा है। देवाधिदेव ब्रह्मा ने रजोगुण का आश्रय लेकर अखिल जीव-जगत् उत्पन्न किया, वही देवाधिदेव सत्त्वगुण का आश्रय लेकर विष्णु रूप से सबका पालन करते हैं और तमोगुण का आश्रय लेकर सबका संहार करते हैं।

एक दूसरा विवरण ऐसा है, जिसमें नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन है। प्रथम तीन महत्-सर्ग, भूत-सर्ग और ऐन्द्रिय सर्ग हैं। इन्हें प्राकृत सर्ग कहते हैं। अन्य पाँच वैकृत सर्ग हैं और अन्तिम कौमार सर्ग है।

पश्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः।
(विष्णुपुराण १.५.२४-२५)

एक और विवरण इस प्रकार का है कि ब्रह्मा ने एक-के-बाद-एक चार रूप धारण किये और उनसे असुर, देव, पितृ और मनुष्य उत्पन्न हुए। पीछे उन्होंने राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, अन्य सब जीव, प्राणी और वनस्पति आदि को उत्पन्न किया। तब मानस पुत्र उत्पन्न हुए, जो ऋषि कहलाये और देवता उत्पन्न हुए, जो रुद्र कहलाये। इनके बाद स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की सृष्टि हुई। इनके दो पुत्र हुए- प्रियव्रत और उत्तानपाद, और एक कन्या। दक्ष ने इस कन्या के साथ विवाह किया। इनके चौबीस कन्याएँ हुईं, जिनमें से तेरह धर्म को ब्याही गयीं,

इनके प्रेम तथा अन्य मूर्तिमान् भाव उत्पन्न हुए। दस कन्याएँ अन्य मानस पुत्रों, पितरों और अग्नि को ब्याही गयीं। और एक कन्या- सती का विवाह शिव के साथ हुआ।

यह सारी सृष्टि ब्रह्मा के एक दिन तक रहती है। ब्रह्मा का एक दिन चौदह मन्वन्तरों का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में निम्नकोटि के जीवों और निम्नस्तर के जगतों के जीवन का अन्त हो जाता है। अखिल विश्व का सत्तत्त्व बना रहता है- देवता और साधु-संत सुरक्षित रहते हैं। चौदहवें मन्वन्तर के अन्त में अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन बीतने पर नैमित्तिक प्रतिसर्ग होता है। इसमें अग्नि और जल के द्वारा सब पदार्थों का अन्त होता है, केवल प्राकृत सृष्टि बनी रहती है और इसके साथ तीन गुण और सप्त ऋषि इत्यादि। एक कल्प के परिमाण की ब्रह्मा की रात समाप्त होने पर ब्रह्मा जागते हैं और अपनी सृष्टि फिर से आरम्भ करते हैं। समस्त प्राकृत सर्ग का प्राकृत प्रलय में ही अन्त होता है। यह प्रलय ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर ही होता है और तब सब देवता और सब रूप संहार को प्राप्त होते हैं। पंचमहाभूत मूल प्रकृति में मिल जाते हैं। मूल प्रकृति के पीछे केवल एक ब्रह्मसत्ता रहती है।

उपास्यवर्णन- पुराणों में उपास्य देवों की विभिन्नता है। वैदिक देवताओं की अपेक्षा लौकिक देवताओं की स्तुति विशेष है। वैदिक देवताओं में से केवल इन्द्र और अग्नि अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ रह जाते हैं। प्रधान त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। वरुण समुद्र के अधिपति हैं, पर अपने यमज भाई मित्र से बिछुड़ गये हैं। पुराणों में मित्र का पता नहीं है। कुछ पुराणों में सूर्य की स्तुति बहुत की गयी है, पर उनकी उपासना विधि का विवरण भविष्य में मिलता है। मृतात्माओं के अधीश्वर यम नरकों में पापियों को दण्ड देते हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ गायक और परियाँ हैं। असुरों के चार भेद बताये गये हैं- असुर, दैत्य, दानव और राक्षस।

त्रिदेवों में से ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्ता। साम्प्रदायिक पुराणों में कोई विष्णु को श्रेष्ठ बतलाते हैं। कोई शिव को श्रेष्ठ बतलाते हैं। पर सामान्यतः प्राचीनतर पुराण एक को श्रेष्ठ बताकर दूसरे की भी स्तुति करते हैं। इसका परम उत्कर्ष एकेश्वरवाद में होता है, जहाँ तीनों का एकत्व प्रतिपादित होता है और यह बतलाया जाता है कि उपासक अपनी इच्छा के अनुसार इनमें से किसी की भी उपासना कर सकता है। अधिकांश पुराणों में विष्णु के दस अवतार बतलाये गये हैं। इनमें से मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह और वामन- ये पाँच पौराणिक हैं; परशुराम, राम, कृष्ण और बुद्ध- ये चार ऐतिहासिक

हैं और एक कल्कि अभी आने को हैं। इनमें से वराह, नरसिंह और वामन के अवतारत्व के बीज वैदिक साहित्य में हैं। ये अवतार दिव्य कहाते हैं और अन्य अवतार मानुष।

विष्णु क्षीरसागर में रहते हैं, अवतार के समय अवतार लेते हैं। पर शिव पार्थिव देव हैं। पार्वती, माता भवानी इनकी नित्य संगिनी हैं। स्कन्द और गणेश इनके पुत्र हैं। पाशुपत सम्प्रदाय इन्हीं का उपासक है। शैवपुराणों में इनकी प्रशंसा है। लिंग-सम्प्रदाय और शाक्त-सम्प्रदाय भी पीछे के पुराणों में आते हैं।

पितरों की भी उपासना पुराणों में है। पितरों के सात वर्ग हैं। देवों के समान ही इनके पूजन का भी विधान पुराणों में कहीं-कहीं आता है। प्रत्येक मन्वन्तर में देवताओं के साथ ही वे उत्पन्न होते हैं। पितरों का सम्बन्ध श्राद्ध से है, जिसका विवरण पुराणों में दिया गया है।

वंशवृत्त- पुराणों के वंशवृत्त मनु के साथ आरम्भ होते हैं। मनु ने ही प्रलयकाल में मानवों की रक्षा की थी। पहले राजा वैवस्वत मनु के दस पुत्र थे। समस्त देश इन दस पुत्रों को बाँट दिया गया। ज्येष्ठ पुत्र पुरुष और स्त्री उभयविध थे और इल और इला दोनों नामों से प्रसिद्ध हुए। उनके दो पुत्र हुए, सौद्युम्न और ऐल। इक्ष्वाकु को मध्यदेश का राज्य मिला। उनकी राजधानी अयोध्या थी। उनके पुत्र विकुक्षि ने सूर्यवंश की मुख्य इक्ष्वाकु-शाखा चलायी। उनके दूसरे पुत्र निमि से विदेह उत्पन्न हुए। यमुनादेश पर राज्य करने वाले नाभाग के वंशधर रथीतर हुए, जिनको 'क्षत्रोपेता द्विजातयः' कहा जाता था। धृष्ट से धृष्टक वंश चला, जिसका राज्य पंजाब में था। शार्यातों के मूल पुरुष शर्याति आनर्त (वर्तमान गुजरात) के राजा थे। उनकी राजधानी कुशस्थली (द्वारका) थी। नाभानेदिष्ठ वर्तमान तिर्हुत पर राज करते थे। इस वंश के राजा विशाल ने वैशाल वंश चलाया। करूष से कारूष उत्पन्न हुए, जो बड़े योद्धा थे और जिन्होंने बघेलखण्ड दखल किया। नरिष्यन्त और प्रांशु के बारे में कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। पृषध्र को सम्भवतः उनका अंश नहीं दिया गया।

इला के पुत्र पुरुरवा ऐल प्रतिष्ठान (वर्तमान पीहन अथवा पैठण) पर राज करते थे। उन्होंने ऐल या चन्द्रवंश चलाया। उनके पुत्र आयु पिता के पीछे प्रतिष्ठान के राजसिंहासन पर बैठे और दूसरे पुत्र अमावसु ने कान्यकुब्ज वंश चलाया। उनके पाँच पुत्रों में से नहुष आयु के पीछे राजगद्दी के अधिकारी हुए। क्षत्रवृद्ध ने काशी में अपना राज्य स्थापित किया और अनेनस् ने क्षत्रधर्माओं को उत्पन्न किया। नहुष के पाँच या छः पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र यति संन्यस्त हो गये और

महान् यशकर्ता ययाति पितृराज्य के उत्तराधिकारी हुए। ययाति ने देवयानी और शर्मिष्ठा से विवाह किय। देवयानी से इनके यदु और तुर्वसु- दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठा से अनु, द्रुह्यु और पुरु। इन सबके वंश खूब बढ़े। पुरु ने वंश की मुख्य शाखा चलायी। उनसे पौरव उत्पन्न हुए, जो कौरव-पाण्डवों के पूर्वपुरुष थे। यदु से यादव-वंश चला- जिसमें हैहय, अन्धक, वृष्णि, सात्वत आदि शाखाएँ सम्मिलित हैं। अनु से आनव वंश चला। आनवों की यौधेय, सौवीर, कैकय आदि शाखाएँ फैलीं। द्रुह्यु के वंशधर भारत के बाहर म्लेच्छ देशों में फैले, और तुर्वसु की शाखा पीछे पौरवों में मिल गयी।

मनु से भारतीय युद्ध तक लगभग ९५ पीढ़ियाँ बतायी गयी हैं। भारतीय युद्ध के उत्तरकालीन वंशों के लिए पुराण भविष्य काल की क्रिया का प्रयोग करते हैं और उन्हें कलियुग में गिनते हैं। इनका वर्णन केवल सात ही पुराणों में है। यह विवरण इधर गुप्तों और आन्ध्रों तक आ पहुँचा है।

पुराणों की वंशावलियों में इतिहास की जो सामग्री मिलती है, उससे हम वेदों और पुराणों का ऐतिहासिक मूल्य तुलनात्मक दृष्टि से लगाने का यत्न कर सकते हैं। इस विषय में इतिहासज्ञों के बीच बड़ा मतभेद है। कीथ को पुराणों का ऐतिहासिक मूल्य मानने में बहुत सन्देह होता है। ऋग्वेद में जिसका कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता, ऐसी किसी भी पौराणिक घटना की ऐतिहासिकता मानने में उनका मन निस्सन्देह नहीं रहता। पार्जिटर की दृष्टि इससे सर्वथा विपरीत दूसरे छोर पर टिकती है। वे वेदों की अपेक्षा पौराणिक कथाओं को अधिक विश्वसनीय मानते हैं। वेदों की बातों को वे ब्राह्मण-परम्परा कहते हैं। पर क्षत्रिय नाम धारण किये हुई परम्परा भी इतिहास का विशुद्ध मूल हो, ऐसी बात तो नहीं है। वेदों के पक्ष में दो बातें अवश्य की प्रबल हैं; वेद एक तो पूर्वकालीन हैं और दूसरे, वेदों के पाठ ज्यों-के-त्यों सुरक्षित हैं। फिर भी, पुराणों में बहुत-सी अविश्वसनीय बातों के होते हुए भी, ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों को अप्रमाण कहकर त्याग नहीं दिया जा सकता। यह समझना बहुत बड़ी भूल है कि पुराणों के कथाभाग ने सत्य को निर्वासित कर दिया है।

फिर, यथार्थ में वेदों और पुराणों की बातों में परस्पर कोई विरोध नहीं है। जिस रूप में आज ऋग्वेद उपलब्ध है, यह कुरु-पांचाल की देन है। इसमें स्वभावतः उस देश के राजाओं का मुख्यतया वर्णन हे, दूसरों का वर्णन केवल प्रसंग से आ गया है। वेदों में जिन राजाओं के नाम आते हैं, पर जो पुराणों में नहीं मिलते, वे सम्भवतः छोटे-छोटे वंशों के राजा या सरदार थे और इस कारण पुराणों

की वंशावलियों में वे नहीं आये। यह भी सम्भव है कि एक ही पुरुष का भिन्न-भिन्न नामों से इन दोनों में वर्णित वंशावलियों में निर्देश हुआ हो। पुराणों की वंशावलियाँ जिन अंशों में खण्डित हैं, वहाँ ऋग्वेद में वर्णित राजा बैठाये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पुराणों की वंशावलियों का संशोधन करने में ऋग्वेद ही साधन है। पर जब हम देखते हैं कि पुराणगत वर्णन वैदिक वर्णन से मिलता है, तब यह उचित ही है कि जिस विषय में ऋग्वेद मौन है, उस विषय में पुराणों का कथन सत्य माना जाय। परम्परागत इतिहास लिखने की ठीक पद्धति यही होगी कि वेदों और पुराणों-दोनों का संयुक्त प्रमाण माना जाय, जहाँ दोनों के वर्णन मिलते हैं; और जहाँ दोनों के परस्परविरोधी वचन मिलें, वहाँ सामंजस्य स्थापित करने का यत्न किया जाय। इन सब विषयों में पुराण-साक्ष्य का विचार बहुत सावधानी के साथ करना होगा।

पुराणों की भौगोलिक पृष्ठभूमि- प्रथम मनु के विवरण में उनके राज्यान्तर्गत जगत् का वर्णन आता है। काल निर्धारण के समान इस वर्णन का बहुत-सा भाग काल्पनिक है। जगत् का इस प्रकार वर्णन है कि इसमें सात समकेन्द्रिक द्वीप हैं। प्रत्ये द्वीप एक-एक समुद्र से घिरा हुआ है। इन समुद्रों में कोई घृत का समुद्र है, कोई दूध का; इस प्रकार विविध द्रव्यों के समुद्र हैं। इन द्वीपों में मध्यवर्ती जम्बूद्वीप है, जिसके चारों ओर क्षारसमुद्र है। जम्बूद्वीप का मुख्य भाग भारतवर्ष है। भरत की संतानों के नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाया। इसके उत्तर भाग में हिमालय है और दक्षिण में समुद्र। इसमें सात मुख्य पर्वत हैं-महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र। भारत के पूर्व ओर किरात रहते थे, पश्चिम ओर यादव और मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हिमालय तथा सप्त समुद्रों से निकलने वाली नदियों के नाम तथा विविध प्रदेशों में रहने वाली विविध जातियों के नाम दिये गये हैं। महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में भी ऐसी ही नामावलियाँ आयी हैं; यवन, शक और पह्लवों का जिक्र है। ये लोग ईसा के पूर्व दूसरी और पहली शताब्दियों में भारतवर्ष में आये। हूणों का भी जिक्र है। हूणों ने ईसा की छठीं शताब्दी में गुप्त-साम्राज्य ध्वंस किया। पुराणों में इनका वर्णन यह सूचित करता है कि भौगोलिक नामावलियाँ समय-समय पर नये नाम जोड़कर पूरी की गयी हैं।

काल सम्बन्धी पौराणिक भावना- पुराणों में सृष्टि रचना के जो विविध वर्णन हैं, उनसे युग-मन्वन्तर आदि का विचार करना आवश्यक होता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन और रात है। १२००० दिव्य वर्षों का अर्थात्

मनुष्यों के ४३,२०,००० वर्षों का एक चतुर्युग या महायुग होता है। इस महायुग के कृत, त्रेता, द्वापर और कलि- ये चार युग होते हैं। इनक वर्षसंख्या का परस्पर तारतम्य यथाक्रम ४:३:२:१ इस हिसाब में बैठता है। प्रत्येक युग के आगे और पीछे एक-एक सन्धिकाल उस युग के दशमांश के बराबर होता है। एक सहस्र चतुर्युग (अर्थात् १००० X ४३,२०,००० मानुष वर्षों का) ब्रह्मा के एक दिन और रात के बराबर होता है। इस एक दिन-रात को कल्प कहते हैं। प्रत्येक कल्प में मानव-जाति के आदि पुरुष चौदह मनुओं के कालविभाग अर्थात् मन्वन्तर होते हैं। एक-एक मनु इकहत्तर-इकहत्तर चतुर्युगों की (सन्धिकाल के अतिरिक्त) अध्यक्षता करते हैं।

विद्वानों ने इस विषय में अनेक वाद प्रतिपादित किये हैं। पर अभी तक मन्वन्तर-चतुर्युग के रहस्य का कोई समाधानकारक उद्घाटन नहीं हुआ। पार्जिटर कृत, त्रेता, द्वापर और कलिरूप से युगों के विभाजन का कोई ऐतिहासिक मूल होने का अनुमान करते हैं। भारतीय युद्ध द्वापर के अन्त में और युद्ध के बाद कलि का आरम्भ हुआ माना जाता है। इसके पूर्व दाशरथि राम त्रेता और द्वापर के बीच में हुए। हैहयों के नाश के साथ कृतयुग का अन्त और सगर के राज्य के साथ त्रेता का आरम्भ हुआ।

पुराणों का समय- पुराणों के समय के सम्बन्ध में बहुत विवाद है। कुछ समय पहले यह सोचा जाता था कि संस्कृत साहित्य में पुराणों का निर्माण सबके पीछे हुआ है और विगत एक सहस्र वर्षों के अन्दर यह सारी रचना हुई है। पर पुराणों के जो उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं, उनसे यह विचार कट जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब पुराण अपने वर्तमान रूप में किसी एक ही समय में नहीं रचे गये हैं; किसी पुराण के कोई-कोई अंश तक भिन्न-भिन्न समय के रचे दीखते हैं। पुराणों में घटाना-बढ़ाना, संशोधन करना, मिश्रण करना इत्यादि क्रम बराबर चलता ही रहा है। अतः पुराणों का समय निर्धारित करने में हमें उनके पूर्वतन अंशों का ही समय विचारना होगा, बहुत पीछे के अंशों का समय नहीं। पुराणों के प्राचीनतम रूप भारतीय युद्ध के समय निस्सन्देह विद्यमान थे, मेगास्थनीज के समय तो थे ही। साहित्य और शिलालेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान पुराण ईसा के पूर्व और पश्चात की आरम्भिक शताब्दियों के हैं।

पुराणों का ऐतिहासिक मूल्य- पुराणों के वर्तमान रूप हैं तो बहुत पीछे के;

पर इनमें वंशपरम्परा का जो इतिहास आता है, वह प्राचीनतम है और इसकी बहुत-सी सामग्री पुरातन और मूल्यवान है। अतः पुराणों का प्रमाण सर्वथा त्याज्य समझने का कोई कारण नहीं है। पुराणों के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों का रुख समय-समय पर बदलता रहा है। पुराणों में कलाओं और ऐतिहासिक घटनाओं का गड्डमड्ड होने से तथा 'युगों' के सम्बन्ध में उनकी कुछ विचित्र ही कल्पना होने के कारण भारतीय इतिहास के संशोधन के आरम्भ काल में ईसा के १८वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों तथा १९वीं शताब्दी के आरम्भ में पुराणों का कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं माना जाता था। पीछे कैप्टेन स्पेक ने नूबिया (कुशद्वीप) जाकर नील नदी के उद्गमस्थान का पता लगाया और उससे पुराणों के वर्णन का समर्थन हुआ। तब पुराणों पर आस्था जमने लगी थी। ताम्रपत्रों और मुद्राओं से ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ निकालने की प्रवृत्ति इसी समय उदय हुई; इससे पुराणों का मूल्य घटने लगा और कहीं-कहीं पुराणगत परम्परा का इतिहासवृत्त अयथार्थ भी प्रमाणित हुआ। कुछ बातों में बौद्ध ग्रन्थों ने भी पुराणों की बातें काट दीं। इस प्रकार सन्देह बढ़ने से पुराणों पर अविश्वास उत्पन्न हुआ। पिछली शताब्दी के आरम्भिक दशकों में विल्सन ने पुराणों का पद्धतियुक्त अध्ययन किया और विष्णुपुराण का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी एक बहुत बड़ी भूमिका उन्होंने लिखी थी और आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक टिप्पणियाँ भी जोड़ी थीं। इससे संस्कृत साहित्य के इस महान् अंग की ओर यूरोपियन विद्वानों का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित हुआ है। पुराणों की अब तक जो अनुचित उपेक्षा होती रही, उसका अन्त हुआ और स्वतन्त्र प्रमाण द्वारा समर्थन प्राप्त होने की हालत में पुराण विश्वास-स्थापन के योग्य समझे जाने लगे। पर पुराणों का विशेष अध्ययन तो इसी शताब्दी के आरम्भ में पार्जिटर ने किया। उनके धैर्य और अध्यवसाययुक्त अनुसंधान का यह फल हुआ कि पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री का एक पर्यालोचनात्मक विवरण जगत् के सामने आया। पुराणों में जो ऐतिहासिक वर्णन हैं, उनका पक्ष इससे बहुत प्रबल हुआ है। स्मिथ ने यह प्रमाणित किया है कि मत्स्यपुराण में आन्ध्रों का जो वर्णन है, वह प्रायः सही है। इतिहास के विद्वानों ने अब यह जाना है कि मौर्यों के विषय में विष्णुपुराण का और गुप्तों के विषय में वायुपुराण का वर्णन विश्वसनीय है। पुराणों की ओर अब तक जो कुछ ध्यान दिया जाता था, उससे कहीं अधिक ध्यान देने के पात्र वे अब समझे जाते हैं। पुराण अब भारत के परम्परागत इतिहासवृत्त के एक बहुत बड़े प्रमाण माने जाने

लगे हैं। ऐतिहासिक सामग्री की खोज के लिए आजकल पुराणों का विशेषरूपसे आलोचनात्मक अध्ययन होता है। आधुनिक इतिहासकार और प्राच्यतत्त्ववित् रैप्सन, स्मिथ, जायसवाल, भण्डारकर, राय चौधरी, प्रधान, रंगाचार्य, आलतेकर, जयचन्द्र आदि ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों, समीक्षाओं, प्रबन्धों और लेखों में पौराणिक सामग्री का उपयोग किया है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के व्यापक इतिहास के लिए पुराणों का बड़ा महत्त्व है। क्योंकि इनमें अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, शासनसंस्थाएँ, धर्म, तत्त्वज्ञान, कानून और उसकी संस्थाएँ, ललित कलाएँ, शिल्पशास्त्र आदि विविध विषयों के विस्तृत प्रकरण हैं। आधुनिक इतिहासकार को विविध आख्यानों और उपाख्यानों से विशुद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्य अलग करके निकाल लेना होगा।

विगत दो सहस्र वर्षों से भी अधिक काल से रामायण और महाभारत के साथ पुराण भी भारतीय जीवन को अपने विविध आदर्श पुरुषों के चरित्रों से अनुप्राणित और प्रभावित करते चले आ रहे हैं। राम, कृष्ण, हरि, शिव आदि नाम आज भी करोड़ों मनुष्यों के जीवनधन हैं। दीन-दुखी जनता के छिन्न-विच्छिन्न स्नायुओं और भग्न हृदयों को बल देकर तथा उनमें आशा-विश्वास का संचार कर पुराणों ने उन्हें उबारने का काम किया है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ऐसे लोग पहले निकले, जो पुरातन तथा परम्परागत प्रत्येक वस्तु की हँसी उड़ाना ही जानते थे। उनकी दृष्टि में पुराणों का मूल्य कूड़े-करकट से अधिक नहीं था। यह महान् शुभ चिह्न है कि पुराणों के सम्बन्ध में अब आधुनिकों की दृष्टि बदल रही है। गीताप्रेस और 'कल्याण' ने हमारी पूर्व परम्परा की रक्षा करने में बहुत बड़ा काम किया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पुराणों के पाठ बहुत भ्रष्ट हो गये हैं। हम यह आशा कर सकते हैं कि पाठपरीक्षण के पाश्चात्य मानक के अनुसार जाँच करके पुराणों के संशोधित संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। □

सन्दर्भ-

१ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः। इतिहासपुराणं च पंचमो वेद उच्यते॥
'ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नाम के चार वेद कहे गये हैं। इतिहास-पुराण पंचम वेद कहा जाता है।'

२ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाब्जशिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ (अथर्व ११.७.२४)
'ऋक्, साम, छन्द, पुराण, यजुर्वेद, दिव्य लोक का आश्रय करके रहने वाले देवता-

सब यज्ञ के उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं।'

३. स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम्। चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदमिति॥ (छान्दोग्य. ७.१.२)

'उसने कहा, हे भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहासपुराण, वेदों का वेद जानता हूँ।'

४ आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥ (विष्णुपुराण ३.६.१५)

'आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के साथ पुराणार्थ-विशारद (व्यास) ने पुराणसंहिता रची।'

५ पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता:॥ (वायुपुराण)

'सब शास्त्रों में पुराण का ब्रह्मा ने पहले स्मरण किया। अनन्तर उनके मुखों से वेद निकले।'

६ पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ॥ (यह वचन अनेक पुराणों में है।)

'हे निष्पाप! कल्पान्तर में तब एक ही पुराण था।'

विष्णुपुराण में राज्य एवं समाज

बालमुकुन्द पाण्डेय*

अष्टादश पुराणों में श्री विष्णुपुराण का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके रचयिता श्री पराशर जी हैं। इसमें अन्य विषयों के साथ भूगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश और श्रीराम-श्रीकृष्ण चरित आदि कई प्रसंगों का अनूठा और विशद वर्णन किया गया है। यद्यपि यह पुराण विष्णु के पूरक हैं। भक्ति व ज्ञान की प्रशान्त धारा इसमें सर्वत्र परिलक्षित होती है। फिर भी भगवान् शंकर के लिए कहीं भी अनुदार भाव प्रकट नहीं किया गया है। श्री कृष्ण-बाणासुर संग्राम में विष्णु और शिव के युद्ध का वर्णन आता है। किन्तु स्वयं भगवान् कृष्ण भगवान् शिव के साथ अपनी अभिन्नता प्रकट करते हुए कहते हैं-

युष्मद्दत्तवरो वाणो जीवतामेष शंकर।
त्वाद्वाक्यगौरैरवादेतन्मया चक्रं निवर्तितम्॥
त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया।
मत्तोऽविभिक्मात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर॥
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवेवासुरमानुषम्।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्वं ज्ञातुमिहार्हसि॥
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हार॥ (विष्णु पुराण-५, ३३, ४६-४९)

हे शंकर! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह वाणासुर जीवित रहे अपने वचन का मान रखने के लिए मैं इस चक्र को रोक लेता हूँ। आपने जो अभय दिया है वह सब मैंने भी दे दिया है।

हे शंकर! आप अपने को मुझमें सर्वदा अभिन्न देखें। आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् देव, असुर, मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं है। हे हरि! जिन लोगों का चित्त अविद्या से मोहित है। वे भिन्न दर्शी पुरुष ही हम दोनों में भेद रखते हैं और बतलाते हैं।

विष्णुपुराण में भारतीय राज, समाज व संस्कृति के मूल तत्वों का लोकोपयोगी संकलन किया गया है। पुराणों की रचना का मूल उद्देश्य धर्म और अध्यात्म के

*राष्ट्रीय संगठन मंत्री, अ.भा.इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली

गूढ़ तत्त्वों को समाज के लिए सरल भाषा और सुगम शैली में उपस्थित करना है। वास्तव में यह भारतीय जन-जीवन को सदा प्रभावित करते हैं। पुराण भारतीय संस्कृति के अक्षय भण्डार हैं। भारतीय समाज का यथार्थ चित्र पुराणों के द्वारा ही सामने लाया जा सकता है। इसके बिना भारतीय जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। संसार में ज्ञान-विज्ञान, मानव-मस्तिष्क की कोई भी कल्पना नहीं जिसका निरूपण पुराणों में नहीं हुआ है। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझना बहुत कठिन है वे पुराणों के माध्यम से सरल भाषा में कथा आख्यान, रूपक आदि विद्या से सरल भाषा में वर्णित हुए हैं। भारतीय संस्कृति दुनिया की सबसे आदर्श और समृद्ध संस्कृति है। विश्व के सर्वोच्च अधिष्ठान पर बैठकर दीक्षित करने का श्रेय भारतीय संस्कृति को है। जिसका संवाहक पुराण हैं इसकी उत्कृष्ट और आदर्शवादिता के उदाहरण विष्णुपुराण में देखे जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति का मूल आधार कर्तव्य पालन हैं। विष्णुपुराण में विशेष रूप से ब्राह्मणों की कर्तव्यनिष्ठा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था में ब्राह्मण देश का नेता कर्णधार और उन्नायक होता था। क्षत्रिय शासक इसके मार्गदर्शन में ही शासन करते थे। ब्राह्मण त्यागी, तपस्वी और निःस्वार्थी होते थे। राजनीति और समाज के लोगों का निदानकर उसका उपचार करना ही उनका कार्य होता था। देश के नैतिक स्तर को ऊँचा बनाए रखते थे। अपने राजा का चरित्र निर्दोष रखना तो अपना आवश्यक कर्तव्य मानते थे ताकि देश पर किसी प्रकार का संकट न आने पावे।

विष्णुपुराण के अनुसार वेन एक नास्तिक अहंकारी और निरंकुश राजा हुआ था। हिरण्यकश्यप की तरह भगवान् की अपेक्षा अपने सम्मान को अधिक बल देता था, वह कहता था-''मुझसे भी बढ़कर ऐसा कौन है जो मेरा भी पूजनीय है। जिसे तुम यज्ञेश्वर मानते हो। वह हरि कहलाने वाला कौन है! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, कुशा, पृथ्वी और चन्द्रमा तथा इसके अतिरिक्त और भी देवता शाप और कृपा करने में समर्थ हैं। वे सभी राजा के शरीर में निवास करते हैं। इस प्रकार राजा सर्वदेवमय हैं।''

ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिन्द्रो वायुर्यमो रविः।
हुतभुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः॥
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः॥ (१/१३/२१-२२)

वो कहता था किसी को भी दान, यज्ञ हवनादि नहीं करना चाहिए। हे ब्राह्मणों!

जैसे स्त्री का परम धर्म पति सेवा है वैसे ही आपका परम धर्म मेरी आज्ञा का पालन है। इसीलिए मेरे आदेश का पूर्ण रूप से पालन करो।

एवं ज्ञात्वा मयाज्ञप्तं यद्यथा क्रियतां तथा।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं च भो द्विजाः॥
भर्तृशुश्रषणं धर्मो यथा स्त्रीणां परो मतः।
ममाज्ञापालनं धर्मो भवतां च तथा द्विजाः॥ (१/१३/२३-२४)

ब्राह्मणों ने उसे समझाने का बहुत यत्न किया लेकिन अत्याचार बढ़ता ही गया और उसने ऋषियों की बात नहीं मानी तब ऋषियों ने सलाह कर राजा की जंघा को यत्नपूर्वक मंथन किया और उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ। जो ठूंठ के समान काला अत्यंत नाटा और छोटे मुख वाला था। उसने अतिआतुर होकर कहा मैं क्या करूँ? तब ऋषियों ने कहा निषीध (बैठ) अतः वह निषाद कहलाया। उसके द्वारा उस निषाद रूप द्वार से उस राजा वेन का सम्पूर्ण पाप निकल गया। अतः निषादगण वेन के पापों का नाश करने वाले हुए। (विष्णुपुराण १/१३/३३-३६)

उसके बाद ऋषियों ने वेन के दायें हाथ का मंथन किया। जिससे परम प्रतापी वेन सुत पृथु प्रकट हुए जो अपनी शरीर से अग्नि के समान दिव्यमान थे। तत्पश्चात् वेन शतपुत्र के जन्म के फलस्वरूप स्वर्ग लोक को प्राप्त हुआ।

तस्यैव दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्ते ततो द्विजाः।
मथ्यमाने च तत्राभूत्पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन्॥ (१/१३/३८-३९)

जिन्हें विधिपूर्वक राजाधिकार देकर अभिषित किया गया। 'विष्णुचक्रं करे चिह्नं सर्वेषां चक्रवर्तिनाम। भवत्यव्याहतो यस्य प्रभावस्त्रिदशैरपि॥' (१/१३/४६) उसके पिता ने जिस प्रजा को अप्रसन्न किया था उन सभी प्रजा को पृथु ने प्रसन्न किया।

पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः।
अनुरागात्ततस्य नाम राजेत्यजायत॥ (१/१३/४८)

पृथु की उन्नत राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में विष्णुपुराण के १/१३/४७ से १/१३/५० तक वर्णन मिलता है कि जब वे समुद्र में चलते थे तो जल बहने से रुक जाता था; पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे; और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई।

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभंगश्च नाभवत्॥ (१/१३/४९)

पृथ्वी बिना जोते बोए धान्य उगाने वाली थी। केवल चिन्तन मात्र से ही अन्न

सिद्ध हो जाता था। गौवें कामधेनुरूपा थीं और पत्ते-पत्ते पर मधु भरा रहता था।

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥ (१/१३/५०)

अर्थात् यह एक समृद्ध और लोककल्याणकारी राज्य की स्पष्ट परिकल्पना को पुष्ट करता है। राज्य सुशासन, सुव्यवस्था स्थापित करने का श्रेय उन ब्राह्मणों को है जिन्होंने शासन में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले तत्त्वों को निकाल फेंका और ऐसे हाथों में सत्ता सौंपी जो प्रजा के सच्चे अर्थ में संरक्षण करने वाले थे। इससे राज्य में सुधार हुआ। प्रजा प्रसन्न हुई। जिसे एक आदर्श राज्य की संज्ञा दी गई।

विष्णुपुराण में धार्मिक उदारता का वर्णन भी मिलता है। वैष्णव धर्म एक उदार धर्म है। उसमें उँच-नीच का कोई भेद नहीं है। इसके किसी वर्ग को नीचा समझ कर उपेक्षा नहीं की गई। वरन् सबको गले लगाया जाता है। सबको वैष्णव भक्ति का समान अधिकार प्राप्त है। भक्ति के क्षेत्र में अधिकारों की कोई दीवार खड़ी नहीं की गई है। ये इसकी महान विशेषता है। विष्णुपुराण इसका साक्षी है। जम्बूदीप के वर्णों और जातियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस द्वीप में जो आर्यक, कूरर, विदिष्य और भावी नामक जातियाँ हैं, वे क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं।

जम्बूवृक्षप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहांस्तरुः।
प्रल्क्षस्तन्नमसंज्ञोऽयं पल्क्षद्वीपः द्विजोत्तम॥ (२/४/१७)

शाल्मल द्वीप में कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण नामक जातियाँ रहती हैं। जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्म, अव्यय और यज्ञाश्रय दृश्य वायु रूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों से पूजन करते हैं। सभी वर्ण समान रूप से यज्ञों में सम्मिलित होते हैं। आज भी वैष्णव धर्म के मूल भूत सिद्धान्तों के अनुसार सभी वर्गों को समान रूप से यज्ञों में सम्मिलित होने का अधिकार है। इस धार्मिक उदारता के कारण वैष्णव धर्म का देश-विदेश में विस्तार हुआ। बड़ों का सम्मान करना भारतीय संस्कृति की एक महान विशेषता है। माता-पिता, गुरु और वृद्ध जनों की आज्ञा का पालन यहाँ एक साधारण नियम था, जिसका हर कोई पालन करता था। इस नियम में इतनी दृढ़ता आ गई कि वृद्ध जनों की मृत्यु होने के बाद भी उनके प्रति सम्मान बना रहता था। उस सम्मान के प्रतीक के रूप में जल से तर्पण किया जाता था। जिन पूर्वजों के कारण आज समाज ने इतना उत्थान किया है कि उनकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। विष्णुपुराण में अपने सगे सम्बन्धियों के ही नहीं अपितु

सृष्टि के सभी प्राणियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने की प्रथा है।

विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में समकालीन राजवंशों का विशद वर्णन है। मेरा यह मानना है कि पौराणिक वाङ्मय में लब्ध प्रतिष्ठित राजाओं का ही वर्णन किया गया है, जिनका राज्य व समाज के उन्नयन में योगदान है। बहुत सारे राजा ऐसे हुए होंगे जिनका नामोल्लेख करना पुराणकार आवश्यक नहीं समझते इसलिए पुराण की वंशावलियों के आधार पर कालक्रम का निर्धारण उचित एवं न्याय-संगत नहीं होगा। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में वैवश्वत मनु, इक्ष्वाकुवंश, मान्धाता, त्रिशंकु, सगर, सौदास, खटवांग के अतिरिक्त भगवान् श्रीराम के चरित्र का वर्णन कुशल और प्रजापालक राजा के रूप में मिलता है। विष्णुपुराण में आदर्श शासन अर्थात् रामराज्य का वर्णन है। रामराज्य में कहीं भी धर्म का क्षय, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नहीं होता।

धर्महानिर्न तेष्वस्ति न संघर्षः परस्परम्।
मर्यादाव्युत्क्रमो नापि तेषु देशेषु सप्तसु॥
मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा॥
(२/४/६८-६९)

वहाँ के निवासी रोग, शोक, रागद्वेष आदि से परे रहकर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं। उनमें ऊँच-नीच, मरने-मारने आदि जैसे भाव नहीं हैं।

विष्णुपुराण में हिरण्यकश्यप, कंस जैसे अन्यायी राजाओं के कुशासन का वर्णन है। जिससे प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी थी। वहीं न्यायमूर्ति कर्तव्यपरायण तथा अपने को प्रजा का सेवक मानने वाले आदर्श राजाओं के सुशासन का भी उल्लेख है। आदर्श शासक जनता के जीवन और सम्पत्ति की सामूहिक आपत्तियों से सुरक्षा करना अपना नैतिक कर्तव्य मानता है। प्रजा राजा का अनुकरण करती है। इसलिए राजा की नैतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी जनता के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

विष्णुपुराण में अतिथि सत्कार न करने वालों की भर्त्सना की गई है। विष्णुपुराण ३/१/१५-१६ श्लोक में कहा गया है कि जिसके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अपने सब पाप कर्म गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्य कर्मों को साथ लेकर चला जाता है। अतिथि का अपमान उसके प्रति गर्व व दम्भ का व्यवहार उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चाताप कटु भाषण व उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित व पाप है।

विष्णुपुराण तपस्या या संघर्ष से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। ध्रुव, प्रह्लाद,

राम, कृष्ण आदि का जीवन जीने की कला राज्य व समाज के लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ध्रुव से पितृ स्नेह, कृष्ण से मातृ स्नेह, राम से राज्य का अधिकार और प्रह्लाद से भक्ति का अधिकार छीनने की घटना विष्णुपुराण के गंभीर उपदेशों को प्रकाशित करता है। विष्णुपुराण से हमें कठिनाइयों से संघर्ष करने, दुःखों को धैर्यपूर्वक सहन करने, व्यक्ति को क्रियाशील व शक्तिशाली बनाने की एक उन्नत शिक्षा प्राप्त होती है।

विदेशी इतिहासकारों ने षड्यन्त्रपूर्वक दो सौ वर्षों में हमारे इतिहास को विकृत किया; दूषित अभिव्यक्ति के माध्यम से हमारे पुराणों को निन्दित साहित्य की श्रेणी में डाल दिया क्योंकि पुराण उनके उद्देश्यों के रास्ते में बाधक बन रहा था। हमें श्रद्धा व विश्वासपूर्वक पुराणों के अध्ययन के आधार पर विदेशियों के द्वारा विकृत किये गये इतिहास की बातों के उत्तर देने में अपना समय अपव्यय न करके पुराणों और महाकाव्यों में वर्णित इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर उनसे भी बड़ी रेखा खींच देनी है। जिससे उनके द्वारा किया हुआ विकृत इतिहास स्वतः कालवाह्य और महत्त्वहीन हो जायेगा।

पुराण नित्य नूतन है; पुराण इतिहास का श्रेष्ठ साधन है। इतिहास का अध्ययन सदैव वर्तमान परिप्रेक्ष्य में होता है। इतिहास के अध्ययन से अतीत वर्तमान में जीवित रहता है। इतिहास के अध्ययन में निहितार्थ का होना आवश्यक है। अतः यह कहा जा सकता है कि आजके वर्तमान समाज व राज्य के उत्तम मार्गदर्शन के लिए विष्णुपुराण में वर्णित राज्य व समाज व्यवस्था अनुकरणीय है। यदि आज का जन समुदाय उस आदर्श को अपनाए तो हमारा समाज व देश सर्वांगीण उन्नति कर परम वैभव की प्राप्ति की तरफ अग्रसर हो सकता है। □

विष्णुपुराण और भारत

डॉ. कुँवर बहादुर कौशिक*

ऋग्वेद (१/१५४; १५५; १५६; ७/९९-१००) में 'विष्णु' के लिए पाँच सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। इन्हीं सूक्तों के आधार पर विष्णु के स्वरूप एवं महत्त्व का मूल्यांकन किया गया है। वैदिक देवमण्डल के द्युस्थानीय देवताओं में 'विष्णु' का उल्लेख स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण देवता की ओर संकेत करता है, जिसकी विविध प्रकार की व्याख्याएँ विद्वानों द्वारा की गयी हैं। यास्क ने निरुक्त (१२/१८) में "विष्णुः विशतेः वा व्यश्नोतेः वां" अर्थात् विष्णु की उत्पत्ति 'विश' (प्रवेश करना) अथवा 'वि+अश्' (व्याप्त करना) धातु से मानी है। वृहद्देवताकार का मत है कि 'विष्णु' शब्द व्याप्ति अर्थ वाली 'विष', 'विश' अथवा 'वेविष्' (विल्लृ) धातुओं से बना है। नीलकण्ठ ने 'ष्णु' (प्रस्रवण करना) धातु में 'वि' उपसर्ग से विष्णु शब्द सिद्ध किया है। दीप्ति अर्थ में प्रयुक्त होने वाली चुरादिगणी 'विच्छ' धातु से प्रकाशशील अर्थ में 'विष्णु' शब्द की सिद्धि की जाती है। जे. खोन्दा (ऑस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म) ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित 'अथ यद् विषितो, भवति तद् विष्णुः' के आधार पर विष्णु का विस्तृत, मुक्त, स्वतन्त्र या खुला हुआ अर्थ स्वीकार करते हैं। थॉमस, ब्लाख तथा जोहान्सन विष्णु शब्द में 'जिष्णु' (विजयी) भाव का अर्थ ग्रहण करते हैं। हापकिन्स ने गति या चक्रमण से विष्णु का अर्थ गत्यर्थक 'वि' अथवा 'वी' धातु से माना है। मैक्डानल का भी विचार है कि ऋग्वेद में विष्णु को गमन करने या त्रेधा विचक्रमण अर्थ में ही माना गया है।

विष्णुपुराण का आकार- इस पुराण के प्रकरणों का विभाग 'अंश' नाम से मिलता है। उपलब्ध विष्णुपुराण में छः अंश हैं। उनमें अवान्तर प्रकरणों का विभाग अध्याय नाम से है, इसका प्रारम्भ 'पराशर' और 'मैत्रेय' के प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ है।

प्रथम अंश में सृष्टि के वर्णन की प्रधानता है। इसमें सृष्टि के आदिभाग में घटित कुछ महत्त्वपूर्ण उपाख्यान भी दिये गये हैं। सृष्टि का कारण यहाँ ब्रह्म को कहा गया है तथा उसकी शक्ति का भी विवरण दिया गया है। किस-किस की

*अ.प्रा. उपाचार्य, भटवली महाविद्यालय उनवल,गोरखपुर

कितनी-कितनी आयु है, इसका भी आश्चर्यजनक विवरण यहाँ मिलता है। एक सृष्टि के पूरे समय को एक कल्प कहा गया है और एक कल्प के समाप्त होने पर फिर आगे सृष्टि किस प्रकार प्रारम्भ होती है, इसका भी विवरण दिया गया है। प्रलय का भी वर्णन हुआ है। इसके अनन्तर देव, दानव, मनुष्य आदि की सृष्टि बतलायी गयी है। आगे ध्रुव और प्रह्लाद के उपाख्यान हैं। भगवान् विष्णु की महिमा तथा विभूतियों का एवं उनकी स्तुतियों का समावेश अत्यन्त मनोरम है।

द्वितीय अंश में भी सृष्टि का ही विवरण है। उसी प्रसंग में भूगोल, खगोल तथा सप्तलोकों का विवरण मिलता है। भरत तथा उसके वंश का वर्णन भी आया है। जड़भरत का प्रसिद्ध उपाख्यान भी इसमें आया है। भगवान् विष्णु की स्तुति भी इसी अंश में प्राप्त है।

तृतीय अंश में मन्वन्तर-वर्णन, २८ व्यासों का विवरण, व्यास द्वारा वेदों का विभाजन, वेदों का संक्षिप्त विवरण, पुराणों का विवरण, यमगीता का उल्लेख आदि साहित्य सम्बन्धी विवरण आये हैं। वर्णाश्रम तथा नैतिक धर्मों का कथन हुआ है तथा बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का विवरण भी है।

चतुर्थ अंश में मुख्य रूप से राजवंशों की उत्पत्ति और मुख्य-मुख्य राजाओं के चरितों का उल्लेख हुआ है। पंचम अंश में विष्णु भगवान् के कृष्णावतार का तथा भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन आया है।

षष्ठम् अंश में कलियुग का स्वरूप वर्णित है और कलियुग में अपने धर्म का अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिए, यह बतलाया गया है। आत्मा की चर्चा और देहात्मवाद का खण्डन भी इसमें मिलता है।अन्त में, विष्णुपुराण के महत्त्व का विवरण है।

विष्णुपुराण की तिथि- विष्णुपुराण के आविर्भावकाल के विषय में विद्वानों में विभिन्न मत हैं, परन्तु कुछ ऐसे नियामक तथ्य हैं, जिनका अवलम्बन करने से हम समय का निर्देश भली-भाँति कर सकते हैं।

(क) कृष्णकथा की दृष्टि से भागवत तथा विष्णुपुराण में पार्थक्य यह है कि विष्णुपुराण जहाँ ध्रुव, वेन, पृथु, प्रह्लाद, जड़भरत के चरित को संक्षेप में ही विवृत करता है, वहाँ भागवत उनका विस्तार दिखलाता है। कृष्णलीला के विषय में भी यही वैशिष्ट्य लक्ष्य है। फलतः विष्णुपुराण भागवत से प्राचीन है।

(ख) ज्योतिष विषयक तथ्यों के आधार पर भी विष्णुपुराण का समय निर्णीत है। विष्णुपुराण (२/९/१६) में नक्षत्रों का आरम्भ कृत्तिका से होता है[१] और वराहमिहिर (लगभग ५५० ई.) के अनुसार हम जानते हैं कि प्राचीनकाल में

नक्षत्रों का जो आरम्भ कृत्तिका से होता था, वह उनके समय में अश्विनी हो गया। फलतः कृत्तिकादि का प्रतिपादक विष्णुपुराण ५०० ई. से प्राचीन है; इसी प्रकार राशियों का भी उल्लेख विष्णुपुराण में अनेकत्र है (३/८/२८[२], २/८/३०, २/८/४१-४२, २/८/६२-६३)। ज्योतिर्विदों की मान्यता है कि सर्वप्रथम संस्कृत ग्रन्थों में याज्ञवल्क्यस्मृति में राशियों का समुल्लेख उपलब्ध है और इस ग्रन्थ का रचनाकाल द्वितीय शती है। फलतः विष्णुपुराण द्वितीय शती से प्राचीन नहीं हो सकता[३]।

(ग) वाचस्पति मिश्र (८१४ ई.) ने योगभाष्य की अपनी टीका तत्त्ववैशारदी (२/३२; २/५२; २/५४) में विष्णुपुराण के श्लोकों को उद्धृत किया है तथा १/१९, १/२५, ४/१३ में वायुपुराण के वचन उद्धृत किये हैं। 'स्वाध्यायाद् योगमासीत्' इस भाष्य की टीका में वे लिखते हैं- 'अत्रैव वैयसिको गाथामुदाहरति' अर्थात् वाचस्पति की दृष्टि में व्यासभाष्य में उद्धृत 'स्वाध्यायाद् योगमासीत्' व्यास का वचन है और यही श्लोक विष्णुपुराण के ६.६.२ में मिलता है। योगभाष्य का एक वचन (३/१३- तदेतद् त्रैलोक्यं आदि) न्यायभाष्य में उपलब्ध है (१/२/६)। इन प्रमाणों के आधार पर विष्णुपुराण को प्रथम शती से पूर्व मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। ऊपर कलियुग के राजाओं के वर्णन प्रसंग में विष्णुपुराण गुप्तों के आरम्भिक इतिहास से परिचय रखता है, जब वे साकेत (अयोध्या), प्रयाग तथा मगध पर राज्य करते थे। यह निर्देश चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०-३२६ ई.) के राज्यकाल में गुप्तराज्य की सीमा का द्योतक माना जाता है। फलतः विष्णुपुराण का समय १०० ई.-३०० ई. तक मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

(घ) विष्णुपुराण की प्राचीनता के विषय में तमिल-साहित्य के एक विशिष्ट काव्यग्रन्थ से बड़ा ही दिव्य प्रकाश पड़ता है। ग्रन्थ का नाम है- 'मणिमेखलै', जिसमें मणिमेखला नामक समुद्री देवी के द्वारा समुद्र में आपद्ग्रस्त नाविकों तथा पोताधिरोहियों के रक्षण की कथा बड़ी ही रुचिरता के साथ दी गयी है। ग्रन्थ का रचनाकाल ईस्वी की द्वितीय शती माना जाता है। इसमें एक उल्लेख विष्णुपुराण के विषय में निश्चयरूपेण वर्तमान है। वेंजी की सभा में विभिन्न धर्मानुयायी आचार्यों के द्वारा प्रवचन तथा शास्त्रार्थ का उल्लेख यह ग्रन्थ करता है, जिनमें वेदान्ती, शैववादी, ब्रह्मवादी, विष्णुवादी, आजीवक, निर्ग्रन्थ, सांख्य, सांख्य आचार्य, वैशेषिक व्याख्याता और अन्त में भूतवादी के द्वारा मणिमेखला को सम्बोधित किये जाने का उल्लेख है। इसी सन्दर्भ में तमिल में एक पंक्ति आती है- 'कललवणं पुराणमोदियन्', जिसका अर्थ है- विष्णुपुराण में पाण्डित्य

रखने वाला व्यक्ति। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि संगम युग में 'विष्णु' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। उस देवता के निर्देश के लिए तिरुमाल तथा कललवणं विशेषण रूप से प्रयुक्त होते हैं। फलतः इस पंक्ति में विष्णुपुराण का ही स्पष्ट संकेत है, भागवत, नारदीय तथा गरुड़ जैसे वैष्णवपुराणों का नहीं। यह सम्मान्य मत है इस विषय के पण्डित डॉ. रामचन्द्र दीक्षितर् का, जिन्होंने तमिल-साहित्य तथा इतिहास का गम्भीर अनुशीलन अपने एतद्विषयक ग्रन्थ- 'स्टडीज इन तमिल लिटरेचर ऐण्ड हिस्टरी' में किया है। मणिमेखलै के इस उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तमिल देश में उस समय पुराणों का प्रवचन तथा पाठ जनता के सामने उनके चरित के उत्थान के निमित्त किया जाता था। इस समय विष्णुपुराण विशेषरूपेण महत्त्वशाली और गौरवपूर्ण होने के कारण इस कार्य के लिए चुना गया था। यह इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट संकेत है। द्वितीय शती में प्रवचन के निमित्त चुने जाने वाले पुराण का समय उस युग से कम से कम एक शताब्दी पूर्व तो होना ही चाहिए। इससे स्पष्ट है कि कम से कम प्रथम शती में विष्णुपुराण की, अथवा उसके अधिकांश भाग की, निश्चयेन रचना हो चुकी थी। व्यास-भाष्य के साक्ष्य पर निर्धारित समय की पुष्टि इस उल्लेख से आश्चर्यजनक रूप में हो रही है।[४]

भारत की भौगोलिक स्थिति- विष्णुपुराण में भारत के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि-

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।[५]

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण स्थित है उसका नाम भारतवर्ष और वहाँ के निवासियों को भारती कहा जाता है। इस प्रकार का विवरण विश्व के किसी भी देश के लिए नहीं प्राप्त होता है। विष्णुपुराण में निर्दिष्ट सीमा के अनुसार भूमण्डल के नौ भेद किये गये हैं उनका विष्णुपुराण में निर्देश इस प्रकार है-

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय।
इन्द्रद्वीपःकसेरूश्च ताम्रपर्णो गभिस्तमान्।।
नागद्वीपास्तथा सौम्योगन्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्।।[६]

अर्थात् भारत के भौगोलिक विस्तार में नौ द्वीपों का जो विवरण प्राप्त होता

है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; जो इस प्रकार हैं-

१-इन्द्रद्वीप, २-नागद्वीप, ३-सौम्य, ४-गान्धर्व, ५-वारुण, ६-कशेरूमान, ७-गभस्तिमान, ८-ताम्रपर्ण (सिंहल), ९-कुमारिका। इन द्वीपों के अभिज्ञान के सम्बन्ध में यद्यपि विवाद है तथापि पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने इसका अभिज्ञान किया है[७]।

कुलपर्वत- विष्णुपुराण में भारत के प्रमुख पर्वतों का भी उल्लेख किया गया है-

महेन्द्रोमलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।।[८]

अर्थात् महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष या हेम पर्वत, विन्ध्य, और पारियात्र।

भारतीय नदियों का विवरण- भारतीय नदियों को 'विश्वस्य मातरः सर्वाः' कहते हुए विष्णुपुराण में भारत की प्रमुख नदियों का विवरण दिया गया है-

शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गता।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च परियात्रोद्भवा मुने।।
नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः।
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखा ऋक्षसम्भवाः।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः।।
कृतमाला ताम्रपर्णी प्रमुखा मलयोद्भवाः।
त्रिसामा चर्षिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाःस्मृता।।
ऋषिकुल्या कुमाराद्याः शुक्तिमत् पादसम्भवाः।
आसां नद्य उपानद्य सन्त्यन्याश्च सहस्रशः।।[९]

जनपदों का उल्लेख- विष्णुपुराण में भारत के प्रमुख जनपदों का उल्लेख निम्नांकित रूप से किया गया है-

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः।।
पुण्ड्राः कलिंगा मगधा दक्षिणाद्याश्च सर्वशः।
तथा परान्ता सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदा।।
कारूषा मालवाश्चैव पारियात्र निवासिनः।
सौवीरासैन्धवा हूणाः साल्वाः कोशलवासिनः।।
माद्रारामास्तथाम्बष्ठा पारसीकादयस्तथा।[१०]

कर्मभूमि भारत- भारत के समान पृथ्वी का कोई भी देश नहीं है। भारत कर्मभूमि है, अन्य देश भोगभूमि हैं; विष्णुपुराण में इसका उल्लेख किया गया है-

कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गच्छताम्[११]
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बुद्वीपे महामुने
यतो हि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः॥[१२]
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपिसत्तम
कदाचित् लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥[१३]

भारत वंदना- विष्णुपुराण एक ऐसा राष्ट्रीय ग्रन्थ है जिसमें देवताओं द्वारा इस राष्ट्र की वंदना की गयी है और देवगण बार-बार इस भूमि में पुरुष रूप में आकर इस भूमि की महत्ता का वंदन और अभिनन्दन करते हैं-

गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः फुरुषाः सुरत्वात्[१४]
धन्याः खलु ते मनुष्याः
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीणाः।[१५]

वंश एवं वंशानुचरित- पौराणिक अनुश्रुति का स्पष्ट प्रामाण्य है कि भारतवर्ष की वंशावली मनु से ही प्रारम्भ होती है। मनु से ही तीनों राजवंशों का उदय हुआ- १. सूर्यवंश का (राजधानी अयोध्या में), २. चन्द्रवंश का (राजधानी प्रतिष्ठानपुर-प्रयाग के पास आधुनिक झूंसी में), ३. सौद्युम्नवंश का; जिसका शासन क्षेत्र भारत का पूर्वी प्रान्त था। राजवंशों के विषय में पार्जीटर महोदय की धारणा है कि मानव वंश द्रविड़ था, चन्द्रवंश विशुद्ध आर्य तथा सौद्युम्नवंश मुण्डा-मानख्मेर जाति का था। इस तथ्य की पुष्टि में उन्होंने जो युक्तियाँ प्रदर्शित की हैं, वे नितान्त भ्रान्त, परम्परा-विरुद्ध तथा अशुद्ध हैं।

पार्जीटर ने आर्यों के विषय में लिखा है कि परम्परानुसार आर्य प्रतिष्ठानपुर से चलकर उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण विजय कर वहाँ फैल गये और ययाति के समय तक उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जिसे मध्यदेश कहते हैं। भारतीय अनुश्रुतियों में अफगानिस्तान से भारत पर ऐलों (आर्य) के आक्रमण का तथा पूर्व की ओर उनके बढ़ाव का कोई उल्लेख नहीं है; विपरीत इसके द्रुह्यु लोगों का (जो ऐलों-आर्य की एक शाखा थे) भारत के बाहर जाने का उल्लेख पुराणों में मिलता है। ऐलों के विषय में पार्जीटर महोदय का कथन यथार्थ

है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु अन्य दोनों राजवंशों के विषय में उनके निष्कर्ष नितान्त भ्रमोत्पादक तथा बिल्कुल असत्य हैं। इसी प्रकार ऐलों के भारत के बाहर से आने की उनकी कल्पना भी भ्रान्त है। इस विषय में उनका स्पष्ट आधार वे लोक कथाएँ हैं, जो ऐलों के पूर्वज पुरूरवा का सम्बन्ध हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेशों से जोड़ती हैं। इस तर्क में विशेष बल नहीं है। बात यह है कि मनु की कन्या इला का मध्यवर्ती हिमालय प्रदेश में गिरिविहार के निमित्त जाना तथा सोमसूनु बुध के साथ उसकी भेंट होना तो पुराणों के अनुकूल है, परन्तु सोम तथा बुध का न तो मध्यवर्ती हिमालय के ही मूल निवासी होने का कहीं संकेत है और न इनके भारत के कहीं बाहर से आने का निर्देश है। ये लोग विशुद्ध मध्यदेश के ही निवासी आर्य जाति के थे। इनके मूल स्थान का भारत से बाहर खोज निकालने का प्रयास सर्वथा व्यर्थ तथा भ्रान्त है।

इसी प्रकार मानवों (मनुवंशियों) को द्रविड़ मानने के पार्जीटर[१६] की युक्ति यह है कि मानवों का वर्णन ऐलों (आर्यों) से भिन्न जाति के रूप में हुआ है तथा वे ऐलों से पूर्व ही यहाँ भारत में निवास करते थे। आर्यों से पूर्व निवास करने वाली जाति द्रविड़ों की थी। फलतः मानव द्रविड़ जाति के ही व्यक्ति हैं, यह युक्ति भी ठीक नहीं। पुराण मानवों को कभी भी आर्यों से भिन्न जाति का संकेत नहीं करता। प्रत्युत इन दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध होते थे, जो जाति-साम्य के ही सूचक हैं। जाति, भाषा और धर्म की दृष्टि से दोनों समान ही कहे गये हैं। द्रविड़ का मूल स्थान सुदूर दक्षिण में ही सर्वदा से रहा है, जहाँ वे आज भी प्रतिष्ठित हैं। उत्तर भारत के मध्य में आर्यावर्त के ठीक बीचोबीच अयोध्या में- द्रविड़ों की स्थिति बतलाना इतिहास की एक विकट भ्रान्ति है। मनुवंशी पुरुषों में से अनेक ऋग्वेद के मन्त्रों के द्रष्टा हैं, जो उनके आर्यत्व का स्पष्ट परिचायक है, न कि उनके ऊपर आरोपित द्रविड़त्व का। फलतः मानव भी उसी प्रकार विशुद्ध आर्य थे, जिस प्रकार ऐल लोग।

सौद्युम्नों के विषय में पार्जीटर का कहना है चूँकि वे दक्षिण-बिहार तथा उड़ीसा में शासन करते थे, फलतः वे मुण्डा-मानख्मेर जाति (जंगली मुण्डा जाति) के ही थे, यह कथन अनुचित है। पुराणों का साक्ष्य इसके विरुद्ध है। ये लोग मानवों के ही एक उपकुल के रूप में वर्णित हैं, जिनके साथ इनका वैवाहिक सम्बन्ध भी विद्यमान था। केवल शासन-क्षेत्र तथा स्थिति-प्रदेश की समता पर यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा अनुचित है।

'इक्ष्वाकुवंश' नाम से वंश शब्द का तात्पर्य क्या है? वंश शब्द का प्रयोग

भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में होता है। 'बुद्धवंश' पालि भाषा का एक विशिष्ट ग्रन्थ है, जिसमें 'इक्ष्वाकुवंश' में 'वंश' शब्द कुल-परम्परा के लिए प्रयुक्त नहीं है प्रत्युत शासक-परम्परा के लिए ही व्यवहृत है। सूर्यवंश के समान चन्द्रवंश भी मनु से ही आरम्भ होता है। अन्तर इतना ही है कि सूर्यवंश ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु से चलता है और चन्द्रवंश पुत्री इला से चलता है। इला का विवाह चन्द्रपुत्र बुध के साथ सम्पन्न हुआ और इसीलिए यह वंश चन्द्रवंश के नाम से प्रख्यात है।

मन्वन्तर काल गणना- भारतीय इतिहास दृष्टि चक्रीय सिद्धान्त को स्वीकार करती है। एक मन्वन्तर की काल गणना बतलाते समय पुराण का एक बहुचर्चित वाक्य है- 'मन्वन्तरं चतुर्युगानां साधिकाह्येक सप्ततिः।' एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगी का होता है। अनेक पुराणों में ७१ चतुर्युगी का काल वर्षों में गिनाया गया है-

त्रिशतकोटयस्तु सम्पूर्णाः सङ्ख्याताः सङ्ख्यायद्विज।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने॥
विंशतिस्तु सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना।
मन्वन्तरस्य सङ्ख्येयं मानुषैर्वत्सरैर्द्विज॥[१८]

मन्वन्तर के नाम-[१९] चौदह मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार हैं- स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, उत्तम मनु, तामस मनु, रैवत मनु, चाक्षुष मनु, वैवस्वत मनु, सावर्णि मनु, दक्ष सावर्णि मनु, ब्रह्म सावर्णि मनु, धर्म सावर्णि मनु, रुद्र सावर्णि मनु, देव सावर्णि मनु, और इन्द्र सावर्णि मनु।

प्रत्येक मन्वन्तर में पाँच अधिकारी होते हैं। इन अधिकारियों के रूप में भगवान् विष्णु की ही शक्ति समर्थ तथा क्रियाशील रहती है, और इन अधिकारियों को विष्णुपुराण स्पष्ट शब्दों में विष्णु की विभूति मानता है।[२०] 'विष्णु' शब्द की निष्पत्ति 'विश् प्रवेशने' धातु से होती है और इसलिए यह समग्र विश्व जिस परमात्मा की शक्ति से व्याप्त है, वही विष्णु नाम से अभिहित किये जाते हैं।[२१] इन अधिकारियों के नाम विष्णुपुराण[२२] के अनुसार हैं- मनु, सप्तर्षि, देव, देवराज इन्द्र, मनुपुत्र। इन अधिकारियों का कार्य बड़ा ही विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। विष्णुपुराण के कथनानुसार जब चतुर्युग समाप्त हो जाता है, तब वेदों का विप्लव लोप हो जाता है। उस समय वेदों का प्रवर्तन नितान्त आवश्यक हो जाता है, और इस राष्ट्रहित के कार्य निमित्त ऋषि लोग स्वर्ग से भूतल पर आकर उन उच्छिन्न तथा विलुप्त वेदों का प्रवर्तन करते हैं। अतः ये ऋषि प्रत्येक मन्वन्तर में वेदों के प्रवर्तक रूप से अधिकारी हैं।[२३]

निष्कर्ष यह है कि पुराण मनु को एक विशिष्ट दीर्घकाल के लिए सम्राट तथा शास्ता मानता है। मनु आदि पाँचों व्यक्ति भगवान् विष्णु के सात्विक अंश हैं, जिनका कार्य ही है जगत् की स्थिति करना-

मनवो भूमजः सेन्द्रा देवाः सप्तर्षयस्तथा।
सात्विकोऽंशः स्थितिकरो जगतो द्विजसत्तम॥[२४]

फलतः जगत् के संरक्षण के कार्य में सहायक जितने भी अधिकारी होते हैं, वे मनु के साथ ही उत्पन्न होते हैं; अपना विशिष्ट कार्य सम्पादित करते हैं, जिससे लोक में सुव्यवस्था की शीतल छाया मानवों का मंगल करती है। इस प्रकार मन्वन्तर की कल्पना लोक मंगल की भावना का एक जाग्रत प्रतीक है। बिना सुव्यवस्था हुए विश्व का कल्याण हो नहीं सकता और मन्वन्तर सुव्यवस्था के निर्धारण का एक सुचारु साधन है- यही उसका मांगलिक पक्ष है। □

सन्दर्भ-

१. कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद् गाङ्ग दिग्गजोज्झितम्॥ -विष्णु., २/९/१६
२. अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः।
ततःकुम्भं च मीनं च राशे राश्यन्तरं द्विज॥ -विष्णु., २/८/२८
३. द्रष्टव्य- Dr. Hazara का लेख 'The date of Vishnu Purana' (भण्डारकर पत्रिका, भाग १८, १९३६-३७ में)।
४. द्रष्टव्य- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग ७, कलकत्ता, १९३१, पृ. ३७०-३७१ में 'दी एज ऑव दी विष्णुपुराण' शीर्षक टिप्पणी।
५. विष्णुपुराण द्वितीय अंक, अध्याय ३
६. वही
७. पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराण परिशीलन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, विक्रमाब्द २०२७, पृ. ३११-३१२
८. विष्णुपुराण, द्वितीय अंक, अध्याय ३
९. वही
१०. वही
११. विष्णुपुराण, २/३/२
१२. विष्णुपुराण, २/३/२२
१३. विष्णुपुराण, २/३/२३
१४. विष्णुपुराण, २/३/४
१५. विष्णुपुराण, २/३/२६
१६. पार्जीटर : एनशिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ. २८८

१७ रायकृष्णदास - पुराणों की इक्ष्वाकु वंशावली, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, वर्ष ५६, सं २००८, पृ. २३४-२३८
१८. विष्णुपुराण- १/३/२०-२१
१९. विष्णुपुराण, ३/१ तथा ३/२
२०. विष्णुपुराण, ३/१४/६
२१. तत्रैव, ३/१/४५
२२. विष्णुपुराण, ३/२/४९
२३. विष्णुपुराण, ३/२/४६-४७

चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः
कृते कृते स्मृतेर्विप्र-प्रणेता जायते मनुः
देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत्।

२४ विष्णुपुराण, ३/२/५४

श्रीविष्णुपुराण में वर्णित नारी और शूद्र

रत्नेश कुमार त्रिपाठी*

भारतवर्ष की संस्कृति, समाज और राज्य व्यवस्था तीनों धर्म आधारित रही है। और इस धर्म आधारित व्यवस्था के कारण ही चार वर्णों की उत्पत्ति और आश्रम व्यवस्था की अनूठी एवं वैज्ञानिक जीवन शैली हमारी प्रमुख विशेषता बनी। चारों वर्णों का आधार कर्म रहा है जो धर्म आधारित नियमों से चलकर समाज की उन्नति का वाहक रहा है। अंग्रेजों एवं तथाकथित प्रगतिशील इतिहासकारों, लेखकों ने भारत के इतिहास को विकृत करने के साधन के रूप में जो प्रमुख विषय उठाया उसमें भारतीय नारी और शूद्र उनके केन्द्र-बिन्दु रहे। वस्तुतः विदेशी जीवन शैलियों में शूद्र एक ऐसा वर्ग था जिसके पास कोई अधिकार नहीं था और नारी केवल भोग की वस्तु थी। और हजार वर्षों के विदेशी संघर्षों में खुद के अस्तित्व को बचाये रखने में भारतीय समाज में कुछ जो नये कड़े नियम बने उसी को इस प्रगतिशील लेखकों ने भारतीय संस्कृति मानने की भयंकर भूल की और उसे ही आधार बनाकर भारत में शूद्र और नारी की कल्पना को विदेशी संस्कृति के साँचे में प्रस्तुत किया। जबकि वहीं यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि यहाँ के लोग अत्यन्त ही ईमानदार, स्त्रियाँ सद्चरित्र एवं समाज समृद्धशाली है और कहीं भी अराजकता का वातावरण नहीं है और लोगों का चरित्र उच्चकोटि का है।[1]

हमारे इतिहास के मूल स्रोत पुराण और खासकर श्रीविष्णुपुराण में नारी और शूद्र की सामाजिक स्थिति का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इस शोध-पत्र में विशेषकर श्रीविष्णुपुराण में वर्णित नारी और शूद्र के वर्णन को ही आधार बनाया गया है तथापि अन्य पुराणों के उद्धरण भी विषय वस्तु को स्पष्ट करने के लिए दिये गये हैं।

श्रीविष्णुपुराण में नारी :

निमग्मश्च समुत्थाय पुनः प्राह महामुनिः।
योषितः साधु ध्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्तिकः॥[2]

*शोध सहायक, पुराण अनुसंधान केन्द्र, आप्टेभवन केशवकुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली

श्रीविष्णुपुराण में कलियुग, शूद्र और नारी का वर्णन करते हुए षष्ठ अंश के द्वितीय अध्याय के आठवें श्लोक में आया है कि 'स्त्रियाँ साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है?' भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व में ऐसा वर्णन आया है कि ब्रह्मा ने जिस विराटपुरुष की सृष्टि की उसका दायाँ भाग पुरुष और बायाँ भाग स्त्री बनाया।[३] श्रीविष्णुपुराण में व्यास जी नारी के विषय में बताते हुए कहते हैं कि पुरुषों को अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धन से ही सर्वदा सुपात्र दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिए। इस द्रव्य के उपार्जन तथा रक्षण में महान क्लेश होता है और उनको अनुचित कार्यों में लगाने से मनुष्यों को महान कष्ट होता है। अत: पुरुष कष्टसाध्य उपायों से ही शुभ की प्राप्ति कर सकता है, किन्तु स्त्रियाँ केवल अपने पति की सेवा मात्र से ही सभी शुभलोकों को प्राप्त कर लेती हैं। इसीलिए मैंने स्त्रियों को साधु कहा है।[४] आगे के प्रसंग में ऐसा मिलता है कि विशेषकर कलियुग में नारी और शूद्र द्विजों से धन्यतर माने गये हैं।[५] नारी के प्रति पुरुष के कर्तव्यों को बताते हुए भविष्यपुराण में आया है कि धन-सम्पादन के बिना पुरुष को विवाह नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि पुरुष के लिए यह आता है कि अगर स्त्री भूखी रहती है या अभावग्रस्त रहती है तो ऐसे पुरुष के जीवन को धिक्कार है तथा उस पुरुष का मर जाना ही बेहतर है। इसी में आगे कहा गया है कि जिस प्रकार स्त्री के बिना गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता, उसी प्रकार धनविहीन व्यक्तियों को गृहस्थ बनने का कोई अधिकार नहीं है।[६] अर्थात् नारी को पूर्ण सामाजिक और आर्थिक संरक्षण प्राप्त था।

वर्णित उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि नारी का कार्य अपने पति की सेवा करना है लेकिन पति को भी हर प्रकार से सक्षम होना चाहिए। श्रीविष्णुपुराण में वर्णित श्लोक यह संकेत करते हैं कि पुरुष वह हर प्रयत्न करे जिससे धर्म की रक्षा हो तथा स्त्री उसके कार्यों में अपना पूर्ण सहयोग करके पति के साथ-साथ स्वयं भी भाग्य की प्राप्ति करे।

शूद्र :

मग्नोऽथ जाह्नवीतोयादुत्थायाह सुतो मम।
शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येवं शृण्वतां वच:॥[७]
तेषां मुनीनां भुयश्च ममज्ज य नदीजले।
साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चाब्रवीत्॥[८]

श्रीविष्णुमहापुराण में श्रीपराशर जी कहते हैं ''उस समय गंगाजी में डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यास ने जल से उठकर उन मुनिजनों को सुनाते हुए 'कलियुग

ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा। ऐसा कहकर उन्होंने फिर से जल में गोता लगाया और फिर उठकर कहा- 'शूद्र! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो।' ये बात मुनियों को समझ नहीं आयी तो उन्होंने व्यास जी से पूछा कि आप की इस बात का अर्थ क्या है? मुनियों के इस प्रकार पूछने पर व्यास जी ने हँसते हुए कहा कि- हे मुनिश्रेष्ठों! मैंने जो बार-बार उन्हें साधु कहा उसका कारण सुनो। द्विजातियों को पहले ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए विद्याध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतन के कारण होते हैं, इसलिए उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक है।[९] सभी कामों में अनुचित करने से उन्हें दोष लगता है, यहाँ तक कि भोजन और पानादि भी अपनी इच्छानुसार नहीं भोग सकते। क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण कार्यों में परतन्त्रता रहती है। हे द्विजगण! इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेश से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं।[१०] किन्तु जिसे पाक-यज्ञ का अधिकार है वह शूद्र द्विजों की सेवा करने से ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिए वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। शूद्र को भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेय का कोई नियम नहीं है, इसलिए मैंने उसे साधु कहा है।[११]

एक तो यहाँ यह स्पष्ट होता है कि शूद्र (सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप) को समाज में धार्मिक कर्मकाण्डों की छूट थी तथा वह थोड़े परिश्रम से वह स्थान पाने का भागी था जो द्विजों को अत्यन्त कठिन परिश्रम से मिलता था। ऐसे में शूद्रों की उनकी सामाजिक स्थिति का सुदृढ़ होना परिलक्षित होता है। दूसरा यह कि इस प्रसंग में उसे साधु और धन्य कहा गया है जो उसके सम्मान का ही सूचक है। अग्निपुराण के १५१वें अध्याय में शूद्र के कार्यों के विषय में यह आया है कि शूद्र का कर्म है द्विजों की सेवा अथवा सभी प्रकार के शिल्प।[१२] गरुड़पुराण में भी शूद्र का कर्म द्विजों की सेवा तथा शिल्पकारी उनकी आजीविका बतायी गयी है।[१३] ब्रह्मपुराण में शूद्र की सामाजिक स्थिति और कर्म का वर्णन करते हुए ऐसा आया है कि शूद्र द्विजातियों का सेवा कार्य करके अर्थोपार्जन करे अथवा खरीद-विक्री या शिल्पकर्म के द्वारा धन प्राप्त कर अपनी जीविका चलाए।[१४]

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि शूद्र वर्तमान में उपयोग में लाया जाने वाला शब्द तथाकथित दलित और पिछड़ा वर्ग नहीं है। शूद्र अन्य तीनों वर्णों की तरह सामाजिक व्यवस्था का वह महत्त्वपूर्ण अंग है जो अपने जीवन निर्वाह के लिए

स्वतन्त्र है। वह अपने श्रेष्ठ कर्मों से द्विजों की भाँति ही समाज में उच्च स्थान रखने का भागी है। वह तभी तक शूद्र है जब तक सामाजिक व्यवस्था में वह द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की भाँति योग्य नहीं होता। इस विचार के समर्थन में पद्मपुराण सृष्टि खण्ड में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण उद्धरण प्राप्त होता है। भीष्म द्वारा चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन पूछने पर पुलत्स्य बताते हैं कि सृष्टि की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों को उत्पन्न किया। ये चारों वर्ण यज्ञ के उत्तम साधन हैं, अतः ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान की सिद्धि के लिए ही इन सबकी सृष्टि की।[१५] जो लोग सदा अपने वर्णोचित कर्म में लगे रहते हैं, जिन्होंने धर्म विरुद्ध आचरणों का परित्याग कर दिया है तथा जो सन्मार्ग पर चलने वाले हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही यज्ञ का यथावत अनुष्ठान करते हैं। मनुष्य इस मानव देह को त्याग के पश्चात स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं और जिस-जिस स्थान को पाने की इच्छा हो, उसी-उसी में वे जा सकते हैं। ब्रह्मा द्वारा चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के अनुसार प्रजा जहाँ चाहती रह सकती थी।[१६]

पद्मपुराण के इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि शूद्र अन्य की भाँति समाज में अपने कर्मों के लिए स्वतन्त्र था और पुण्य का भागी था। पद्मपुराण में ही शूद्र की परीक्षा लेते हुए स्वयं भगवान् विष्णु ने उसे परम पद का स्थान दिया है, ऐसा वर्णन है। श्रीविष्णुपुराण में वर्णित साधु शूद्र है, यह उनकी सामाजिक स्थिति के वर्णन को स्पष्ट कर देता है।

वस्तुतः पुराण अपने पाँचों लक्षणों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मनवन्तर और वंशानुचरित) के साथ-साथ उन गूढ़ सूत्रों का प्रतिपादन करते हैं जिनका सही ज्ञान प्राप्त कर हम पुनः अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमताओं को दूर कर सकते हैं। अतः पुराण ही भारत के वास्तविक इतिहास के स्रोत हैं, यह कहना किंचित मात्र भी गलत नहीं होगा। □

सन्दर्भ सूची :

१ रत्नेश त्रिपाठी, २०१०, शोध प्रबन्ध ''सरस्वती घाटी के प्रमुख तीर्थों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन'', मोरोपन्त पिंगले राष्ट्रीय पुस्तकालय, आप्टे भवन, केशवकुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ.सं. १५४

२ श्रीविष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. ४२७

३ भविष्यपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. ५

४ योषिच्छुश्रूषणाभ्दर्त्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥२७॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः॥२८॥
एतद्वः कथितं विप्रा यन्निमित्तसमिहसगताः।
तत्पृच्छत यथाकामं सर्वं वक्ष्यामि वः स्फुटम्॥२९॥

५ शूद्रैश्च द्विजशूश्रूषातत्परैर्द्विजसत्तमाः।
तथा स्त्रीभिनायासात्पतियुश्रूषयैव हि॥३५॥
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतरं कृतादिषु॥३६॥

६ भविष्यपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. २१-२२

७ श्रीविष्णुमहापुराण, (६/२/६), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. ४२७

८ वही(६/२/७)

९ वही(६/२/१९-२०)

१०. वही(६/२/२१-२२)

११. द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजांजयति वै लोकांच्छूद्रो धन्यतरस्ततः॥
भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यतः।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितः॥

१२. अग्निपुराणम्, अनुवाद- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अध्याय १५१, पृ.सं. ५१४

१३. गरुड़पुराण, (आचारकाण्ड), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. ७२

१४ ब्रह्मपुराण, (वर्ण और आश्रमों के धर्म का निरूपण), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. ३७५

१५ पद्मपुराण, (सृष्टिखण्ड), गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.सं. १०

१६ वही

पौराणिक राजवंश

डॉ. प्रदीप कुमार राव*
सुबोध मिश्र**

बौद्ध युग से पूर्वकाल की भारतीय इतिहास रचना एक कठिन चुनौती है। पुरातात्त्विक उत्खननों से हड़प्पा सभ्यता सहित ईसा पूर्व के लगभग तीन हजार वर्ष के इतिहास का किंचित् पक्ष उद्घाटित हुआ है। यद्यपि कि ईसा पूर्व की सहस्राब्दियों का मानव जीवन भारत के धार्मिक साहित्य में संकलित है; वैदिक साहित्य, पुराण, उपनिषद् सहित ब्राह्मण ग्रन्थों में मानव सभ्यता का कालातीत इतिहास सुरक्षित है, किन्तु दुर्भाग्यवश इन धार्मिक साहित्यों के संकलनकर्ताओं द्वारा अनेक क्षेपक तथा घटनाओं को रोचक बनाने के प्रयास ने धार्मिक साहित्यों में ऐतिहासिक तथ्यों को कथानक रूप में परिवर्तित कर दिया; तथापि ऐतिहासिक शोधपूर्ण दृष्टि से इन धार्मिक साहित्यों से इतिहास रचना कठिन होते हुए भी असम्भव नहीं है।

मानव जाति का वर्गीकरण, वर्ग एवं वर्णों में क्रमशः विभाजन, जातीय व्यवस्था की उत्पत्ति एवं जातिगत वर्गीकरण की पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य, पुराण एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होती है। राज-वंशावलियाँ भी इन साहित्यिक साक्ष्यों में सुरक्षित हैं। अथर्ववेद के अन्तिम भाग, ऐतरेय, शतपथ, पंचविश आदि ब्राह्मण ग्रन्थ, वृहदारण्यक तथा छान्दोग्य सहित अन्य उपनिषद्, पुराण, रामायण तथा महाभारत आदि भारतीय धाार्मिक साहित्य ऐतिहासिक काल के पूर्व की राज-वंशावलियों का अनेकत्र उल्लेख करते हैं। किन्तु पौराणिक वंशावलियाँ बहुत अस्त-व्यस्त हैं। पुराणों में कोई स्थिर सम्वत् नहीं है। परन्तु प्राचीन सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में है। पुराणों में पीढ़ियों की संख्या और नाम में अन्तर मिलता है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि पुराणों में राज्यों के उत्तराधिकारियों की सूची मात्र प्रस्तुत की गई है, न कि पिता के बाद पुत्रों की वंशावलियाँ।

अतः सभी उपनिषदों, पुराणों और महाभारत तथा वाल्मीकि रामायण के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ये वंशावलियाँ एक स्वरूप पाती हैं, इन समस्त साहित्यों में बिखरे इन वंशावलियों को एक साथ जोड़कर क्रमबद्ध करना, भौगोलिक राज्य सीमाओं के साथ स्थापित करना तथा इनके कालक्रम का निर्धारण निर्विवाद नहीं है। पुरातात्त्विक स्रोतों से इनकी पुष्टि अभी संभाव्य नहीं है। फिर भी उपर्युक्त साहित्यों में उल्लिखित राज-वंशावलियों का अध्ययन ऐतिहासिक वंशावलियों को समझने में सहायक होगा।

पौराणिक ग्रन्थ आदि पुरुष के रूप में मनु का उल्लेख करते हैं। पुराणों में १४ मनु वर्णित हैं-स्वयंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दैरसावर्णि और इन्द्रसावर्णि।[१] इनमें प्रथम सात मनु उत्पन्न हो चुके थे और शेष सात सावर्णि मनु भविष्यकालीन माने गये हैं।[२] स्वयंभुव मनु मनुर्भरत वंश के आदि पुरुष हैं। पुराणों के अनुसार स्वयंभुव मनु संसार के सर्वप्रथम मनु हैं; अर्थात् मनुर्भरत वंश आदि राजवंश है। स्वयंभुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा[३] से दो पुत्र[४] और तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।[५] विष्णु पुराण में केवल दो पुत्रियाँ प्रसूति और आकुति का उल्लेख हुआ है।[६] दोनों पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा तीनों पुत्रियाँ क्रमशः आकुति, देवहूति और प्रसूति नाम से विख्यात हुए। पुराण पाठों में कहीं-कहीं प्रियव्रत और उत्तानपाद को स्वयंभुव मनु का पौत्र तथा वीर का पुत्र कहा गया है।[७] किन्तु यह पाठ भ्रामक लगता है। श्रीमद्भागवत का उल्लेख[८] कि ये दोनों स्वयंभुव मनु के पुत्र थे, की पुष्टि ही अन्य साक्ष्यों से होती है।

प्रियव्रत वंशावली

स्वयंभुव मनु के पुत्र व प्रियव्रत अत्यन्त भगवद्भक्त थे। पिता स्वयंभुव के द्वारा राज्यशासन की आज्ञा पर प्रियव्रत ने गृहस्थ आश्रम और राज्य स्वीकार किया।[९] तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री वर्हिष्मती से विवाह किया।[१०] उनकी दूसरी पत्नी का भी उल्लेख मिलता है।[११] विष्णु पुराण से सूचना मिलती है कि प्रियव्रत के सम्राट और कुक्षि नामक दो कन्या तथा अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान, द्युतिमान, मेघा, मेघातिथि, भव्य, सवन, पुत्र, ज्योतिष्मान नामक दस पुत्र थे।[१२] श्रीमद्भागवत पुराण में प्रियव्रत की एक पुत्री उर्जस्वती का उल्लेख मिलता है, जिसका विवाह शुक्राचार्य से हुआ और इन्हीं से देवयानी का जन्म हुआ था।[१३] श्रीमद्भागवत प्रियव्रत के दस पुत्रों का उल्लेख करता है किन्तु यहाँ इन दस पुत्रों के नाम आग्नीन्ध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि दिये गये हैं।[१४]

मन्वन्तर वर्णन के सन्दर्भ में हरिवंश पुराण में इन दस पुत्रों को स्वयंभुव मनु का पुत्र कहा गया है।[१५] वस्तुतः ये मनु के पौत्र ही थे, पुत्र नहीं।[१६] प्रियव्रत की

*प्राचार्य, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
**प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो अपने नाम वाले मन्वन्तरों के अधिपति हुए।[१७] प्रियव्रत और वर्हिष्मती से उत्पन्न दस पुत्रों में से तीन पुत्र कवि, महावीर और सवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए तथा सात पुत्रों को प्रियव्रत ने सात महाद्वीपों का अधिपति बनाया।[१८] श्रीमद्‌भागवत पुराण एवं विष्णु पुराण में पुत्रनाम की वैभिन्नता के साथ द्वीपों के समान नाम का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण के अनुसार प्रियव्रत ने आग्नीन्ध्र को जम्बू द्वीप, मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप, वपुष्मान को शाल्मल द्वीप, ज्योतिष्मान को कुश द्वीप, द्युतिमान को कौच्च द्वीप, भव्य को शाक द्वीप तथा सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति बनाया।[१९]

इन सात द्वीपों की ठीक-ठाक पहचान एक कठिन समस्या है। प्रियव्रत पुत्रों में बड़े पुत्र आग्नीन्ध्र के नौ पुत्र हुए। इनके नाम-नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व, और केतुमाल है।[२०] नाभि और उनकी पत्नी मरूदेवी[२१] से ऋषभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जैन इसी ऋषभ को आदि तीर्थंकर मानते हैं।[२२] ऋषभ के नाम पर उनके राज्य का नाम (जम्बूद्वीप) अजनाभ खण्ड पड़ा।[२३] पुराणों में ऋषभ, विपुल-कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम, शूरवीरता से युक्त होने के साथ-साथ योगमाया एवं ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न माने गये हैं।[२४] ऋषभ को सर्वक्षत्रों का पूर्वज और आदि देव कहा गया है।[२५] देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से ऋषभ का विवाह हुआ। ऋषभ और उनकी पत्नी जयन्ती से सात सौ पुत्र उत्पन्न हुए।[२६] श्रीमद्‌भागवत पुराण में ऋषभ के उन्नीस पुत्रों के नाम मिलते हैं-भरत, कुशावर्त, इलावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रपरक कीकट, कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्लायन आर्विहोत्र, द्रुमिल, चमस, करभाजन।[२७] इनमें सबसे बड़े भरत थे। भरत भी योगी और अत्यन्त गुणवान हुए। इन्हें जड़ भरत भी कहा जाता है। पुराणों के अनुसार इन्हीं के नाम पर अजनाभखण्ड को लोग भारतवर्ष कहने लगे।[२८] भरत का पुत्र सुमति हुआ। सुमति ने ऋषभदेव के मार्ग का अनुसरण किया। जैन इन्हें द्वितीय तीर्थंकर मानते हैं। सुमति के बाद पुराणों में केवल इनकी वंशावलि मिलती है। इन बाद के शासकों के किसी घटनाक्रम का वर्णन नहीं मिलता। सुमति का पुत्र इन्द्रद्युम्न से परमेष्ठी तथा परमेष्ठी से प्रतिहार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रतिहार के प्रतिहर्ता नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रतिहर्ता का पुत्र भव, भव का पुत्र उद्‌गीथ और उद्‌गीथ का पुत्र प्रस्ताव हुआ। प्रस्ताव से पृथु, पृथु से नक्त, नक्त से गय, गय से नर, नर से विराट, विराट से महावीर्य, महावीर्य से धीमान, धीमान से महान्त, महान्त से

मनस्यु, मनस्यु से त्वष्टा, त्वष्टा से विरज, विरज से रज, रज से शतजित, उत्पन्न हुए।[२९] शतजित के सौ पुत्र हुए जिनमें विश्वग्योति सबसे बड़ा पुत्र था। इसके सौ पुत्रों से आगे की वंशावलि चली जिसका उल्लेख नहीं मिलता। इसी वंश ने कृतत्रेतादियुगक्रम से इकहत्तर युगपर्यन्त इस भारत भूमि पर शासन किया।[३०]

उत्तानपाद शाखा

स्वयंभुव मनु के द्वितीय पुत्र उत्तानपाद की सुरुचि और सुनीति नामक दो पत्नियाँ थीं।[३१] सुरुचि नामक पत्नी उन्हें अधिक प्रिय थी। सुरुचि ने उत्तम तथा सुनीति ने ध्रुव नामक पुत्र को जन्म दिया।[३२] ध्रुव के बाद की वंशावलि विष्णु पुराण तथा हरिवंश पुराण में लगभग एक जैसी है किन्तु श्रीमद्‌भागवत पुराण में ध्रुव की वंशावलि भिन्न है। विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण के अनुसार-ध्रुव के शिष्टि अथवा श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्र हुए।[३३] शिष्टि की पत्नी सुच्छाया ने रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल तथा वृकतेजा नामक पाँच पुत्रों को जन्म दिया। रिपु की पत्नी बृहती के गर्भ से चाक्षुष का जन्म हुआ। चाक्षुष के पुत्र मनु हुए। यही मनु छठवें मन्वन्तर के अधिपति हुए।[३४] मनु की पत्नी नड्वला ने दस पुत्रों-कुरु[३५] अथवा उरु[३६] शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्यु को जन्म दिया। कुरु के अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा, तथा गय[३७] अथवा शिवि[३८] नामक छः पुत्र हुए। अङ्ग की पत्नी सनीथा से वेन का जन्म हुआ। पुराणों के अनुसार वेन अत्याचारी शासक हुआ तथा ऋषियों के श्राप से मृत्यु को प्राप्त हुआ। तदनन्तर राजा के अभाव को पूरा करने हेतु ऋषियों ने वेन के दाहिने हाथ का मंथन कर पृथु को उत्पन्न किया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पृथु अन्य भाइयों की शाखा का कोई वंशज था जिसे उत्तराधिकार दे दिया गया। पृथु के अन्तर्धान और पालित[३९] अथवा वादी[४०] नामक दो पुत्र हुए। अन्तर्धान का पुत्र हविर्धान हुआ। हविर्धान के छः पुत्र प्राचीनबर्हि, शुल्क अथवा शुक्र[४१] गय, कृष्ण, व्रज, अजिन हुए। प्राचीनबर्हि के दस पुत्र हुए जिनका प्रचेसा नाम से उल्लेख हुआ है। प्रचेसा और सोम से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ तथा दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं से वंशवृक्ष का आगे प्रसार हुआ।

श्रीमद्‌भागवत पुराण[४२] में ध्रुव के वंशजों के भिन्न नाम मिलते हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण के अनुसार ध्रुव के दो पुत्र उत्कल और वत्सर हुए। उत्कल के धार्मिक होने के कारण वत्सर शासक हुआ। वत्सर के पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, उर्ज, वसु और जय नाम के छः पुत्र हुए। पुष्पार्ण के प्रभा और दोषा नाम की दो पत्नियाँ थीं। प्रभा के प्रातः, मध्यान्दिन और सायं तथा दोषा के प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट

नामक तीन-तीन पुत्र हुए। चक्षु की पत्नी नड्वला से पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, ऋतु, व्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्रि, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मूक नामक बारह पुत्रों का जन्म हुआ। उल्मूक के अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय नामक छह पुत्र हुए।[४३] अङ्ग की पत्नी सुनीथा ने वेन को जन्म दिया और वेन की दाहिनी भुजा से पृथु उत्पन्न हुए। पृथु के पाँच पुत्रों विजिताश्व, हर्यक्ष, धूम्रकेश, वृक और द्रविण में विजिताश्व राजा हुए।[४४] विजिताश्व को अन्तर्धान भी कहा गया है।[४५] अन्तर्धान की पत्नी नभस्वती से हविर्धान का जन्म हुआ। हविर्धान के बर्हिषद्, गय, शुल्क, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामक छः पुत्र हुए।[४६] बर्हिषद् प्राचीन बर्हि नाम से भी विख्यात हुए। प्राचीन बर्हि की पत्नी शतद्रुति के गर्भ से प्रचेता नाम के दस पुत्र हुए जो धर्मज्ञ एवं तपस्वी थे।

वैवस्तमनु का राजवंश और वंश विस्तार

विवस्वान सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु सातवें मनु थे।[४७] इनसे पूर्व के छः मनु स्वयंभुव वंश में थे। वैवस्त मनु से एक नया वंश चला और इनके काल से त्रेतायुग आरम्भ हुआ। विष्णु पुराण[४८] के अनुसार ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। दक्ष से अदिति हुई तथा अदिति से विवस्वान तथा विवस्वान से मनु पैदा हुए। जबकि श्रीमद्भागवत पुराण में[४९] उल्लेख हुआ है कि महाप्रलय के समय केवल परमपुरुष बचे। परमपुरुष से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से मरीचि तथा मरीचि से कश्यप का जन्म हुआ। मरीचि की पत्नी दक्षनन्दिनी अदिति से विवस्वान (सूर्य) का जन्म हुआ। विवस्वान की पत्नी संज्ञा से मनु पैदा हुए। हरिवंश पुराण में भी कश्यप की पत्नी दक्ष की पुत्री से विवस्वान का जन्म कहा गया है।[५०] वस्तुतः वैवस्वत मनु भारत के प्रथम ऐतिहासिक राजा थे जो विवस्वान अर्थात् सूर्य से उत्पन्न हुए थे। कतिपय विद्वान इसका अर्थ यह लगाते हैं कि मनु जिस शाखा में उत्पन्न हुए थे, वह सूर्य उपासक थे।[५१] वैवस्वत मनु प्रथम राजा, प्रथम कर ग्रहण कर्ता, प्रथम दण्ड विधान निर्माता तथा प्रथम नगर निर्माता थे।[५२] वैवस्वत मनु ने ही अयोध्या नगरी की स्थापना की थी।[५३]

महाभारत में भीष्म कहते हैं कि हमने सुन रखा है कि पूर्व काल में राजा के न रहने पर मात्स्यन्याय[५४] की स्थिति थी[५५] तब सबने मिलकर नियम बनाया कि हम लोगों में जो भी निष्ठुर बोलने वाला, भयानक दण्ड देने वाला, परस्त्रीगामी तथा पराये धन का अपहरण करने वाला हो ऐसे सब लोगों को समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिए। किन्तु यह सम्भव न हो सका और तब दुःख से पीड़ित प्रजा के आग्रह पर ब्रह्माजी ने मनु को राजा बनाया। वस्तुतः यह उल्लेख

इस बात का सूचक है कि प्रारम्भ में असभ्य मानव ने जब सभ्यता के जीवन में प्रवेश किया तो परिवार और अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए राज्य की उत्पत्ति की, और प्रथम राजा मनु हुए। इन्हीं वैवस्वत मनु के नौ अथवा दस पुत्र एवं एक पुत्री हुई[५६]; नौ पुत्रों से सूर्यवंश की नौ शाखाएँ तथा पुत्री से चन्द्रवंश की शाखा उत्पन्न हुई।

पुराणों के अनुसार मनु द्वारा मित्र और वरुण की उपासना से इला नामक पुत्री उत्पन्न हुई थी तथा मित्र वरुण के वरदान से वह मनु का पुत्र सुद्युम्न बनी।[५७] पुराणों में मनु पुत्रों के नाम एवं क्रम में पर्याप्त अन्तर है।

हरिवंश	वायु	ब्रह्माण्ड	मत्स्य	विष्णु	महाभारत	भागवत
१. इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	वेन	इक्ष्वाकु
२. नाभाग	नभाग	नृग	कृशनाभ	नृग	धृष्णु	नृग
३. धृष्णु	धृष्ट	धृष्ट	अरिष्ट	धृष्ट	नारिष्यन्त	शर्याति
४. शर्याति	शर्याति	शर्याति	धृष्ट	शर्याति	नाभाग	दिष्ट
५. नरिष्यन्	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	इक्ष्वाकु	धृष्ट
६. प्रांशु	प्रांशु	प्रांशु	करुष	प्रांशु	करुष	करुष
७. नाभागारिष्ट	नाभागारिष्ट	नाभागारिष्ट	शर्याति	नाभाग	शर्याति	नरिष्यन्त
८. करुष	करुष	करुष	पृषध्र	दिष्ट	पृषध्र	प्रषध्र
९. पृषध्र	पृषध्र	पृषध्र	नाभाग	करुष	नाभागारिष्ट	नभग
१०. -	-	-	-	पृषध्र	-	कवि

समस्त ग्रन्थों को एक साथ रखकर देखने पर ज्ञात होता है कि नाभागादिष्ट या नाभागारिष्ट का शुद्ध नाम नाभानेदिष्ट था।[५८] ग्रंथों में इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ और प्रमुख पुत्र माने गये हैं। इक्ष्वाकु अयोध्या के राजा हुए। इक्ष्वाकु सूर्य वंश के प्रधान कुल पुरुष के रूप में प्रसिद्ध हुए तथा इस कुल की अनेक शाखाएँ चलीं। यद्यपि कि मनु के शेष सभी आठ पुत्रों का भी वंश विस्तार मिलता है। किन्तु ये वंश न तो अधिक प्रसिद्ध हुए और न ही बहुत आगे तक बढ़ पाये।

पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि नृग और नाभाग अथवा नभाक एक ही है। ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण में नृग का उल्लेख हुआ है। महाभारत, मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा हरिवंश पुराण में

नाभाग का उल्लेख हुआ है। यद्यपि विष्णु पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण में नृग के साथ नभग अथवा नाभाग का उल्लेख हुआ है किन्तु यह सम्भवतः पुराणकार की भूल थी। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार नभग और नाभाग पिता-पुत्र थे।[५९] मनु पुत्र नभग के पुत्र नाभाग थे और नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए। अम्बरीष अत्यन्त धर्मात्मा और प्रजापालक सम्राट हुए। अम्बरीष भगवत्भक्ति में दुर्वासा ऋषि से श्रेष्ठ थे।[६०] सम्राट अम्बरीष के तीन पुत्र थे विरूप, केतुमान और शम्भु।[६१] विरूप का पुत्र पृषदश्व और पृषदश्व का पुत्र रथीतर हुआ।[६२] विरूप, पृषदश्व और रथीतर प्रसिद्ध मंत्रद्रष्टा ऋषि हुए और ये तीनों ऋग्वेद के सूक्तों के द्रष्टा हुए। रथीतर गोत्र के ब्राह्मण यास्काचार्य के समय तक प्रसिद्ध थे। रथीतर संतानहीन थे। अंगिरस ऋषि ने ब्रह्मतेज से रथीतर की पत्नी से कई पुत्र उत्पन्न किये जो आङ्गिरस[६३] कहलाये। इस प्रकार अम्बरीष के वंशज क्षत्रोसेत ब्राह्मण हो गये और उनका क्षत्रियत्व तथा राजपद समाप्त हो गया। पुराणों में उल्लिखित शर्याति को वैदिक ग्रन्थों में शर्यात कहा गया है।[६४] ऋग्वेद के सूक्त दस-बानवे का द्रष्टा शर्यात मनुपुत्र शर्याति ही हैं। राजा शर्याति वेदों का निष्ठावान विद्वान था।[६५] शर्याति के पुरोहित भृगुपुत्र च्यवन ऋषि थे जिन्होंने शर्याति का ऐन्द्र महाभिषेक किया था।[६६] शर्याति की एक पुत्री सुकन्या थी जिसका विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था।

शर्याति के तीन पुत्र-उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण थे।[६७] शर्याति ने खम्भात की खाड़ी के पास अपना राज्य स्थापित किया। शर्याति बड़े तेजस्वी पुरुष एवं प्रचण्ड योद्धा थे। शर्याति पुत्र आनर्त परम धार्मिक था और उससे रैवत नामक पुत्र हुआ। जिसने कुशस्थली नामक नगर बसा कर आनर्तदेश की स्थापना की। आनर्त वर्तमान गुजरात का नाम है। रैवत के सौ पुत्र हुए जिनमें कुकुद्मी नामक धर्मात्मा पुत्र सबसे बड़ा था। कुकुद्मी की एक पुत्री रेवती हुई और इसके बाद इस शाखा का वंश-विस्तार नहीं मिलता। हरिवंश पुराण के अनुसार रैवत के सौ भाई थे और वे शत्रुभय से कुशस्थली छोड़कर अन्य स्थानों पर चले गये। उनके वंश के क्षत्रिय शर्यात कहे जाते हैं। शर्यात की पुत्री सुकन्या से च्यवन ऋषि का आप्तवान तथा दधिचि नामक दो पुत्र तथा सुमेधा नामक एक पुत्री हुई। आप्तवान की पत्नी रुचि थी। आप्तवान के ही कुल में इतिहास प्रसिद्ध ऊर्वऋचीक जमदग्नि तथा परशुराम हुए।

मनु पुत्र धृष्ट से धाष्ट्रिक क्षत्रियों की शाखा चली। धृष्ट के तीन पुत्र थे-धृतकेतु, धियनाथ और रणधृष्ट। करुष के वंशज कारुष क्षत्रिय कहलाये।[६८]

रामायण में ताड़कावध के प्रसंग में करुष का उल्लेख है।[६९] महाभारत में कारुषों का बहुधा उल्लेख हुआ है।[७०] पुराणों में मनु पुत्र नरिष्यन्त के वंशज शक कहे गये हैं।[७१] श्रीमद्भागवत पुराण में नरिष्यन्त के पुत्र चित्रसेन, चित्रसेन के ऋक्ष, ऋक्ष के मीढवान, मीढवान के कूर्च और कूर्च के पुत्र इन्द्रसेन हुए। इन्द्रसेन का वीतिहोत्र नामक पुत्र हुआ। वीतिहोत्र के पुत्र सत्यश्रवा, सत्यश्रवा के पुत्र उरुश्रवा, उरुश्रवा के पुत्र देवदत्त तथा देवदत्त के पुत्र अग्निवेश हुए। ब्राह्मणों का अग्निवेश्यायन गोत्र उन्हीं से चला है। ऐसा लगता है कि यह वंश भी क्षत्रियत्व से विरत हो गया। पुराणों के अनुसार च्यवन ऋषि के श्राप से पृषध्र वंशज शूद्र हो गये।[७२]

मनु पुत्र नाभागारिष्ट अथवा नाभागादिष्ट जन्म से क्षत्रिय था किन्तु कर्म से ब्राह्मण और वैश्य था। ऋग्वेद के दशम मण्डल के इकसठवें और तिरसठवें सूक्तों का द्रष्टा यही नाभानेदिष्ट[७३] है। मंत्र में स्वयं ऋषि ने अपना संक्षिप्त नाम नाभा कहा है।[७४] मंत्र स्तुति से सिद्ध होता है कि स्वयं नाभानेदिष्ट आङ्गिरस के देवपुत्रों की शरण में जाकर ब्राह्मण देव पुत्र कहता है। वैदिक ग्रन्थों के अनुसार मनु की प्रेरणा से ही नाभानेदिष्ट मंत्रद्रष्टा बना।[७५] नाभानेदिष्ट का पुत्र भलन्दन बहुधा ग्रन्थों में वैश्य कहा गया है। प्रवर सूचियों में तीन प्रसिद्ध वैश्य ऋषि-भलन्दन, वत्सप्रि और संकील तीनों ही नाभानेदिष्ट के वंशज थे।

पुराणों में मनु पुत्र प्रांशु का भ्रमवश वत्सप्रि अथवा वत्सप्रीति के पुत्र रूप में उल्लेख हुआ है।[७६] वायु पुराण में प्रांशु को भलन्दन का पुत्र कहा गया है।[७७] ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों का पाठ यहाँ पर टूटा हुआ है और पार्जिटर ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।[७८] उल्लेखनीय है कि पार्जिटर महोदय ने नाभानेदिष्ट की बारहवीं पीढ़ी में प्रांशु को रखा है।[७९] पुराण पाठों के आधार पर यह भ्रम उत्पन्न हुआ है कि प्रांशु नाभानेदिष्ट के कुल में उत्पन्न हुआ। वस्तुतः यह प्रांशु वैवस्वत मनु का आठवाँ पुत्र है।

पुराणों में इस सम्बन्ध में परस्पर विरोधी कथन है, तथापि मनुपुत्र प्रांशु एक क्षत्रिय राजा था तथा वैशाली की स्थापना कर इसे अपनी राजधानी बनाया। पुराणों में वैशाली राजवंश की जो वंशावली नाभनेदिष्ट के नाम से दी गई है, वस्तुतः यह प्रांशु की वंशावली है।[८०] पुराणों के अनुसार प्रांशु के पुत्र प्रजापति थे। प्रजापति से खनित्र, खनित्र से चाक्षुस, चाक्षुस से विंश, विंश से विविंशक, विविंशक से खनिनेत्र, तथा खेनिनेत्र से अतिविभूति नामक पुत्र उत्पन्न हुए। अतिविभूति के पुत्र करन्धम थे तथा करन्धम से अविक्षित नामक पुत्र हुआ। अविक्षित का पुत्र मरुत

चक्रवर्ती सम्राट हुआ तथा गुण और प्रताप में अपने पिता अवीक्षित् का अतिक्रमण किया।[८१] ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पुराणों में मरुत के महान यज्ञ के सम्बन्ध में गाथायें मिलती हैं कि मरुत के यज्ञ में मरुद्‌गण भोजन परोसते थे और विश्वदेव सभासद थे।[८२] देवगुरु बृहस्पति का अनुज संवर्त मरुत का पुरोहित था।[८३] महाभारत में संवर्त को वाराणसी का निवासी बताया गया है।[८४] मरुत ने अपनी कन्या का विवाह यज्ञोपरान्त संवत से किया।[८५] मरुत अति प्रतापी होते हुए भी अयोध्यापति एक्ष्वाक मान्धाता से पराजित हुए।[८६] चक्रवर्ती सम्राट मरुत के नरिष्यन्त नामक पुत्र हुआ। नरिष्यन्त के दम और दम के राज्यवर्धन, राज्यवर्धन के सुवृद्धि, सुवृद्धि के केवल और केवल के सुधृति नामक पुत्र हुए। सुधृति से नर, नर से चन्द्र, चन्द्र से केवल, केवल से बन्धुमान, बन्धुमान से वेगवान, वेगवान से बुध, बुध से तृणबिन्दु नामक पुत्र उत्पन्न हुए। तृणबिन्दु की एक इलविला नामक कन्या हुई तथा दूसरी पत्नी से विशाल नामक पुत्र का जन्म हुआ। विशाल के पुत्र का नाम हेमचन्द्र मिलता है। हेमचन्द्र का पुत्र चन्द्र, चन्द्र का पुत्र धूम्राक्ष, धूम्राक्ष का पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुत्र सहदेव तथा सहदेव का पुत्र कृशाश्व हुआ। कृशाश्व से सोमदत्त तथा सोमदत्त से जन्मेजय का जन्म हुआ। जन्मेजय का पुत्र सुमति था। विष्णु पुराण उपर्युक्त प्रांश के बाद के सभी शासकों का विशाल वंश के राजा के रूप में उल्लेख करता है।[८७] रामायण में भी आंशिक विशाल वंशावली मिलती है।[८८] रामायण में विशाल को इक्ष्वाकु की पत्नी अलम्बुषा के गर्भ से उत्पन्न कहा गया है।[८९] विशाल द्वारा विशाला नामक नगरी की स्थापना का भी उल्लेख मिलता है।[९०] रामायण के अनुसार विशाल का पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्र का पुत्र सुचन्द्र, सुचन्द्र का पुत्र धूम्राश्व तथा धूम्राश्व का पुत्र सृञ्जय हुआ। सृञ्जय के प्रतापी पुत्र सहदेव हुए तथा सहदेव के परम धर्मात्मा पुत्र का नाम कुशाश्व था। कुशाश्व से महातेजस्वी पुत्र प्रतापी सोमदत्त हुए। सोमदत्त के पुत्र काकुत्स्थ, काकुस्थ के पुत्र सुमति नाम से प्रसिद्ध हैं। रामायण के उल्लेख के अनुसार सुमति अयोध्यानरेश राम के समकालीन थे।[९१]

वैवस्वत मनु के श्रेष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु के अतिरिक्त आठ पुत्रों की शाखाओं का अपूर्ण एंव विरोधाभासी उल्लेख धार्मिक ग्रन्थों में हुआ है। उन ग्रन्थों के विवरण के आधार पर उपरोक्त वंशावली दी गई है। मनु पुत्रों की ये शाखाएँ कालान्तर में राज्यविहीन हो जाने के कारण अथवा क्षत्रियोचित कर्म से च्युत हो जाने से समाप्त हो गयीं। मनु पुत्र इक्ष्वाकु वंशी सम्राटों का कार्यकाल अत्यन्त यशस्वी रहा। इस राजवंश में महानतम एवं चक्रवती सम्राटों की यशगाथा ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। □

सन्दर्भ-

१ विष्णु पुराण, ३, १, ५-६; ३,२३ १४-४० ; हरिवंश पुराण, ७, ४-७

२ विष्णु पुराण, ३, १, ५, ७;

३ श्रीमद्‌भागवत, ४, १, १,

४ श्रीमद्‌भागवत, ४, १, ९; विष्णु पुराण, १, ७, १८-१९

५ श्रीमद्‌भागवत, ४, १, १

६ विष्णु पुराण, १, ७, १९

७ हरिवंश पुराण, २, ५

८ श्रीमद्‌भागवत, ४, १, १

९ श्रीमद्‌भागवत, ५, १, १-२३

१०. श्रीमद्‌भागवत, ५, १, २४

११. श्रीमद्‌भागवत, ५, १, २८

१२ विष्णु पुराण, २, १, ५-८

१३ श्रीमद्‌भागवत, ५, १, ३४

१४ श्रीमद्‌भागवत, ५, १, २५

१५ हरिवंश पुराण, ७, १०-११

१६ ब्रह्माण्ड पुराण, १, २, १४, ५-६; श्रीमद्‌भागवत; विष्णु पुराण

१७ श्रीमद्‌भागवत, ५, १, २८

१८. श्रीमद्‌भागवत, ५, १, ३३; विष्णु पुराण, २, १, ९-११

१९. विष्णु पुराण, २, १, १२-१५

२०. श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, २, १८-१९

२१. विष्णु पुराण, २, १, २७

२२ आचार्य चतुरसेन, भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ, ९१; कुँवर लाल जैन, पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम।

२३ श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, ४, ३

२४ श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, ४, २-३

२५ महाभारत, शांतिपर्व, ६४, २०

२६ श्रीमद्‌भागवत पुराण में जयंती को इन्द्र की पुत्री कहा गया है।

२७ श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, ४, ८; ब्रह्माण्ड पुराण, १, २, १४ ,६०

२८ श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, ४, १०-११

२९ श्रीमद्‌भागवत पुराण, ५, ४, ९

३०. मत्स्य पुराण, २४, ७२

३१. विष्णु पुराण, २, १, ३६-४०

३२. विष्णु पुराण, २, १, ४२
३३. विष्णु पुराण, १, ११, २; श्रीमद्भागवत पुराण, ४, ८, ८
३४. विष्णु पुराण, १, ११, २, ३,; श्री मद्भागवत पुराण, ४, ८, ८-९; हरिवंश पुराण में उत्तानपाद के सुनृता नामक पत्नी से उत्पन्न चार पुत्रों-ध्रुव, कीर्तिमान, शान्तस्वरूप शिव, क्षयस्पति का उल्लेख हुआ है।
३५. विष्णु पुराण, १, १३, १-९
३६. हरिवंश पुराण, २,७,-३३
३७. विष्णु पुराण, १, १३, ३
३८. विष्णु पुराण, १, १३, ५
३९. हरिवंश पुराण, २, १, १८
४०. हरिवंश पुराण, २, १, १९
४१. विष्णु पुराण, १, १३,७
४२. हरिवंश पुराण, २, १, २८
४३. विष्णु पुराण, १, १४, १
४४. हरिवंश पुराण, २, १, २९
४५. विष्णु पुराण, १, १४, १-२
४६. श्रीमद्भागवत पुराण, ४, १३, ६-२०; ४, १-१३
४७. महाभारत, आदि पर्व, ७०, ५-७०; ८-९०, ७; वाल्मीकि रामायण, ५-२; वायु पुराण, ६७, ४३
४८. विष्णु पुराण, ४, १, ६
४९. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, १, ८-१०
५०. हरिवंश पुराण, ९,१
५१. पाण्डेय, राजबली, गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ-४१
५२. शतपथ ब्राह्मण, १, ३, ४, ३१३, वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ५, २; अर्थशास्त्र, १, १३
५३. वाल्मीकि रामायण, १, ५, ३
५४. जैसे जल में मछलियाँ छोटी मछलियों का भक्षण कर जाती हैं ऐसे ही सबल निर्बल पर अत्याचार करते थे।
५५. अराजकाः प्रजाः पूर्वे विनेशुदिति नः श्रुतम्।
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान्।। शांति पर्व, ६७, १७
५६. हरिवंश पुराण, १०, १-२; विष्णु पुराण एवं श्रीमद्भागवत पुराण में दस पुत्रों का उल्लेख है।

५७. विष्णु पुराण, ४, १, ९-१०; श्रीमद्भागवत पुराण, ९, १, १३-२२; हरिवंश पुराण, १०, ७-८; १०-१५
५८. मैत्रायणी संहिता, १, ५८; हरिवंश पुराण, १, १०, १-२; वायु पुराण, ८५, ४; ब्रह्माण्ड पुराण ३, ६०,२-३; मत्स्य पुराण, ११, ४१; विष्णु पुराण, ४१,१, ७; महाभारत, १, ७०, १३-१४; श्रीमद्भागवत पुराण, ९, १, १२
५९. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ४, १; विष्णु, ४, २, ५,
६०. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ४, ३७-७१
६१. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ८, १; विष्णु पुराण, ४, २, ५
६२. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ८, २; विष्णु पुराण, ४, २, ६-९
६३. वायु पुराण ९, १००; ब्राह्मण पुराण, २, ३, ६२, ७; श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ८, ३; विष्णु पुराण, ४, २, १०
६४ ऋग्वेद, १०, ९२; जैमिनीय ब्राह्मण, ३, १५९
६५. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ३, १; मत्स्य पुराण, ६९, ९; पद्म पुराण, ५, २३, १०; विष्णु पुराण, ६, १, ३४; महाभारत, १३, ३१३, ४०
६६. एतेन ह बा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शर्यातं मानवम् अभिषिवेच। ऐतरेय ब्राह्मण, ८, २१
६७. श्रीमद्भागवत पुराण, ९, ३, २७; विष्णु पुराण; केवल एक पुत्र आनर्त का उल्लेख करता है, ४, १, ६२
६८. करूषस्य तु कारूषा क्षत्रिया युद्धदुर्भदाः। ब्रह्माण्ड पुराण, २, ३, ६१, २; विष्णु पुराण, ४, १,१८; श्रीमद्भागवत पुराण, ९,२,१६
६९. मलदाश्च करूषांश्च ताटका दुष्ट चारिणी। वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ-१, २४, २९
७०. कारूषाश्चराजानः। महाभारत, उद्योग पर्व, पृष्ठ-४,१८
७१. नरिष्यन्तः, शकाः, पुत्रः। हरिवंश पुराण, पृष्ठ-१०,३१
७२. ब्रह्माण्ड पुराण, २, ३, ६०, २; श्रीमद्भागवत पुराण, ९, २, ९
७३. वैदिक ग्रन्थों में नाभागारिष्ट अथवा नाभागादिष्ट के स्थान पर नाभानेदिष्ट आया है।
७४ अयं नाभा वदित वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्कृणोतन। ऋग्वेद, १०, ६२, ४
७५. तैत्तिरीय संहिता, ३, १, ९, ३०; पैत्रायणी संहिता, १, ५८; ऐतरेय ब्राह्मण, ५,१४
७६. विष्णु पुराण, ४, १, २; मार्कण्डेय पुराण, १०१, २-५
७७ वायु पुराण, ८६, ४
७८. भगवद्दत्त, भारतवर्ष का वृहद् इतिहास, भाग-२, ५३
७९. पार्जीटर, एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्ट्री आफ ट्रेडिसन, ४, १८
८०. विष्णु पुराण, ४, १, २०-६०; ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण

८१. तस्य पुत्रोऽति च क्राम पितरं गुणवत्तया।
मरुत्तो नाम धर्मज्ञश्चक्रवर्ती महायशाः। शांतिपर्व, ४, २३

८२. मरुत्ताः परविष्ठारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्य कामप्रेविश्वदेवाः सभासदः॥ शतपथ ब्राह्मण, १३, ५, ४, ६

८३. ऐतरेय ब्राह्मण, ८, २९

८४. महाभारत, १४, ६, २२

८५. शांति पर्व, २४०, २८

८६. महाभारत,, १२, २८, ८८

८७. विष्णु पुराण, ४, १, ५९

८८. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ४७, ११-१८

८९. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ४७, ११

९०. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ४७, १२

९१. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ४७, १७

विष्णु पुराण में वर्णित
मनु एवं उनकी वंशावली

लोकेश कुमार प्रजापति*

विष्णु पुराण यद्यपि एक वैष्णव महिमा का ग्रंथ है, किन्तु इसमें भी अन्य पुराण लक्षणों की भाँति सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तर आदि का वर्णन किया गया है। इस पुराण में भी हमें इतिहास दृष्टि का प्रारम्भिक उत्स दिखाई पड़ता है जिसके अन्तर्गत हम इसमें वर्णित वंशावली को ले सकते हैं। पौराणिक क्रम के अनुसार विष्णु पुराण पुराणों में तीसरे क्रम पर परिगणित किया गया है-

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥[1]

यह पुराण पद्म पुराण के अनन्तर ही कहा गया महापुराण है जिसमें सर्वत्र विष्णु का ही यशोगान किया गया है। लेकिन इसके साथ ही साथ विभिन्न वंशों की वंशावली का भी वर्णन किया गया है। इस वंशानुचरित में मनु की वंशावली का भी वर्णन इस पुराण में मिलता है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार मनु पहले मानव हैं जिनके द्वारा ही इस सृष्टि का विकास हुआ। किन्तु वास्तव में इस सृष्टि का निर्माण अनेक बार हुआ और अनेक बार इसका पतन भी हुआ और प्रत्येक बार एक-एक मनु को सृष्टि को पुष्पित और पल्लवित करने के लिए उनकी वंशावलियों को यह दायित्व दिया गया।

सर्वप्रथम ब्रह्मा ने प्रजापति गणों को उत्पन्न कर सृष्टि को आगे बढ़ाने का दायित्व सौंपा लेकिन जब प्रजापति की वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि से आगे नहीं बढ़ी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मारीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ जैसे अपने सदृश अन्य मानस पुत्रों की सृष्टि की, जो पुराणों में नौ ब्रह्मा कहलाये। पुनः ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्ज्जा, अनसूया तथा प्रसूति जैसी नौ कन्याओं को उत्पन्न कर उन्हें अपने नौ मानस पुत्रों की पत्नी के रूप में दिया। लेकिन वे सन्तान और संसार आदि में प्रवृत्त नहीं हुए। उन्हें संसार रचना से उदासीन देख ब्रह्मा जी को त्रिलोक को भस्म कर देने वाला क्रोध उत्पन्न हुआ और उनके ललाट से दोपहर के सूर्य के समान प्रकाशमान 'रुद्र' की उत्पत्ति हुई जिनका आधा शरीर नर का एवं आधा नारी का था। जिन्होंने अपने शरीरस्थ स्त्री

*प्रवक्ता-प्राचीन इतिहास, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

और पुरुष दोनों भाग को अलग-अलग कर दिया तथा पुरुष भाग को ग्यारह भागों में विभक्त किया एवं स्त्री भाग को भी सौम्य, क्रूर, शान्त-अशान्त और श्याम-गौर आदि कई रूपों में विभक्त कर दिया।[२]

तदनन्तर अपने से उत्पन्न अपने ही स्वरूप स्वायम्भुव ब्रह्मा ने प्रजा-पालन के लिए प्रथम मनु को उत्पन्न किया। स्वायम्भुव मनु ने अपने ही साथ उत्पन्न हुई तप के कारण निष्पाप 'शतरूपा' नाम की नारी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण कर सृष्टि पालन का कार्य प्रारम्भ किया।

ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्व स्वायम्भुवं प्रभुः।
आत्मानमेव कृतवान्प्रजापाल्ये मनुं द्विजः॥
शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूत कल्मषाम्।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः॥[३]

स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा से दो पुत्र प्रियव्रत एवं उत्तानपाद तथा दो पुत्री प्रसूति एवं आकूति उत्पन्न हुए। प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ तथा आकूति का रुचि प्रजापति के साथ हुआ। प्रजापति एवं आकूति के संयोग से यज्ञ और दक्षिणा जुड़वा सन्तानें उत्पन्न हुईं। यज्ञ के दक्षिणा से बारह पुत्र हुए जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में याम नाम के देवता कहलाये। दक्ष एवं प्रसूति से २४ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कन्या कीर्ति- इन दक्ष कन्याओं को धर्म ने पत्नी के रूप में ग्रहण किया। इनसे छोटी शेष ग्यारह कन्याएँ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्ज्जा, स्वाहा और स्वधा को क्रमशः भृगु, शिव मारीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ तथा अग्नि और पितरों ने ग्रहण किया।[४]

प्रथम मनु स्वायम्भुव के अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष उत्तम, तामस, रैवस और चाक्षुष हुए। ये छह मनु पूर्वकाल में हो चुके हैं इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है।[५]

द्वितीय स्वारोचिष मनु हुए जिनके चैत्र और किम्पुरुष पुत्र थे। इस मन्वन्तर में पारावत और तुषितगण देवता थे। महाबली विपश्चित देवराज इन्द्र थे। ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान सप्तर्षि थे।[६]

तृतीय मन्वन्तर में उत्तम मनु और सुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे। सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती ये पाँच १२-१२ देवताओं के गण थे। वसिष्ठ के सात पुत्र सप्तर्षि एवं अज, परशु एवं दीप्त उत्तम मनु के पुत्र थे।[७]

चतुर्थ मनु तामस थे। इस मन्वन्तर में सुपार, हरि, सत्य, सुधि देवता थे। सौ अश्वमेध यज्ञवाला शिवि इन्द्र थे तथा ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, पनक और पीवर सप्तर्षि थे। तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुसघ तामस मनु के महाबली पुत्र थे।[८]

पाँचवें मन्वन्तर में रैवत मनु, विभु इन्द्र, अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा चौदह-चौदह देवताओं के गण थे। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि सप्तर्षि थे।[९]

छठें मन्वन्तर में चाक्षुष मनु, मनोजव इन्द्र, आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और देवगण और प्रत्येक के आठ-आठ देवता थे। सुमेधा, विरजा, हविष्मान, उत्तम, मधु, अतिनामा एवं सहिष्णु सप्तर्षि तथा उरु, पुरु और शतद्युम्न चाक्षुष मनु के पुत्र थे।[१०]

सातवें मन्वन्तर में सूर्य पुत्र श्राद्धदेव मनु हुए। इसमें वसु और इन्द्र देवगण तथा पुरन्दर इन्द्र हैं। वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज सप्तर्षि हैं। वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभा, अरिष्ठ, करुष और पृषध्र नौ पुत्र हुए।[११]

विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की भार्या थी जिनसे मनु, यम एवं यमी तीन संतानें हुईं। कालान्तर में सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण संज्ञा अपनी छाया को छोड़कर वन में चली जाती है, जिसके उपरान्त सूर्य एवं छाया के संयोग से शनैश्चर, मनु तथा तपती तीन संतानें हुईं। यह छाया संज्ञा के पुत्र दूसरे मनु अपने अग्रज मनु (सूर्य-संज्ञा पुत्र) का सवर्ण होने से सावर्णि मनु कहलाये, जो आठवें मन्वन्तर के मनु हुए। इस मन्वन्तर में सुतप, अमिताभ देवता, दीप्तिमान, गालव, राम, कृप, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, व्यास एवं ऋष्य शृंग सप्तर्षि तथा सावर्णिमनु के विरजा ऊर्वरीवान एवं निर्मोक पुत्र हुए।[१२]

नवें मनु दक्षसावर्णि थे। इनके समय में पार, मरीचिगर्भ, सुधर्मा देवगण, अद्‌भुत नायक इन्द्र थे। सवन, द्युतिमान, भव्य वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् एवं सत्य सप्तर्षि तथा धृतकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त निरामय और पृथुश्रवा दक्षसावर्णि मनु के पुत्र थे।[१३]

दसवें मनु ब्रह्मसावर्णि थे। सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओं के दो गण थे। शान्ति उनके इन्द्र थे। हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा एवं सत्यकेतु सप्तर्षि तथा सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण ब्रह्मसावर्णि मनु के पुत्र थे।[१४]

ग्यारहवें मनु धर्मसावर्णि हुए। विहंगम, कामगम एवं निर्वाणरति नामक गणों के तीस-तीस देवता हुए और वृष नामक इन्द्र थे। निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् और अनघ सप्तर्षि तथा सर्वत्रग, सुधर्मा और देवानीक धर्मसावर्णि मनु के पुत्र हुए।[१५]

बारहवें मनु रुद्रपुत्र सावर्णि हुए। ऋतुधामा इन्द्र हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा, सुराप देवगण, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति तथा तपोधन सप्तर्षि एवं देववान् उपदेव तथा देवश्रेष्ठ मनु के पुत्र हुए।[१६]

तेरहवें मनु रुचि हुए। सुत्रामा, सुकर्मा, सुधर्मा देवगण इन प्रत्येक के तैंतीस-तैंतीस देवता, महाबलवान, दिवस्पति इन्द्र, निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प्य, निरुत्सुक, धृतिमान, अव्यय और सुतपा सप्तर्षि तथा चित्रसेन एवं विचित्र मनुपुत्र हुए।[१७]

चौदहवें मनु भौम हुए। शुचि इन्द्र, चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ भ्राजिक एवं वाचावृद्ध देवता, अग्निबाहु, शुचि, मागध, अग्निध्र युक्त एवं जित सप्तर्षि तथा उरु एवं गम्भीर बुद्धि भौम मनु के पुत्र हुए।[१८]

विष्णु पुराण में वर्णित मनु वंशावली से यह ज्ञात होता है कि वास्तव में इस सृष्टि का निर्माण अनेक बार में हुआ है, और प्रत्येक बार इस सृष्टि को पुष्पित और पल्लवित करने का भगीरथ दायित्व विभिन्न मनुओं और उनके वंशजों को दिया गया। ☐

सन्दर्भ सूची :

१. श्री विष्णु पुराण ३/६/२१
२. तत्रैव १/७/१-१५
३. तत्रैव १/७/१६-१७
४. तत्रैव १/७/१८-२७
५. स्वायम्भुवो मनुः पूर्व परः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।। ३/१/६
६. तत्रैव ३/१/९-११
७. तत्रैव ३/१/१३-१५
८. तत्रैव ३/१/१६-१९
९. तत्रैव ३/१/२०-२२
१०. तत्रैव ३/१/२६-२९
११. तत्रैव ३/१/३०-३४
१२. तत्रैव ३/२/२-१९

१३. तत्रैव ३/२/२०-२३
१४. तत्रैव ३/२/२४-२७
१५. तत्रैव ३/२/२८-३१
१६. तत्रैव ३/२/३२-३३
१७. तत्रैव ३/२/३४-३९
१८. तत्रैव ३/२/४०-४४

पुराणों में विलक्षण विद्याएँ

डॉ. राम प्यारे मिश्र*

उपनिषदों में मुख्यतः जिस विद्या का उल्लेख है, उसे ब्रह्मविद्या कहा जाता है जिसका तात्पर्य है ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कराने की विद्या। ब्रह्मविद्या के द्वारा 'हम सर्व हो जायेंगे,' ऐसा मनुष्यों का मानना है- 'तदाहुर्यद ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यते।'[१] ब्रह्मविद्या को सभी विद्याओं का आधारभूता कहा गया है जिसका उपदेश ब्रह्मा जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया- 'स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथवार्य ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।'[२] अन्य विद्याओं का अच्छी तरह प्राप्त हुआ ज्ञान भी नाशवान् है किन्तु ब्रह्मविद्या का भली-भाँति ज्ञान स्थिर ब्रह्म को प्राप्त कराने में समर्थ है- 'अन्यविद्यापरिज्ञानमवश्यं नश्वरं भवेत्। ब्रह्मविद्यापरिज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिकरं स्थितम्।'[३]

कर्म वह है जो बन्धन के लिए न हो और विद्या वह है जो जगतीय बन्धनों से मुक्त कर दे। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने इसी विद्या के आलोक में परब्रह्म का साक्षात्कार किया और इसी विद्या को ब्रह्मविद्या कहकर इसे स्पष्ट किया। इसका श्रेय मीमांसा की उस पद्धति को है, जिसने इन सभी ब्रह्मविद्याओं का, ब्रह्मविद्या के अनेकविध रूपों का समन्वय किया। इसी पद्धति का आश्रय लेकर ब्रह्मसूत्रकार ने महत्त्वपूर्ण मानी जाने वाली बत्तीस ब्रह्मविद्याओं की विवेचना की तथा उनके सामरस्य का विवेचन किया। यथा-१.सद्विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); २. आनन्द विद्या (तैत्तिरीयोपनिषद्); ३.अन्तरा दिव्य विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); ४. आकाश विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); ५.प्राणविद्या (छान्दोग्योपनिषद्); ६. गायत्री-ज्योतिर्विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); ७.इन्द्रप्राण विद्या (छा. कौ.); ८.शाण्डिल्य विद्या (छा., वृ. अग्नि रहस्य); ९.नाचिकेतस विद्या (कठोपनिषद्); १०. उपकोशल विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); ११.अन्तर्यामि विद्या (वृहदारण्यकोपनिषद्); १२.अक्षर विद्या (मुण्डकोपनिषद्); १३.वैश्वानर विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); १४. भूमाविद्या (छान्दोग्योपनिषद्); १५.गार्ग्यक्षर विद्या (वृहदारण्यकोपनिषद्); १६. प्रणवोपास्य परमपुरुष विद्या (प्रश्नोपनिषद्); १७.दहरविद्या (छा., वृ., तै.); १८. अंगुष्ठ प्रमित विद्या (कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतर); १९.देवोपास्य ज्योतिर्विद्या (वृहदारण्यकोपनिषद्); २०.मधुविद्या (छान्दोग्योपनिषद्); २१.संवर्ग विद्या (छान्दोग्योपनिषद्); २२.अजाशरीरक विद्या (श्वेत., तै.); २३.बालाकि विद्या (कौ., वृ.); २४.मैत्रेयी विद्या (वृहदारण्यकोपनिषद्); २५.द्रुहिणरुद्रादिशरीरक विद्या; २६.पंचाग्निविद्या (छा., वृ.); २७.आदित्यस्थाहर्नामक विद्या (वृ.); २८. अक्षिस्थाहन्नामक विद्या (वृ.); २९.पुरुष विद्या (छा., तै.); ३०.ईशावास्य विद्या (ई.); ३१.उषस्तिकहोल विद्या (वृहदारण्यकोपनिषद्); एवं ३२.व्याहृतिशरीरक विद्या ये बत्तीस विद्याएँ औपनिषदिक वाङ्मय में उल्लिखित हैं।[४]

विद्या और अविद्या दोनों की महत्ता ईशावास्योपनिषद् में प्रतिपादित है। जहाँ कहा गया है कि अविद्या द्वारा मृत्यु को पार करके (रहस्य जानकर) विद्या द्वारा अमरत्व की प्राप्ति की जा सकती है- 'अविद्यया मृत्यं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।'[५] अनित्य वस्तुओं की ओर से पुरुषों में वैराग्य उत्पन्न कर ब्रह्मविद्या की ओर स्वतः उन्हें उन्मुख करना औपनिषदिक लक्ष्य रहा है। आख्यायिका विद्याग्रहण करने की विधि प्रदर्शित करने के लिए है। विद्याप्राप्ति का उपाय क्या है यह दिखलाने के लिए भी आख्यायिका दी जाती रही है। इसी प्रकार उपनिषदों में पंचाग्नि विद्या, दहर-विद्या, संवर्ग विद्या, प्राणाग्नि होम-विद्या आदि अन्य अनेक विद्याओं में मनुष्य से लेकर ब्रह्म तक आनन्द के तारतम्य का निर्देश प्राण आदि की श्रेष्ठता और कनिष्ठता का कथन, जीव की विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ इन तीन अवस्थाओं का निरूपण करना उद्देश्य रहा है।

ध्यातव्य है कि अनादि विद्या के विलाल में विकसित तथा क्रिया, कारक और फल आदि से भासित होने वाले हम मिथ्या प्रपंच- कलह, फूट, ईर्ष्या, राग, द्वेष, मोह एवं अमिनिवेश को विद्या के द्वारा तिरोहित करके नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म के रूप में अवस्थित होना ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। उपनिषदों में इन गूढ़ तत्त्वों का निदर्शन हुआ है।

इन विद्याओं के सन्दर्भ में उल्लेख्य है कि दो विद्याएँ जानने की हैं- 'शब्दब्रह्म' एवं 'परब्रह्म'- शास्त्रज्ञान और भगवान् के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान। शास्त्रज्ञान में निपुण हो जाने पर मानव भगवान् को भी जान लेता है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह ग्रन्थ का अभ्यास करके उसके ज्ञान-विज्ञानरूप तत्त्व को प्राप्त कर ले, पुनः उस ग्रन्थ को वैसे ही त्याग दे, जैसे धान चाहने वाला मनुष्य धान को लेकर पुआल को खलिहान में छोड़ देता है।[६]

'विद्यते अनया सा विद्या' अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, वह विद्या है। नित्य और अनित्य वस्तु का विवेक प्रदान करने वाली शक्तिधारा

*असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रा.इतिहास विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

'विद्या' कही जाती है। परमात्मसत्ता नित्य है- इस तथ्य का बोध (स्व अनुभूति) होते ही व्यक्ति जागतिक प्रपंचों से मुक्त हो जाता है। जैसा कि दर्शनाचार्य शंकर ने कहा है- सा विद्या या विमुक्तये अर्थात्- जो सांसारिक बन्धनों से जीवात्मा को मुक्त कर दे, वही विद्या है। इसी को अमृतत्व की प्राप्ति कहा जाता है[७]- 'विद्ययाऽमृतमश्नुते', 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'- अविद्या अन्धकार की स्थिति है, चैतन्यस्वरूप आत्मा पर आवरण डाल देती है, जबकि विद्या प्रकाश की स्थिति है, चैतन्यस्वरूप आत्मा पर पड़े आवरण को दूर करके उसका बोध-साक्षात्कार करा देती है[८]-'विद्या दिवा प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते'।

प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय 'पुराणों में विलक्षण विद्याएँ' है, अस्तु, पुराणों पर ध्यान केन्द्रित करना उचित होगा।

दिव्य विद्याएँ या सिद्धियाँ योगाभ्यास से आत्मबल की उपलब्धि के अनन्तर दिव्य सामर्थ्य की प्राप्ति की जा सकती थी। यौगिक क्रियाओं से मन को संयमित कर जो शक्तियाँ प्राप्त की जाती थीं, वे ही आठ सिद्धियों के रूप में विख्यात रही हैं जो इस प्रकार हैं- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व।

लोकजीवन उपयोगी विद्याओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है पौराणिक आख्यानों में विशेष रूप से। अग्नि पुराण, गरुड़ पुराण तथा नारदीय पुराण में इनका विस्तृत उल्लेख वर्णित है। पुराणों ने इन विद्याओं के आचार्यों के नाम तथा अभिमत भी दिये हैं जो अल्पज्ञात या अज्ञात हैं। यही नहीं संस्कृत के वैज्ञानिक वाङ्मय का भी परिचय पुराणों के अनुशीलन से सर्वथा सुलभ है।

पुराणों में आख्यानों के प्रसंग में ऐसी विद्याओं का उल्लेख है जिन पर आधुनिक मानव प्रायः विश्वास नहीं करता, किन्तु उस काल में वे सच्ची थीं तथा उनका उपयोग जनसाधारण के बीच किया जाता था। संस्कृत वाङ्मय में मन्त्र, शास्त्र, माया और विज्ञान तथा पालि में मन्त्र, विज्जा विद्या के ही पर्यायवाची शब्द हैं। ये विद्याएँ इस प्रकार हैं-

१. **परा बाला विद्या**- सर्व सिद्धि को प्रदान करने वाली इस विद्या के प्रभाव से अर्जुन को कृष्णलीला का रहस्य समझ में आ गया था। देवी त्रिपुरसुन्दरी ने इस विद्या का सर्वप्रथम उपदेश अर्जुन को दिया था।[९]

२. **पुरुष प्रमोहिनी विद्या**- इस विद्या के प्रभाव से स्त्रियाँ पुरुषों को विमोहित कर अपने वश में कर लेती हैं। यमराज की कन्या सुनीथा को रम्भा द्वारा इस विद्या का शिक्षण उल्लिखित है।[१०] जहाँ कहा गया है कि वह प्रजापति

अत्रि के पुत्र अंश की धर्मपत्नी तथा वेण की माता बनी; ऐसा वर्णन भागवत पुराण में भी उल्लिखित है। वशीकरण विद्या का वर्णन अग्नि पुराण में भी हुआ।[११] इसके कई नुस्खे भी दिये गये हैं। भिन्न-भिन्न उद्भिद् द्रव्यों को एक साथ पीसकर तिलक लगाने का विधान है जिसको लगाने से मनुष्यों को कौन कहे देवता भी वशीभूत हो जाते हैं।

३. **उल्लापन विद्या**- इस विद्या के प्रभाव से टेढ़ी वस्तु सीधी की जा सकती थी। कृष्ण ने इसी विद्या के माध्यम से मथुरा की विख्यात कुबड़ी कुब्जा को सरल, सीधी एवं स्वस्थ बना दिया था।[१२]

४. **देवहुति विद्या**- इस विद्या का उपदेश दुर्वासा द्वारा कुन्ती को दिया गया था। इस विद्या के माध्यम से देवता भी बुलाने पर प्रत्यक्ष दर्शन देते थे। सूर्य भगवान् के स्मरण करने पर उनके सशरीर प्रकट होने की कथा प्रसिद्ध ही है।[१३]

५. **युवकरण विद्या**- स्पर्श मात्र से ही जीर्ण वस्तुओं को नूतन युवा बनाने की विद्या। शान्तनु को यह विद्या ज्ञात थी जिसके बल पर वे स्पर्शमात्र से ही बूढ़ों को नवयुवक बना देते थे।[१४]

६. **वज्रवाहनिका विद्या**- युद्ध में शत्रुओं को परास्त करने के लिए इस विद्या का प्रयोग किया जाता था। यह विद्या अचूक थी।[१५]

७. **अनुलेपन विद्या**- मार्कण्डेय पुराण में ऐसे विशिष्ट पादलेप का संकेत है[१६], जिसे पैर में लगाने से आधे दिन में ही कई कोसों की यात्रा करने की शक्ति आ जाती थी। इसके उपयोक्ता एक ब्राह्मण का उल्लेख है जिसने एक अन्य ब्राह्मण को यह पादलेप दिया। इसके प्रभाव से वह हिमालय पहुँच गया, किन्तु सूर्य की धूप के कारण तप्त बर्फ पर पैर रखने से वह लेप धुल गया, जिससे यात्रा की वह अलौकिक शक्ति नष्ट हो गयी।

८. **स्वेच्छारूपधारिणी विद्या**- मार्कण्डेय पुराण में इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन हुआ है।[१७] जब कन्धर ने अपने भ्राता कंक के वध का बदला चुकाने के लिए विद्युतरूप राक्षस का वध किया, तब उसकी पत्नी मदनिका ने कन्धर के निकट आत्मसमप्रण किया। मदनिका को इस विद्या का ज्ञान था जिससे स्वेच्छया अभीष्ट रूप को धारण किया जा सकता था। वह कन्धर के घर में आकर यक्षिणी बन गयी। इस विद्या के प्रभाव से महिषासुर ने स्वेच्छा से सिंह, योद्धा, मतंग तथा महिष का रूप धारण किया था।[१८] पद्म पुराण में राजा धर्ममूर्ति की प्रशंसा में कहा गया है कि वह 'यथेच्छरूपधारी' था।[१९]

९. **पद्मिनी विद्या**– इस विद्या के प्रभाव से निधियों को वश में किया जाता था, जिससे इसके ज्ञाता को कभी भी धन की कमी नहीं होती थी। कलावती के द्वारा राजा स्वारोचिष् की इसके दान की कथा मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित है।[२०]

१०.**रक्षोघ्न विद्या**– यज्ञों को अपवित्र बनाने वाले राक्षसों को दूर करने की विद्या मार्कण्डेय पुराण में बलाल राक्षस का हनन इस विद्या के द्वारा वर्णित है।[२१]

११.**जालन्धरी विद्या**– गम्भीर अन्तश्चेता महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश को इस विद्या की शिक्षा प्रदान की थी।[२२] इसके रूप का ठीक परिचय नहीं ज्ञात होता है। ऐसी सम्भावना है कि इसका संबंध अन्तर्धान से रहा हो।

१२.**विद्यागोपाल मन्त्र**– भगवान् शंकर ने काश्यपवंशीय पुण्यश्रव मुनि के पुत्र को इस मन्त्र को दिया था। इसमें इक्कीस अक्षर होते हैं। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक को वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है।[२३]

१३.**सर्वभूतरुत विद्या**– इस विद्या के प्रभाव से मानव सभी प्रकार के अमानवीय जीव-जन्तुओं की ध्वनियों का अर्थ जान लेता है। विद्याधर मन्दार की कन्या विभावरी ने यह विद्या राजा स्वारोचिष् को दहेज में प्रदान की थी।[२४] मत्स्य पुराण में उल्लिखित है कि राजा ब्रह्मदत्त इस विद्या के ज्ञाता थे, जिसने नर-मादा चींटियों के आपसी मनोरंजक प्रेमालाप को समझ लिया था। इसी राजा के विषय में इस घटना का उल्लेख पद्म पुराण भी करता है।

१४.**अस्त्रग्राम हृदय विद्या**– इस विद्या के द्वारा अस्त्रों का रहस्य ज्ञान होता था, जिससे शत्रुओं की पराजय अनायास हो जाती थी। मनोरमा नामक विद्याधरी के इस विद्या के ज्ञान की कथा मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित है।[२५] जिसने अपने आक्रमणकारी राक्षस से मुक्ति पाने के लिए राजा स्वारोचिष को इस विद्या का ज्ञान प्रदान किया था। वहाँ इस विद्या के उपदेश क्रम का भी उल्लेख है- रुद्र स्वायम्भुव मनु-वसिष्ठ-चित्रमुग्ध-इन्द्रीवराक्ष (विद्याधारी का पिता)-मनोरमा।[२६] मनोरमा ने इसे पात्रान्तरित करते समय जल का स्पर्श कर आगम और निगम के साथ इसे राजा स्वारोचिष् को दिया।

अनेक विद्याओं का उल्लेख अभिलेखों में उत्टंकित हुआ है जहाँ विद्याओं के सन्दर्भ में प्रकाश डाला गया है।[२७] राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने भी 'भारत-भारती' में अनेक विद्याओं का छन्दोबद्ध उल्लेख किया है।[२८]

यहाँ यह अवधेय है कि पुराणों में अनेक चमत्कारी विद्याओं के संकेत उल्लिखित हैं; जिनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं- सिंह विद्या, नरसिंह विद्या,

गान्धरी विद्या, मोहिनी तथा जृम्भणी विद्या, अन्तर्धान विद्या, वैष्णवी विद्या या नारायण कवच, त्रैलोक्य विजय विद्या जैसी अनेकानेक विलक्षण विद्याओं के गूढ़तम रहस्यों का यदि गम्भीरतापूर्वक विश्लेषण किया जाय तो प्राचीन काल के अनेक रहस्य जो आज अनुद्घाटित हैं, को उद्घाटित कर इतिहास में एक नवीन मौलिक उपस्थापना होगी और यही नहीं यह गवेषणाओं की नयी विधाओं से सँवलित होगा।

ध्यानार्ह है कि मन्त्र विज्ञान, मातृकाओं एवं मुद्राओं के रहस्य संबंधी शास्त्र इत्यादि अधिकांश ऐसे सन्दर्भ हैं जो इस परम्परा के व्यापक धरातल को सूचित करते हैं। इसके अलावा वैष्णव आगम मत के मूल उद्गाता शाण्डिल्य स्वयं वैदिक, आगमिक एवं स्मार्त इन तीनों परम्पराओं से जुड़े दिखाई देते हैं। अस्तु, शाण्डिल्य की तरह शाण्डिल्य विद्या अथवा पांचरात्र विद्या अर्थात् एकायन विद्या का एक विशिष्ट आगम परम्परा के रूप में क्रमिक विकास हुआ। अधिकांश अवैदिक तत्त्वों के समायोजन के बावजूद मूल वैदिक धारा इस आगम परम्परा में अनवछिन्न रीति से विद्यमान रही। □

सन्दर्भ–

१. बृहदारण्यकोपनिषद्, १.४.९.
२. मुण्डकोपनिषद्, १.१.१.
३. शुकरहस्योपनिषद
४ विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य उपनिषद् अंक, पृष्ठ ५४-५५, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९४९.
५ ईशावास्योपनिषद्, ११.
६ द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्
शब्दब्रह्माणि निष्णातः परं ब्रह्मादि गच्छति -ब्रह्मविन्दूपनिषद्, १७.१८.
७ ईशावास्योपनिषद्, ११; मैत्रायण्युपनिषद्, ७.१; केनोपनिषद्, २.४.
८. संन्यासोपनिषद्, २.८३.
९ पद्म पुराण, पाताल खण्ड, ४३.४०.
१०. पद्म पुराण, भूमि खण्ड, ३४.३८.
११. अग्नि पुराण, १२३.२६.
१२. विष्णु पुराण, ५.२०.९- 'शौरिरुल्लापन विधानवित्'।
१३. भागवत पुराण, ९.२४.३२.
१४ भागवत पुराण, ९.२२.११.
१५ लिंग पुराण, ५१वाँ अध्याय द्रष्टव्य।

१६. मार्कण्डेय पुराण, ६१.८-२०.
१७ तत्रैव द्रष्टव्य, अध्याय २.
१८. मार्कण्डेय पुराण, ८३.२०.; स्कन्द पुराण, ब्रह्मखण्ड, ७.१५-२७
१९. पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड, २९.३
२०. मार्कण्डेय पुराण, ६४.१४.
२१. तत्रैव, ७०.२१.
२२. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, ३७.१३.
२३. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, ४१.१३२.
२४ मार्कण्डेय पुराण, ६४.३; मत्स्य पुराण, २०.२५; पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड, १०.८५
२५. तत्रैव, अध्याय ६३ विस्तार के लिए देखें।
२६. तत्रैव, ६३.२४-२७.
२७ ततो लेख....रूप.......गणना व्यवहार विधि-विसारदेन सव-विजावदातेन खारवेल: ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख; वाजपेयी, के.डी., पृ० १०६; काव्य विधान शब्दार्थ रुद्रामा: गान्धार्व न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारणधारण विज्ञान प्रयोग वाप्त गन्धर्व न्याय शब्द अर्थ.........; तत्रैव, पृ० १४८
२८. हम वेदवाको वाक्यविद्या ब्रह्मविद्या भिज्ञ थे।
नक्षत्र विद्या क्षत्र विद्या भूत विद्या भिज्ञ थे॥
निधिनीति विद्या राशिविद्या पितृ विद्या में बढ़े।
सर्पादिविद्या देवविद्या दैवविद्या भी पढ़े॥
(द्रष्टव्य, मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती)

पुराणों में इतिहास-संकल्पना

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी*

पुराण चिरकाल से हिन्दुओं के इतिहास को अपने में संजोये हुए हैं एवं हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के आधार स्तम्भ रहे हैं। हमारी परम्परागत पवित्र भावनाएँ उनके साथ जुड़ी हुई हैं। पुराणों की सीधी-सादी आडम्बरविहीन कथाओं की शिक्षा हमारे जीवन में बड़े काम की है, और हमारे पूर्वजों के राजतन्त्र एवं विभिन्न राजवंशों की परम्परागत स्थितियों को उद्घाटित करने के स्रोत हैं। उनकी सुरुचिता, सरलता और मनोरंजकता की तुलना भारतीय वाङ्मय में बेजोड़ है। इनमें वैदिक युग से लेकर रामायण-महाभारत काल तक की राजनीतिक घटनाएँ भरी हैं। पृथु, पुरुरवा, ययाति, इला, बुध, बृहस्पति, तारा, दीर्घतमा, ममता, सत्यवान और सावित्री आदि की कथाएँ अपने पुरातन सौन्दर्य में आज भी जीवित हैं, जो एक आदर्श प्रस्तुत करती हैं। अति प्राचीन काल से पुराणों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। पुराण शब्द का व्यवहार अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद्, वृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक, आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुसंहिता, रामायण, महाभारत आदि प्राचीनतम एवं सामान्य ग्रन्थों में किया गया है। महाभारत के आदिपर्व में महर्षि शौनक ने कहा है-

पुराणेहि कथा दिव्याः आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्व पितुस्तव॥[१]

अर्थात् 'पुराणों में दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान व्यक्तियों के आदिवंशों के वर्णन हैं, जिन्हें मैं पूर्वकाल में (आपके पिता जी से) सुन चुका हूँ।' यही नहीं महाभारत के आदिपर्व में उन समस्त राजाओं की नामावली है जिनके वंश का वर्णन पुराणों में है।

पुराण का अर्थ 'प्राचीन आख्यान' है; और 'पुराना' भी। पुराणों में इतिहास की सामग्री सुरक्षित है। पुराणों में सृष्टि, उसके विस्तार, प्रलय और पुनःसृष्टि की कथा, वंशावली और वंशानुचरित वर्णित हैं। पुराणों के द्वारा प्राचीन भारतीय समाज एवं उसके विचार, रीति-नीति का प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त होता है। इस शब्द का विच्छेद इस प्रकार किया जा सकता है- 'पुर्+आन्' या 'पुर=आस' अर्थात्

*एसो. प्रो. प्राचीन इतिहास, रतनसेन महाविद्यालय, बाँसी, सिद्धार्थनगर।

जो पहले था या जिसे पहले प्राप्त कर लिया गया था। वायुपुराण के अनुसार पुराण शब्द का अर्थ है- 'पुरा-अनीति' अर्थात् जो प्राचीन काल में जीवित था।[२]

पद्मपुराण की निरुक्ति भी 'पुराण' शब्द की व्याख्या करती है। 'पुरापरम्परां वशिष्ट कामयते' अर्थात् जो परम्परा की कामना करे या करता है।[३] परम्परा का अर्थ है-प्राचीनता। ब्रह्माण्डपुराण की मान्यता इससे भी भिन्न है-'पुरा एतत् अभूत' ऐसा कहा है अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ, यथा-

'यस्मात् पुरा ह्नयभूच्चैतत् पुराणंतेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।[३]'

इस प्रकार इन समस्त व्युत्पत्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण शब्द का अर्थ होता है- जो प्राचीन काल से आया हुआ है।

पुराण लक्षण प्रायः सभी पुराणों में उपलब्ध होता है।[४] पुराण के सबसे प्रमुख लक्षण पाँच ही हैं और उनमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है।

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंच लक्षणम्।।'

अर्थात् सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का वर्णन करने वाला पुराण है।

अठारह महापुराणों में 'विष्णुपुराण' का आकार सबसे छोटा है किन्तु इसका महत्त्व प्राचीन समय से ही बहुत अधिक माना गया है। इस पुराण के रचनाकार पराशर ऋषि थे। वे महर्षि वसिष्ठ के पौत्र थे। इस पुराण में पृथु, ध्रुव और प्रह्लाद के प्रसंग अत्यन्त रोचक हैं। पृथु के वर्णन में धरती को समतल करके कृषि कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।[५] कृषि व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त करने पर जोर दिया गया है। घर-परिवार, ग्राम-नगर, दुर्ग आदि की नींव डालकर परिवारों को सुरक्षा प्रदान करने की बात कही गई है। पृथु प्राणदान करने के कारण भूमि के पिता हुए, इसलिए उस सर्वभूत धारिणी को 'पृथिवी' नाम मिला।[६]

विष्णुपुराण के चौथे अंश में राजधर्म के बारे में वर्णन करते हुए प्राचीन और अर्वाचीन राजाओं को जहाँ सात्विक और प्रजापालक बताया गया है वहीं अर्वाचीन अर्थात् कलिकाल के राजाओं को मोह से ग्रस्त मदान्ध कहा गया है। राजाओं को चेतावनी देते हुए पुराणकार कहता है कि राजा को प्रजा का हित साधन करते हुए धर्म का पालन करना चाहिए।

जिस व्यक्ति को शासक के उच्च पद पर आसीन किया जाता है उसके ऊपर राष्ट्र का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व होता है। जो शासक अथवा राजा इस

उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए अपने सुख और स्वार्थ की चिन्ता नहीं करता, अपनी समस्त शक्तियों को प्रजा के कल्याणार्थ लगा देता है वही सच्चा राजा कहलाता है। जो राजा इससे विपरीत कार्य करता है और भोग-विलास में पड़कर अपनी वंश वृद्धि, वैभव वृद्धि तथा राज्यवृद्धि में लगकर दूसरों को त्रास देता है एवं प्रजा को पीड़ित करता है, वही राजा अपने पद को कलंकित करता है।

इस तुच्छ नाशवान शरीर के मोह में अंधे बहुसंख्यक ऐसे राजा हुए हैं जिन्होंने सदैव अपने राज्य की भूमि से मोह किया है, वे सदैव यह सोचते रहे कि यह भूमि स्थायी रूप से मेरी और मेरे पुत्रों की किस प्रकार बनी रहे, इस चिन्ता में वे नष्ट हो गये। राजाओं को ऐसे मोहान्ध देखकर यह धरती शरदकालीन पुष्पों की भाँति हँसती है और कहती है कि बुद्धिमान होते हुए भी इन राजाओं को यह कैसा मोह हो रहा है। उनका जीवन पानी के बुलबुले के समान है, एक क्षण के लिए है, फिर भी उन्हें स्थिरता में विश्वास है? ये नृपति अपने घर, मन्त्री, कर्मचारी, पुरवासी और शत्रुओं को जीतना चाहते हैं। समुद्रपर्यन्त इस धरती को जीत लेने की कामना करते हैं। ऐसे बुद्धि से मोहित हुए राजा निकटवर्ती मृत्यु को नहीं देखते।

जो राजा ऐसा सोचता है कि यह पृथ्वी मेरी है या सारी सन्तान मेरी हितैषी है, वह मूर्ख दूसरे राजाओं को मृत्युमुख में जाते देखकर भी अपना मोह नहीं छोड़ता। ऐसे मूर्ख राजा पर हँसा ही जा सकता है। वर्तमान शासकों की ऐसी ही दशा देखी जा सकती है, जो मोह में पड़कर गद्दी से चिपके रहना चाहते हैं।

वायुपुराण, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण, ब्रह्मपुराण तथा मत्स्यपुराण में तत्कालीन सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावली प्राप्त होती है। इन पुराणों में वैवस्वत मनु से राजाओं की वंशावली प्रारम्भ होकर वृहद्रथ तक जाती है। मनु से महाभारत काल के राजा परीक्षित तक ९५ पीढ़ियाँ हो चुकी थीं। इस वंशावली में इक्ष्वाकु, पृथु, मान्धाता, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, भगीरथ, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, कुश, निषध, नल और श्रतायु जैसे महत्त्वपूर्ण राजा आते हैं।

पुराणों में दूसरा महत्त्वपूर्ण वंश पुरु का है- पुरु ययाति के पुत्र थे। इस वंश में राजा शिवि, रौद्राश्व, दुष्यन्त और भरत राजा हुए। इस भरत वंश में आगे चलकर रन्तिदेव और दिवोदास राजा हुए। पुरु के वंशज राजा शान्तनु से परीक्षित तक के राजाओं ने महाभारत युग को प्रसिद्ध कर दिया था।

तीसरा महत्त्वपूर्ण वंश काशी का है। इस वंश के राजा काश ने काशी नगरी को बसाया था। इस वंश के राजा धृष्टकेतु ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था।

चौथा महत्त्वपूर्ण वंश मगध का है। यह उत्तर पांचाल का राजवंश था। अजमीढ़ की रानी धूमिनी के पुत्र ऋक्ष से यह वंश चला। ऋक्ष के पुत्र संवरण और संवरण के पुत्र कुरु से कुरुक्षेत्र का महत्त्व हुआ। कुरु के बाद चौथी पीढ़ी में वसु का ऐतिहासिक महत्त्व है। वसु के एक पुत्र वृहद्रथ से मगध का राजवंश प्रारम्भ होता है। वृहद्रथ की छठीं पीढ़ी का राजा जरासंध था। वह कृष्ण का परमशत्रु था। जरासंध ने समस्त आर्यावर्त में मगधराज का झण्डा फहरा दिया था। अन्य राजवंशों में यदुवंश, कोष्टुवंश और अग्निवंश का वर्णन भी मत्स्यपुराण में प्राप्त होता है।

इतिहास का अर्थ व्यक्ति के जन्म-मरण का ब्योरा देने तक ही सीमित नहीं होता। मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश काल के मध्य भारत के इतिहास को जिस तरह तोड़ा-मरोड़ा गया और अमूल्य ग्रन्थों की होलियाँ जलाई गई, उसे देखते हुए भारत का सर्वमान्य इतिहास प्राप्त करना दुष्कर है। फिर भी भारत के पौराणिक साहित्य में ऐसे अनेक घटनाक्रम सुरक्षित रह गये जिनसे उस युग के इतिहास पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ जाता है। उस थोड़े बहुत में ही भारतीय जीवन के कुछ अद्‌भुत आदर्श सुरक्षित रह गये जिनके कारण भारत की सभ्यता तथा संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है और श्रीहीन नहीं हो पायी है। □

सन्दर्भ-

१. महाभारत, आदिपर्व, ५.२

२. वायुपुराण, १.२०३

३. ब्रह्माण्डपुराण, १.१.१७३

४. विष्णुपुराण, ३.६.२४, मा.पु. १३४.१. अ.पु. १.१४

५. विष्णुपुराण १.१३.८५

६. विष्णुपुराण १.१३.८९

पुराणों में विज्ञान

रेनू यादव*

पुराण भारतीय संस्कृति-सभ्यता एवं इतिहास का मेरुदण्ड है। भारत में विज्ञान विषय की प्राचीनता प्राक्ऋग्वेदीय काल से चली आ रही है। ऋग्वेद में 'पुराण' और 'पुराणी' दोनों शब्दों का उल्लेख एक विशेषण के रूप में हुआ है। पुराणी विद्या अर्थात् पुराण का अर्थ 'विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं' के अर्थ में विज्ञान एक विशिष्ट ज्ञान है। इस दृष्टि से पुराणों में विविधम् ज्ञानम् विज्ञानं का विस्तार संक्षेप में पौराणिक दृष्टि से प्रस्तुत शोध निबन्ध में किया गया है, जिनमें प्रमुखता- १. अश्वशास्त्र, २. आयुर्वेद=आयुर्विज्ञान, ३. रत्नविज्ञान, ४. वास्तु विज्ञान, ५. सामुद्रिक विज्ञान, ६. धनुर्विज्ञान=शस्त्रास्त्र विज्ञान, का एक संक्षिप्त अनुसंधानात्मक सर्वेक्षण किया गया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

लोकोपयोगी अनेक विधाओं का वर्णन पुराणों में विशेषतः विश्वकोशीय अग्नि, गरुड़ तथा नारदीय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। इन विद्याओं का विवरण इनके प्रतिपादक मौलिक ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। वर्णन है तो संक्षिप्त ही, परन्तु पर्याप्त प्रामाणिक है। लोक व्यवहार के लिए इतनी भी जानकारी कम उपयोगी नहीं है। कुछ विद्याएँ तो इतनी विलक्षण हैं कि उनके मूल ग्रन्थ आज बड़े परिश्रम से खोजे जा सकते हैं।

पुराणों ने इन विद्याओं के आचार्यों के भी नाम तथा मत दिये हैं जो अज्ञात तथा अल्पज्ञात हैं। अतः संस्कृत के वैज्ञानिक साहित्य का भी परिचय पुराणों के गम्भीर अध्ययन से सर्वथा सुलभ है। इस दृष्टि से भी पुराणों का अध्ययन लोकोपयोगी तथा कल्याणकारी है। इस विषय की स्थूल सामग्री संक्षेप में यहाँ दी गयी है।

१. **पशु चिकित्सा-** यह प्राचीन विद्या है। महाभारत, सभा पर्व के ५/१०९ में अश्वसूत्र तथा हस्तिसूत्र का उल्लेख है। अश्वों की चिकित्सा के निमित्त एक स्वतन्त्र आयुर्वेद विभाग था जो 'शालिहोत्र' के नाम से प्रख्यात था। पुराणों से अश्व के सामान्य परिचय, उनके चलाने के प्रकार, उनके रोग और उपचार आदि विषयों की सम्यक् जानकारी हमें हो सकती है। अग्निपुराण (अध्याय २८८) में

*शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

घोड़ों के चलाने के प्रकारों का बड़ा ही उपयोगी वर्णन है। इस पुराण के २८९-२९० अ. में अश्वों की चिकित्सा संक्षेप में वर्णित है। गरुड़पुराण के एक (२०१अ.) अध्याय में भी यह विषय विवृत हुआ है। इसी के प्रसंग में 'हस्तिशास्त्र' का भी विवरण बड़ा उपयोगी है। सोमपुत्र बुध गजवैधक के प्रवर्तक थे-ऐसी पौराणिक अनुश्रुति मत्स्यपुराण (२४/२-३) में निर्दिष्ट है। गजायुर्वेद का वर्णन धन्वन्तरि ने किया था। इसका संक्षिप्त विवेचन गरुड़पुराण (२०१ अ. ३३-३९ श्लोक) में उपन्यस्त है। अग्निपुराण के २८७वें अध्याय में यह विषय विवृत है तथा २९१वें अ. में गजशान्ति का उल्लेख है। मत्स्यपुराण में हस्तविद्या-विषयक उल्लेख मिलता है। मत्स्य का कथन इस प्रकार है-

तारोदर-विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसन्निभिः।
सर्वार्थविद् धीमान् हस्तिशास्त्र प्रवर्तकः॥
नाम्नायत् राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैधकम्।
राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रोबुधः स्मृतः॥

मत्स्यपुराण-२४/२-३.

मल्लिनाथ के रघुवंश (४/३९) की टीका में 'राजपुत्रीय' से गम्भीरवेदी हस्ति का लक्षण उद्धृत किया गया है। अग्निपुराण (२८२ अ.) गायों की चिकित्सा का अलग से वर्णन करता है। इस प्रकार पशु चिकित्सा के विविध प्रकारों का वर्णन पुराणों ने प्रस्तुत किया है।

२. **आयुर्वेद-आयुर्विज्ञान**- आयुर्वेद एक लोकोपयोगी जनजीवन से नित्यप्राप्ति सम्बद्ध शास्त्र है। फलतः लोक से सम्बन्ध रखने वाले पुराणों में इसकी चर्चा नितान्त स्वाभाविक है। अग्नि तथा गरुड़ दोनों पुराणों से यह विषय वैशधरूप से चर्चित है। आयुर्वेद के अनेक विभागों में निदान तथा चिकित्सा मुख्य है। इसके निमित्त औषधियों के स्वरूप का तथा गुण का परिचय होना आवश्यक है। इन पुराणों में ये विषय विस्तार से विवृत हुए हैं। धन्वन्तरि यहाँ वक्ता हैं जो सुश्रुत को उपदेश देते हैं। यह धन्वन्तरि काशी के राजा दिवोदास का ही नामान्तर बतलाया जाता है। सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र बतलाये गये हैं। गरुड़पुराण ५६ अध्यायों में (१४६अ.-२०२अ.) इस विषय का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करता है। प्रधान रोगों के, जैसे ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास आदि के निदान का वर्णन पहले किया गया है (१४६अ.-१६७अ.)। औषधियों के नामों की विस्तृत सूची २०२ अ. में दी गयी है तथा १७३अ.-१९३अ. में द्रव्यगुण का वर्णन है। गारुड़ी विद्या अर्थात् सप्रदंश को दूर करने की विद्या भी १९७अ. में विवृत है। अग्निपुराण

में भी इस विषय का उपयोगी उपन्यास किया गया है। २७९-२८१अ. तक रोगों का, २८३ अ. में नाना रोगों के हरण करने वाली औषधियों का, २८५अ. में 'मृत-संजीवनी' नामक सिद्ध योगों का तथा २८६अ. में नाना कल्पयोगों का विवरण देकर पुराणकार ने चिकित्साशास्त्र का एक हस्तामलक ही मानों प्रस्तुत कर दिया है। इतना तो निश्चय है कि इन पुराणों ने उपयोगी विद्याओं के सार-संकलन की अपनी प्रक्रिया के अनुसार ही यह विषय-विवेचन किया है, जो प्रामाणिक होने के साथ ही साथ नितान्त व्यवहारोपयोगी भी है।

वृक्षायुर्वेद भी भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए तो सर्वोपरि उपादेय शास्त्र है। इसमें वृक्षों, लताओं तथा गुल्मों में लग जाने वाले रोगों की दवाओं का वर्णन है। अग्निपुराण के एक विशिष्ट अध्याय (२८२अ.) में इस विषय का प्रामाणिक, परन्तु संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। यह भारतवर्ष की एक प्राचीन विद्या है। वृहत्संहिता की उत्पलकृत टीका (५४अ.) में कश्यप, पराशर, सारस्वत, आदि इस विद्या के प्राचीन आचार्यों के नाम निर्दिष्ट हैं तथा उनके वचन भी उद्धृत किये गये हैं।

३. **रत्नविज्ञान**- रत्नों की परीक्षा का विषय भी पुराणों में वर्णित है। गरुड़पुराण में यह विषय बारह अध्यायों में काफी विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है (६८अ.-८०अ.)। इसमें रत्नों का प्रथमतः विभाजन किया गया है और तदनन्तर उनके गुण-दोषों का विवरण है जिससे दुष्ट रत्नों को त्यागकर निर्दुष्ट रत्न का ग्रहण किया जा सके। वज्र (६८अ.), मुक्ता (६९अ.), पद्मराग (७०अ.), मरकत (७१अ.), इन्द्रनील (७२अ.), वैदुर्य (७३अ. तथा ७६अ.), पुष्पराग (७०अ.), कर्केतन (७५अ.), पुलक (७७अ.), रुधिर रत्न (७८अ.), स्फटिक (७९अ.), तथा विद्रुम (८०अ.) आदि रत्नों की परीक्षा का उल्लेख मिलता है। अग्निपुराण के २६४अ. में यही विषय वर्णित हैं, परन्तु बहुत ही संक्षेप में पन्द्रह श्लोकों में केवल सामान्य निर्देश ही किया गया है। गरुड़ का विवरण इसकी अपेक्षा विस्तृत, विशद तथा अधिक उपादेय है। अन्य पुराणों में भी जहाँ यह विषय आया है, उसका उल्लेख भोजराज ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मुक्तिकल्पतरु' में विशेष भाव से किया है।[१]

४. **वास्तु विज्ञान**- मन्दिर तथा राजप्रासाद की निर्माणविधि को वास्तुशास्त्र के नाम से पुकारते हैं। यह बहुत ही उपयोगी विद्या है। सामान्य गृहस्थों के लिए तो कम परन्तु राजाओं के लिए अत्यधिक। मत्स्यपुराण ने इस विषय का बड़ा ही विस्तृत वर्णन अठारह अध्यायों में दिया है (२५२अ.-२७०अ.)। अग्निपुराण ने भी

यह विषय अनेक अध्यायों में विकीर्ण रूप से प्रस्तुत किया है (अ. ४०, ९३, १०५-१०६, २४७)। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी इन विषयों का विवेचन है (२/२९-३१)। संक्षिप्त विवेचन गरुण में उपलब्ध होता है (१/४६)। सबसे विस्तृत विवेचन होने के कारण मत्स्य का विवरण विशेष महत्त्व रखता है। प्रतीत होता है कि मत्स्य ने किसी विशिष्ट वास्तुशास्त्रीय निबन्ध का सार अपने अध्यायों में प्रस्तुत किया है। यहाँ चार विषयों का विवेचन पुराणकार करता है-१. वास्तु विद्या के मूल सिद्धान्त, २.स्थान का चुनाव तथा उस पर निर्माण की रूपरेखा, ३.देवों की मूर्तियों का निर्माण, तथा ४.मन्दिर तथा राजप्रासादों की रचना। मत्स्य के २५२अ. में इस शास्त्र के १८ आचार्यों के नाम दिये गये हैं-भृगु, अत्रि, विश्वकर्मा, मथ, नारद आदि। इनमें से कतिपय नाम काल्पनिक हो सकते हैं। परन्तु जैसा अन्य स्रोतों से सिद्ध होता है, अनेक नाम वास्तविक हैं। इन आचार्यों ने वास्तव में इस शास्त्र के विषय में ग्रन्थों का प्रणयन किया था।[२] गृह निर्माण कला (२५३अ.), भवन-निर्माण(२५४अ.), स्तम्भ का मान-निर्णय (२५५अ.) आदि विषयों का विवरण देने के अनन्तर इस पुराण ने देवप्रतिष्ठा की विधि तथा प्रासाद निर्माण की विधि का विवेचन विस्तार से किया है। इसी प्रसंग में प्रतिमा-लक्षण की भी चर्चा पुराणों में है। अग्निपुराण ने ४९-५५ अध्यायों में पूज्य देवता की प्रतिमाओं के लक्षण तथा निर्माण का विवरण दिया है। मत्स्य ने भी यही विषय २५८-२६४ अ. में दिया है।[३] विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड में भी यही विषय विवृत है। पुराणों के अतिरिक्त यह विषय मौलिक रूप से मानसार, चतुर्वर्ग चिन्तामणि, सूत्रधार मण्डन, रूप मण्डन तथा वृहत्संहिता (५८अ.) में विस्तार से दिया गया है।

५ **ज्योतिष**- ज्योतिष का भी विवरण पुराणों में यत्र-तत्र उपन्यस्त है। खगोल तो भूगोल के साथ संवलित होकर अनेक पुराणों में अपना स्थान रखता है। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध में (१६-२५अ.) और इसी के अनुकरण पर देवीभागवत के स्कन्ध ८ (५-२०अ.) में ज्योतिष एवं खगोल विद्या का वर्णन मिलता है। गरुड़पुराण में पाँच अध्याय (५९-६४अ.) इसी विषय के वर्तमान हैं, जिनमें फलित ज्योतिष का ही मुख्यतया विवरण है। नक्षत्रदेवता का कथन, योगिनीस्थिति का निर्णय, सिद्धियोग, अमृतयोग, दशा विवरण, दशा फल, यात्रा में शुभाशुभ का कथन, राशियों का परिमाण, विभिन्न लग्नों में विवाह के फल आदि विषयों का विवरण इन अध्यायों में दिया गया है। नारदीयपुराण के नक्षत्रकल्प में भी (१/५५-५३) नक्षत्र सम्बन्धी बातें दी गयी हैं। इस पुराण के

५४अ. में गणित का विवरण है। अग्निपुराण ने कतिपय अध्यायों में (१२१अ.) शुभाशुभ विवेक के विषय में वर्णन उपलब्ध है।

६ **सामुद्रिक विज्ञान**- स्त्री-पुरुषों के शारीरिक लक्षणों के विषय में किसी समुद्र नामक प्राचीन आचार्य ने एक ग्रन्थ लिखा था। आज भी सामुद्रिक शास्त्र के नाम से एक ग्रन्थ उपलब्ध है, परन्तु यह उतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। स्त्री-पुरुषों के विभिन्न अंगों के स्वरूप को देखकर उच्चता, ह्रस्वता, दीर्घता, लघुता आदि की परीक्षा कर उनके जीवन की दिशा को बतलाना इस विद्या का अंग है। सुन्दरकाण्ड के एक विशिष्ट सर्ग में रामचन्द्र के अंगविन्यास का विवरण बड़ी सचेष्टता से दिया गया है। यह अंगविद्या (प्राकृत अंग विज्जा) का विषय है। अंगविद्या सामुद्रिक विद्या के साथ सम्बद्ध एक प्राचीन विद्या थी जिसके द्वारा नर-नारी के शरीर का विस्तृत वर्णन शुभ या अशुभ सूचना के साथ उपस्थित किया जाता था। वीरमित्रोदय के 'लक्षणप्रकाश' में मित्र-मिश्र ने इस विद्या से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री प्राचीन आचार्यों के वचनों के उद्धरण के साथ उपस्थित की है। पुराणों ने 'अंगविद्या' का भी संकलन अपने अध्यायों में किया है। अग्निपुराण के २४३-२४५ अध्यायों में तथा गरुड़पुराण के १/६३-६५ अध्यायों में यही विद्या प्रपञ्चित है। जैन धर्म के अनेक ग्रन्थ इसी अंगविद्या (=अंगविज्जा) से सम्बन्ध रखने वाले उपलब्ध हुए हैं जिनमें एक प्राकृतग्रन्थमाला (काशी से) हाल में ही प्रकाशित हुआ है।

६ **धनुर्विज्ञान (शस्त्रास्त्र विज्ञान)**- प्राचीन काल में यह विद्या अत्यन्त प्रख्यात थी, परन्तु देश के परतन्त्र हो जाने के कारण इस विद्या से सम्बद्ध ग्रन्थों के नाम ही यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। प्रपञ्चहृदय में इस शास्त्र के वक्तारूप में ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, मनु, तथा जमदग्नि के नाम निर्दिष्ट हैं। महाभारत के अन्य पर्वों में इस विद्या के आचार्यों के नाम संस्मृत हैं। अगस्त्य का नाम आदिपर्व में (१५२/१०) कुम्भकोण तथा भारद्वाज का नाम शान्तिपर्व में(२१०/२१) धनुर्विद्या के आचार्य के रूप में उल्लिखित है। अग्निपुराण के चार अध्यायों में (२४९-२५२अ.) इस विद्या का सार संकलित किया गया है। मधुसूदन सरस्वती ने 'प्रस्थानभेद' में विश्वामित्र धनुर्वेद का उल्लेख किया है, परन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।[४] □

सन्दर्भ-

१. द्रष्टव्य 'मुक्तिकल्पतरु' (कलकत्ता ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशित, कलकत्ता,१९१६)
२. श्री तारापद भट्टाचार्य ने वास्तुविद्या के अपने अनुशीलन 'Canons of Indian

Architecture' नामक ग्रन्थ में इन अठारहों आचार्यों की ऐतिहासिकता का तथा उनके ग्रन्थों का समीक्षण प्रस्तुत किया है (१९४७ ई. में प्रकाशित)।

३. मत्स्य के इन परिच्छेदों की विस्तृत तथा चित्रसमन्वित व्याख्या के लिए द्रष्टव्य डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल रचित 'मत्स्यपुराण-ए स्टडी' (पृ.३४२-३७०)। इन पृष्ठों में यह विषय बड़ी सुन्दरता तथा विशदता के साथ विवेचित किया गया है।

४. डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य, अग्निपुराण विषयानुक्रमणी पृ.५६-५७, जहाँ अनेक उल्लेख दिये गये हैं।

पुराभवम् पुराणम्

डॉ. किरन देवी*

पुराण संस्कृत साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग तथा उपजीव्य रहे हैं। इनमें भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन परम्पराओं का रोचक वर्णन मिलता है। पुराण का वास्तविक अर्थ- प्राचीन या पुराना है। इसमें प्राचीन कथानक, वंशावली, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्त्वों का समावेश है, अतः इसे पुराण नाम दिया गया है। वैदिक साहित्य में पुराण शब्द इतिहास और आख्यान शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है- "पुराणम् आख्यानम्" अर्थात् प्राचीन आख्यान। वस्तुतः इतिहास के अन्तर्गत भूतकालीन घटनाएँ वर्णित रहती हैं। "इति ह आस-निश्चित ही ऐसा था।" इस प्रयोग से यही सिद्ध होता है। इतिहास में सत्य घटनाओं का आधिक्य होता है जबकि पुराण में इतिहास के साथ-साथ आख्यानों का भी समावेश किया जाता है। इतिहास से पुराण का क्षेत्र विस्तृत होने का यही कारण है।

प्राचीन तत्त्वों के समावेश के भाव को लेकर पुराण शब्द की अनेक निरुक्तियाँ कई पुराणों में प्रस्तुत की गयी हैं। "पुराभवम् पुराणम्" अर्थात् पहले जो था उसे नवीन रूप में चित्रित करना। "यस्मात् पुरा हि अनति इदं पुराणम्।" सायण-ऐतरेय ब्राह्मण की भूमिका के अनुसार संसार की उत्पत्ति और विकास क्रम के बोधक को पुराण कहते हैं-"पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।" अन्यत्र विश्व रचना के इतिहास को पुराण कहते हैं।

पुराणों की उपादेयता को सिद्ध करते हुए कहा गया है कि वेदों का संरक्षण और वेदमन्त्रों का जो अर्थ एवं ज्ञान है, उसे जनता तक पहुँचाने के लिए प्राचीन ऋषियों ने अनेक उपाय किये जिनमें से इतिहास-पुराणों का लेखन भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि जिनको वेद का ज्ञान नहीं होता, उन सभी शूद्र और अज्ञानी द्विजों का भी कल्याण होना चाहिए, इस भावना से व्यासदेव ने महाभारत की रचना की। उन्होंने महाभारत के द्वारा वेद का अर्थ बताया। इसके द्वारा स्त्री-पुरुष अपने-अपने कर्तव्यों को सम्यक् प्रकार से जान सकते हैं। महाभारत के समान ही वेदार्थ के सम्बन्ध में अन्य पुराणों की भी स्थिति है। वस्तुतः पुराण भारतीय साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं।

*प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, रतनसेन डिग्री कालेज, बाँसी, सिद्धार्थनगर

पुराण साहित्य भारतीय जीवन एवं संस्कृति का प्राण है। इसमें भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराएँ सुरक्षित हैं। धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से पुराणों का महत्त्व उल्लेखनीय है। इनमें तत्कालीन सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थिति का चित्रण हुआ है। वेदों में जिन आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, बौद्धिक, नैतिक, व्यावहारिक, देव जड़ चेतन मनुष्यों के सम्बन्ध में सूक्ष्मरूपेण विधान किया गया है; ब्राह्मण, आरण्यक और स्मृति ग्रन्थों में जिनका प्रतिपादन है, उन समस्त विषयों का पुराणों में आकर्षक, बोधगम्य एवं मनोग्राह्य उपदेशप्रद कथानक रूप में वर्णन किया गया है। पुराणों में केवल आचार-व्यवहार एवं दैनिक कर्मकाण्ड का ही उल्लेख नहीं है, अपितु मानव जीवन के उपयोगी विविध भावों का पूर्ण विवेचन मिलता है। अतः पुराणों के अध्ययन से वैदिक निधियों की सरलता से उपलब्धि हो सकती है। पुराणों के अध्ययन के बिना वेदों का यथार्थ ज्ञान एवं उनके प्रति मानवीय जिज्ञासा की पूर्ति सम्भव नहीं है। यद्यपि वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र तथा योग भाष्य में प्रतिपाद्य आध्यात्मिक निष्ठा द्वारा मुक्ति के लिए सरल उपाय प्रदर्शित कर दिया है, तथापि ज्ञान निष्ठा का पूर्ण परिपालन तो पुराणों में ही हुआ है।

पुराणों की कथाओं द्वारा सरलता से समस्त साधन शीघ्र ही बोधगम्य हो सकते हैं। जैसे- यजुर्वेद के ईशावास्य मन्त्र में मनुष्यता के पूर्ण विकास का साधन निर्दिष्ट किया है, किन्तु केवल मन्त्र पाठ एवं अर्थ ज्ञान से ही वह भावना हृदय में जाग्रत नहीं हो सकती। अतः पुराणों में वर्णित महर्षि दधीचि, राजा शिवि और मोरध्वज की कथाओं के द्वारा उपकार की भावना, सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा महाराज युधिष्ठिर के उपाख्यान से सत्यनिष्ठा, दानवीर बलि और कर्ण के कथानक से दाननिष्ठा, वसिष्ठ, अगत्स्य और च्यवन आदि के कार्यों से अद्रोही निष्ठा, अनसूया, सती, सीता, सावित्री, मदालसा, दमयन्ती, नर्मदा, सुकन्या, सुलोचना आदि सतियों के पवित्र आचरणों से पातिव्रत्य धर्म-परायणता का संचार नर-नारियों में सरलता से हो जाता है। अतः वेद विहित कर्तव्यों को पुराणों में कथात्मक रूप से मनोग्राह्य बनाने के लिए लौकिक और पारलौकिक जीवन को सफल करने के लिए आदेश दिया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सुगम सिद्धि का जो साधन पुराणों में मिलता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता है।

पुराणार्थ को वेदार्थ से महनीय सिद्ध करने के उद्देश्य से जीव गोस्वामी ने अपने तत्त्व सन्दर्भ के उपोद्घात में तीन कारणों का उल्लेख किया है; १. वैदिक साहित्य की जटिलता, २. वेदार्थ की दुरूहता, और ३. वेदार्थ के निर्णय में परस्पर विरोध।

उदाहरण के लिए वैदिक सूत्र के स्वरूप का निर्णय आज भी पदार्थरूपेण नहीं हो पाया है अतएव महर्षि यास्क ने निरुक्त में अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख किया है तथा निर्णय के प्रश्न को खुला ही छोड़ दिया है। इन कारणों से उत्पन्न दुरूहता पुराण में कहीं भी नहीं है। पुराण में न तो दुस्पार है, न उसका अर्थ दुरधिगम है और न उसके निर्णय में मतिभ्रम करने वाली बात है। वेद की भाषा प्राचीन तथा कठिन है, शैली रूपकमयी तथा प्रतीकात्मक है। इसके ठीक विपरीत पुराण की भाषा व्यावहारिक तथा सरल है और शैली रोचक तथा आख्यानमयी है; अतः जनता के हृदय तक धर्म के तत्त्व को सुबोध भाषा के द्वारा पहुँचा देने में पुराण की समानता करने वाला कोई साहित्य नहीं है। स्मृतियों में यद्यपि वेद प्रतिपादित धर्म का ही वर्णन है, परन्तु वे उपदेश प्रधान होने के कारण आकर्षणरहित हैं। परन्तु पुराण अपने उपदेशों को कथा-कहानी, आख्यान-उपाख्यान के रूप में प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जन सामान्य के हृदय को वेद स्मृति की अपेक्षा पुराण के भक्ति-भावपूर्ण पद्य ही अत्यधिक प्रभावित करते हैं। मानव जीवन में प्रधान लक्ष्य ईश प्राप्तिका प्रमुख साधक पुराण ही है। स्वर्ग आदि के मार्गद्रष्टा पुराण हैं। पुराण सर्वश्रेष्ठ साधन योग, कर्म, तन्त्र-मन्त्र, कल्याणकारी सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं; अतः सभी शास्त्रों में पुराणों की गौरव गाथा है।

पुराणों में ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, भक्ति, विश्वास, यम-नियम, दान, तप, सेवा, दया, दाक्षिण्य वर्णाश्रम धर्म, पुरुष धर्म, स्त्री धर्म, सदाचार, अवतारादि कल्याणकारी सदुपदेश, सरस, सुगम, सुरुचिपूर्ण भाषा में लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त भूगोल, खगोल का विवेचन तथा स्थावर-जंगम की सृष्टि का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। पुराणों में उल्लिखित भूमि विवरणों के प्रसंग में अनेक सिद्धिपीठ तथा तीर्थक्षेत्र, वन-पर्वतादि का वर्णन मिलता है। इस प्रकार सर्वोपयोगी पुराणों के अध्ययन की महती आवश्यकता सुस्पष्ट ही है।

"धर्म अर्थ काम मोक्षाणाम् उपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथा युक्तम इतिहास प्रचक्षते।।"

१. वेद के समान ही पुराण भी नित्य हैं।
२. यह पंचमवेद हैं क्योंकि इन्हें पढ़ने का अधिकार अनुपनीत, स्त्री और शूद्रों को भी है।
३. यह श्रुत परम्परा के विपरीत लिखित और ग्रन्थ रूप में थे क्योंकि अध्ययन के विषय थे।

४ यह व्याख्यान रूप में थे और इनकी संख्या अनेक थी।
५ यह स्वाध्याय के अंग थे। अग्नि प्रज्वलित करते समय महापुरुषों के जीवन और कल्याणकारी इतिहास पुराण के पाठ का निर्देश गृह्यसूत्रों में है।
६ महाभारत में वंशानुचरित और देव आख्यानों को पुराण का अविभाज्य अंग माना गया है।
७ पुराण आस्तिकता का प्रसार करते हैं।
८ वेदव्यास ने आरम्भ में १८ पुराणों का प्रणयन किया तदुपरान्त पुराणों के उपबृंहण रूप से महाभारत की रचना की।
९ महाभारत की स्पष्ट सम्मति है कि इतिहास और पुराण के द्वारा इतिहास का उपबृंहण करना चाहिए।
१०. कौटिल्य पुराणों की गणना इतिहास के अन्तर्गत करते हुए पौराणिक सूत और मागध को एक सहस्र पण वेतन देकर नियुक्त करने का राजा को आदेश देता है।
११. धर्म को आधार मानने वाली विधाओं में पुराण अन्यतम हैं और वेदों के समान उपादेय और पवित्र हैं।
१२. देव तथा पितर दोनों की तृप्ति का एकमात्र साधन पुराण है।
१३. मनु के अनुसार श्राद्ध में भी पुराण कथा सुनानी चाहिए। यों भी हिन्दू व्रत, त्योहार, देवकार्य, पितृकार्य पर पुराण का अध्ययन तथा कथा श्रवण करते हैं। ताकि महात्म्य हृदयंगम हो और सुरुचिपूर्वक इतिहास की स्मृति बनी रहे। पुराणों का दावा है कि सर्वशास्त्रों से पहले ब्रह्मा ने पुराण का स्मरण किया। तदुपरान्त उनके मुख से वेद प्रकट हुए।

पुराणों की विषय सामग्री बहुत व्यापक है। इनमें वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, संस्कार, जातिप्रथा, राजवंशों का संक्षिप्त इतिहास, विभिन्न कालों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञात घटनाएँ आदि वर्णित हैं। उपबृंहण की परम्परा के अनुसार पुराणों में समय-समय पर आवश्यक सामग्री तथा व्याख्या जोड़ते जाते थे। जन सामान्य को सनातन परम्परा में प्रशिक्षित करने में पुराणों का बड़ा योगदान है।

सन्दर्भ-

१ मिश्र, गिरिजा शंकर प्रसाद; प्राचीन भारतीय इतिहास-दर्शन तथा इतिहास लेखन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर १९७३; पृ. ४६
२ निरुक्त, ४.६।
३ बृहद्देवता ८.११.१०.१९२।

४ शतपथ ब्राह्मण, १३.४.३.१२।
५ छान्दोग्योपनिषद्, ७.१.२।
६ ऋग्वेद
७ त्रिपाठी, श्रीकृष्णमणि, पुराण तत्त्व मीमांसा १९६१
८ भट्टाचार्य, रामशंकर, पुराणस्थ वैदिक सामग्री का अनुशीलन १९६५
९ चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा, पुराण अनुशीलन
१०. भट्टाचार्य, रामशंकर, इतिहास पुराण का अनुशीलन
११. कविराज, गोपीनाथ, भारतीय संस्कृति और साधना

पौराणिक इतिवृत्त एवं पुरातत्त्व

डॉ. अजय कुमार मिश्र*
राखी रावत**

प्राचीनता को अद्यतन स्वरूप देने की प्रेरणा के कारण ही पुराणों की महत्ता वेदों से अधिक बतायी गयी है।[१] पुराण प्रणयन का लक्ष्य मात्र धर्माचरण का नियमन एवं आदर्श स्थापन ही नहीं था अपितु उसके मूल में भारतीय मनीषा प्रदत्त विद्याओं एवं मूल्यों का यथासमय समुचित संग्रह, प्रकाशन तथा सामयिक परिप्रेक्ष्य में कलेवर निर्धारण की अवधारणा आदि भी सन्निहित थे। यही कारण है कि पुराणों के वर्ण्य विषय के आधार धर्म एवं दर्शन के अतिरिक्त राजनीति शास्त्र, समाज व्यवस्था, इतिहास, ज्योतिष एवं शिल्पशास्त्र आदि भी थे। सहजभाष्य एवं बोधगम्य शैली में संरचित पुराण जनसंस्कृति के द्योतक होने के कारण ऐतिहासिक उपादेयताओं से भरपूर हैं। स्कन्दपुराण में 'पुराणमखिलम् सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्' तथा मत्स्यपुराण में 'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथम ब्राह्मणां स्मृतम्' आदि वाक्यों में इसी तथ्य का प्रतिबिम्बन किया गया है।

पुराण संस्कृत वाङ्मय के आकर ग्रन्थ हैं। प्राचीन भारतीय विद्या को सुरक्षित एवं संग्रहित करने के कारण ही इन्हें विश्वकोष कहा गया। भारतीय समाज विशेष रूप से ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी से आज तक प्रधानतया पुराणसम्मत धार्मिक मान्यताओं से अनुप्राणित रहा है। इससे पौराणिक साहित्य एवं उसमें अन्तर्निहित मूल्यों एवं मान्यताओं की जीवन्तता का बोध होता है। पुराणों में वर्णित सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित, मन्वन्तर आदि का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में होने पर भी मूल तथ्य से सम्यक संपृक्त है। पुराणों की इन्हीं विशेषताओं के कारण छान्दोग्योपनिषद् में इन्हें 'पंचमवेद' की संज्ञा से सम्बोधित किया गया।[२] पुराणों में प्रामाण्य को सतत अक्षुण्ण बनाये रखने का विशिष्ट प्रयास किया गया है। फलतः इनमें अनेककालिक सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिवर्तनों के अनुरूप कथावस्तु में संशोधन एवं परिवर्धन किया गया।

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के स्रोतभूत ग्रन्थों में पुराणों का अपना विशिष्ट स्थान है। धर्म, दर्शन एवं समाज से सम्बन्धित इसमें अनेक तत्त्व तो मिलते ही हैं इसके अतिरिक्त राजनीतिक इतिहास की दिशा में भी इनके उल्लेख प्राचीन भारत के उस युग के लिए उपादेय सिद्ध हो चुके हैं जिसे गुप्तकाल की संज्ञा दी जाती है। परम्परानुसार पुराणों के पाँच लक्षण गिनाये जाते हैं।

आधुनिक अनेक विद्वानों को अतीतकालीन ऐतिहासिक तथ्यों के अंकनार्थ पौराणिक साक्ष्य विशेष स्वीकार्य नहीं है क्योंकि अधिकांशतया इनकी पुष्टि पुरातात्त्विक साक्ष्यों से नहीं हो सकी है। इस सन्दर्भ में बुली का मत सन्दर्भित किया जा सकता है कि पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अभाव में पुराणादि साहित्यिक साक्ष्यों का ऐतिहासिक महत्त्व नहीं माना जा सकता है। ह्वीलर ने भी कभी यह मत व्यक्त किया था कि पुरातात्त्विक साक्ष्यों की सम्पुष्टि के लिए साहित्यिक साक्ष्यों का पर्यवेक्षण यथेष्ट इतिहास ज्ञान में बहुत बड़ा खतरा है।[३] पिगट ने ह्वीलर के दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट करते हुए केवल पुरातात्त्विक साक्ष्यों से सम्पुष्ट साहित्यिक साक्ष्यों को ही इतिहास के लिए ग्राह्य बताया है।[४] डी.डी. कोशाम्बी ने प्राच्य इतिहास एवं संस्कृति के ज्ञान के लिए पुरातात्त्विक साक्ष्यों को ही पर्याप्त साधन माना है।[५] ए.एल. वाशम ने तो पुराणों की ऐतिहासिक महत्ता को स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया है।

इसके विपरीत आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. एच.डी.संकालिया ने पुरातात्त्विक संकेतों एवं पौराणिक साक्ष्यों में तालमेल की बात स्वीकारी है। उनकी धारणा है कि इन साक्ष्यों की लगभग वही स्थिति है जो मिस्र के सन्दर्भ में 'मनेथो' एवं मेसोपोटामिया के सन्दर्भ में 'वेरोसस' के विवरणों में दिखाई देती है। पौराणिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों की समवेत समीक्षा से जो कुछ भी ऐतिहासिक तथ्य उद्घाटित हो सके हैं उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण हैं।

जिन उपकरणों का पुरातत्त्वविदों ने मालवा मृदभाण्ड की संज्ञा दी है उससे पूरी नर्मदाघाटी व्याप्त थी। इसका निर्मातृ एवं प्रयोक्तृ सम्बन्ध यादवों की हैहेय शाखा से माना गया है जिनका विशद उल्लेख पुराणों में हुआ है। पौराणिक कालक्रम गणना विधि के अनुसार इनका समय लगभग १८०० ई. पूर्व स्वीकार किया जाता है। पुरातत्त्वविदों ने यही समय मालवा मृदभाण्ड संस्कृति के लिए प्रस्तावित किया है। पुरातत्त्व एवं पौराणिक सामंजस्य के सम्बन्ध में उस पौराणिक उल्लेख की भी चर्चा की जा सकती है जिसके अनुसार द्वारका नगर का समुद्र में आप्लावन हुआ था। अल्टेकर[६] की धारणा है कि इस पौराणिक ज्ञान का समर्थन पुरातात्त्विक स्रोतों से भी सम्भावित है। आधुनिक द्वारका नगर के निचले हिस्से से हड़प्पा के संकेतक साक्ष्यों की आशा की जा सकती है।

इस सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य उस पौराणिक उल्लेख को माना

*एसो. प्रोफेसर, प्रा०इतिहास, बी.आर.डी.पी.जी.कालेज, बरहज, देवरिया
**शोध छात्रा, प्रा०इतिहास, बी.आर.डी.पी.जी.कालेज, बरहज, देवरिया

जा सकता है जिसके अनुसार हस्तिनापुर के गंगा नदी द्वारा आप्लावित होने पर इस नगर से राजधानी कौशाम्बी में स्थानान्तरित की गयी थी।[७] हस्तिनापुर के पुरातात्त्विक उत्खनन में प्रो. बी.बी. लाल को प्राथमिक स्तरों से जो साक्ष्य उद्घाटित हुए वे इस नगर को बाढ़ द्वारा आप्लावित होने का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में यह स्पष्ट किया गया है कि अधिसीम कृष्ण के पुत्र थे। निचक्षु ने 'नागसाह्य' के गंगा द्वारा अपहृत होने पर सन्निवेश कौशाम्बी में स्थानान्तरित किया था। विष्णुपुराण में नागसाह्य के स्थान पर हस्तिनापुर पाठ मिलता है। इस प्रकार पुराणों में 'निचक्षु' एवं 'नृचक्र' दोनों पाठ मिलते हैं। दोनों ही शब्द पुराणों के प्रति संस्करणकर्ताओं की भ्रान्ति का परिणाम है। मूल और सही शब्द 'नृचक्षस' प्रतीत होता है जिसका उल्लेख ऋग्वेद (१०.१४.११) में भी प्राप्त होता है। पुरातात्त्विक उत्खननों एवं सर्वेक्षणों के फलस्वरूप उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक में पुराणादि साहित्यिक साक्ष्यों की ऐतिहासिक समीक्षा अतीव आवश्यक है। दोनों कोटि के साक्ष्यों के तुलनात्मक परीक्षण के आधार पर ही हम प्राचीन भारतीय इतिहास की सच्ची रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं। रोमिला थापर ने पुराणों में आख्यात राजवंश वृतान्त को इतिहास की तथ्यगत सूचना न मानकर उनकी महत्ता केवल इस अर्थ में स्वीकारना यथेष्ट बताया है कि इन वृतान्तों से प्राचीन भारतीय जनसन्निवेशों की स्थिति, विकास प्रक्रिया एवं उनके विभिन्न क्षेत्रों में विस्तारक्रम आदि का ज्ञान अवश्य होता है। परन्तु थापर का उक्त मत एकान्तिक प्रतीत होता है क्योंकि पुराणोक्त शासकों के नाम, कालक्रम एवं वंशावलियाँ बहुत कुछ तथ्यात्मक इतिहास प्रतीत होती हैं। इन विवरणों की पुष्टि अब अन्य साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी की जा सकती है।

पुसाल्कर एवं अल्टेकर की मान्यता है कि हड़प्पा संस्कृति का कर्तृत्व सम्बन्ध 'पणि' जाति से स्थापित किया जा सकता है। ऋग्वेद भी 'पणि' जाति से परिचित है।[८]

हड़प्पा संस्कृति के अवशेष घग्घर अर्थात् प्राचीन सरस्वती नदी की घाटी से प्राप्त हुए हैं जो आर्यों के सांस्कृतिक एवं भौतिक क्रिया-कलाप की प्राथमिक क्षेत्रस्थली मानी जाती है। इसी क्षेत्र में सुप्रसिद्ध दाशराज्ञ युद्ध भी हुआ था। यहाँ यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि दाशराज्ञ युद्ध तथा इस प्रकार के आर्यों के अन्य युद्धों में पणियों ने भाग लिया था। वस्तुतः आर्यों ने न तो सैन्धव क्षेत्र को विजित किया और न ही पणियों को इस क्षेत्र से निष्कासित किया था अपितु इसके विपरीत एक ही क्षेत्र में ये विविध समूह निवास कर रहे थे। पौराणिक

साक्ष्यों से भी ज्ञात होता है कि आर्यों के अनेक सत्ता क्षेत्रों से सीमान्तवर्ती क्षेत्रों में अनेक आर्येतर जातियों के सन्निवेश विद्यमान थे जिन्हें पौराणिक साहित्य में नाग, असुर, राक्षस आदि नाम प्रदत्त हैं। पुरातात्त्विक शोधों से भी स्पष्ट हो चुका है कि हड़प्पा संस्कृति सैंधव क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी अपितु इसका प्रसार भारत के अन्तर्भाग में अन्य प्रदेशों तक हो चुका था। इन क्षेत्रों में रूपड़ एवं वारा (पूर्वी पंजाब), आलमगीरपुर तथा काठियावाड़ प्रदेशों का उल्लेख किया जा सकता है। यह सम्भव है कि पौराणिक साहित्य में वर्णित नाग, राक्षस आदि के सन्निवेश का तात्पर्य इन्हीं भू-क्षेत्रों से रहा हो जो भारतीय पुरातत्त्व की परिभाषा में हड़प्पा संस्कृति के अवस्थान मान्य हैं। पौराणिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए जिस विशेष प्रकार के पुरातन उपकरण का हम उल्लेख कर सकते हैं उन्हें पुरातात्त्विक पदावली में तामास्त्र की संज्ञा देते हैं जो गैरिक मृदभाण्ड के साथ अनेक स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इन उपकरणों का सर्वाधिक केन्द्रीयकरण गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी रही है जिसे पौराणिक साहित्य में आर्यावर्त अथवा मध्यदेश की संज्ञा प्रदान की गयी है।[९] प्रो. संकालिया तथा बी.बी. लाल आदि पुरातत्त्वविदों ने इन उपकरणों का कर्तृत्व एवं निर्मातृ सम्बन्ध आर्यों से विशेषतया भारतवंशीय नृपतियों से माना है।[१०] इन विद्वानों ने यह सम्भावना जतायी है कि इनका सम्बन्ध महाभारत युद्ध के शूरवीरों से था। इस प्रकार स्पष्ट है कि पौराणिक इतिवृत्ति की पुष्टि अब पुरातात्त्विक स्रोतों से भी होने लगी है। ☐

सन्दर्भ-

१. वेदार्थादधिकं मन्येपुराणार्थवरानने - नारदीयपुराण २/२४/१७।
२. छान्दोग्योपनिषद् - ७.१.२।
३. एण्शैण्ट इण्डिया न-३, पृ. ८१-८२
४. स्टुअर्ट पिगट्- प्री हिस्टारिक इण्डिया, पृ. २४१
५. डी.डी. कोशाम्बी- इण्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. ४७-४८
६. टाइम्स ऑफ इण्डिया, जून १९६३ में प्रकाशित अल्टेकर का लेख
७. अधिसीम कृष्णपुत्रो निचक्षुर्भविता नृपः गंगयाऽपहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्व्ये। त्यक्त्वा निचुर्नगरं कौशाम्ब्यां स निवंत्स्यति तथा, यो गंगयाऽपहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवंत्स्यति - विष्णुपुराणांश, अ.-२१
८. प्रोसिडिंग्स ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस २२, पृ. २०-२१
९. मार्टिमर ह्वीलर- अर्ली इण्डिया एण्ड पाकिस्तान; पृ. १२९, इण्डियन आर्किलॉजिकल रिव्यू १९५३-५४
१०. एच.डी. संकालिया, वही पृ.२७९

पुराणों का वैदिक धरातल

स्वेजा त्रिपाठी*

वेद और पुराण के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके प्रामाण्य का विचार पुराणग्रन्थों में तथा दर्शन-ग्रन्थों में पाया जाता है। पुराण में वेदार्थ का विस्तार अनेकशः प्रतिपादित किया गया है। श्री जीवगोस्वामी ने 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है- 'पूरणात् पुराणम्'; अर्थात् जो पूरण करता है वह 'पुराण' कहलाता है। इस व्युत्पत्ति का अर्थ अतिशय गम्भीर है। लोक में यह बहुशः अनुभूत है कि जिसके द्वारा किसी वस्तु का पूरण किया जाता है, उन दोनों में एकरसता अनन्यता रहती है। यदि सोने के अपूर्ण कंगन को पूर्ण करने का अवसर आता है, तो यह पूरण सोने के ही द्वारा किया जा सकता है, लाह के द्वारा तो कभी नहीं, क्योंकि सोना और लाह दो भिन्न जातीय पदार्थ हैं। वेद और पुराण का भी सम्बन्ध इसी प्रकार का है। वेद के अर्थ का उपबृंहण या पूरण भेदभिन्न वस्तु के द्वारा कभी नहीं किया जा सकता। इस व्युत्पत्तिलभ्य युक्ति से पुराण का वेदत्व सिद्ध होता है।[१]

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड का कथन[२] है कि "सृष्टि के आदि में देवों के पितामह ब्रह्मा ने उग्र तप किया जिसके फलस्वरूप षडंग पद तथा क्रम से सम्पन्न वेदों का आविर्भाव हुआ, जो नित्य शब्दमय, पुण्यदायक और विस्तार में एक सौ करोड़ श्लोकों वाला है।" यह पुराण भी वेद के समान ही ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में भी यह बात प्रकारान्तर से कही गयी है। भागवत का कथन[३] है कि "ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व ब्रह्मा के पूर्वादि मुखों से क्रमशः उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने पंचवेदरूप इतिहास-पुराण को अपने चारों मुखों से उत्पन्न किया।" यहाँ इतिहास पुराण के लिए साक्षात् रूप से 'वेद' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह तथ्य पुराण की वेदरूपता ही प्रकट नहीं करते प्रत्युत बृहदारण्यक उपनिषद् (२/४/१०) ने बहुत पहले ही वेदों के सदृश ही इतिहास और पुराण को महान भूत ब्रह्मा का निःश्वास होने की बात कही है।[४] फलतः पुराण वेद के सदृश ही स्वतः प्रमाण हैं। 'बृहन्नारदीयपुराण' में बताया गया है कि श्रीरघुनाथचरित रामायण की तरह सभी पुराण शतकोटिप्रविस्तर हैं-

"हरिर्व्यासस्वरूपेण जायते न युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।।
तद्दष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके निर्दिशत्यपि।
अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम्।।"

इससे भूलोक में चार लाख का तथा देवलोक में सौ करोड़ का विस्तार पुराणों का जानना चाहिए। 'वेद' की ही तरह 'पुराण' भी अनादि हैं क्योंकि वेदों की ही तरह व्यासरूपधारी भगवान् के द्वारा इनका भी आविर्भाव सुना जाता है। तभी तो इतिहास-पुराणों का 'वेदोपबृंहकत्व' उपपन्न है। पूरण करने के कारण ही इसका नाम पुराण है-"पूरणाच्च पुराणम्"।

वेद, पुराण अनादि हैं; दोनों ही प्रतिकल्प में आविर्भूत होते हैं। इन अंशों में समानता होने पर भी स्वर और क्रम के वैलक्षण्य से ही परस्पर भेद उपपन्न है। उसी पुराण में एकादशी के व्रत के प्रंसग को बताया गया है कि एकादशी व्रत वेद में वर्णित नहीं है, अतः वैदिक को वह नहीं करना चाहिए। वेद में जो स्पष्ट रूप से उपलब्ध नहीं होता, वह भी पुराणोक्त होने से ग्राह्य है ही, क्योंकि वेद में ग्रह-संचार, कालशुद्धि, तिथियों की क्षय-वृद्धि और पर्व, ग्रह आदि का निर्णय नहीं किया गया। परन्तु इतिहास, पुराणों के द्वारा यह निर्णय पहले से ही किया हुआ है। जो बात वेदों में नहीं मिलती, वह स्मृतियों में लक्षित हो जाती है, जो दोनों में नहीं उपलब्ध होती, उसका वर्णन पुराणों में मिल जाता है। शिवजी पार्वती से कहते हैं कि मैं वेदार्थ की अपेक्षा पुराणार्थ को विशद मानता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराण में वेद अच्छी तरह प्रतिष्ठित हैं-

"न वेदे ग्रहसञ्चारो न शुद्धि कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि न पर्वग्रहनिर्णयः।।
इतिहासपुराणैस्तु कृतोऽयं निर्णयः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ।।
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।
वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सम्यक् पुराणे नात्र संशयः"[५]

कहीं तो श्रुति स्मृति को दो नेत्र और पुराण को हृदय बताया गया है। एक नेत्र से हीन मनुष्य काना और दोनों से हीन अन्धा कहा गया है, परन्तु पुराण से हीन मनुष्य हृदयशून्य है, काने और अन्धे उनकी अपेक्षा कहीं अच्छे हैं-

*संस्कृत विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

"श्रुतिस्मृति उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एकेन हीनः काणः स्याद् द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः॥
पुराणहीनाद् हृच्छून्यात्काणान्धावपि तौ वरौ॥"

पुराणों का भी नित्यत्व और आविर्भूतत्व पुराणों में सुना जाता है; अतः उन्हें भी सर्वथा अपौरुषेय ही क्यों न माना जाय? परन्तु यह बात नहीं कही जा सकती है, क्योंकि 'श्रीमद्भागवत' आदि में समाधि के द्वारा अर्थ को प्राप्त करके विरचित्व श्रुत है, अतः यहाँ दृढ़ कर्तृस्मरण सम्भव है। वेदोपबृंहक पुरुषार्थ के, जो अनादि परम्परागत है, अनादि होने पर भी आदि के द्वारा उनकी अभिव्यंजक वर्ण-पद-वाक्यानुपूर्वी का अर्थोपलब्धिपूर्वक विरचितत्व होने से भेद भी सम्भव है। परन्तु वेद में यह बात नहीं है, वहाँ तो पुरुष-बुद्धिपूर्वकरचितत्व का अभाव होने से आनुपूर्वी भी प्रत्येक कल्प में एकरस होती है। यह भी पुराणों की अपेक्षा वेदों का वैलक्षण्य है। इसीलिए पुराणों को स्मृतियों की कोटि में गिना गया है- 'स्मरन्ति च', 'स्मर्यतेऽपि च लोके', 'स्मर्यतेऽपि च लोके'।

पुराण के प्रामाण्य विषय में तार्किकों का मत इससे नितान्त पृथक् है। पुराण का प्रामाण्य दर्शनकारों ने विशेष रूप से विवेचित किया है। वेद का प्रामाण्य तो स्वतः सिद्ध माना जाता है। वेद का जो भी कथन है वह प्रामाण्य से सम्पन्न है। वेद के कथन को मीमांसकों ने दो भागों में विभक्त किया है- १. विधि, २. अर्थवाद।

अर्थवाद से तात्पर्य उन प्रशंसात्मक वाक्यों से है जिनमें किसी अनुष्ठानविशेष की स्तुति की गयी है। मीमांसा के अनुसार विधि ही वेद-वाक्यों का परिनिष्ठित तात्पर्य है; अर्थवाद तो विधिवाक्यों का अंगभूत होकर अपना प्रामाण्य धारण करता है एवं वेद स्वतः प्रामाण्य है। स्मृति का प्रामाण्य वेदमूलक है।

पुराण के प्रामाण्य के विवेचन के अवसर पर वात्स्यायन का कथन है[६] कि "मन्त्रब्राह्मण के जो द्रष्टा तथा प्रवक्ता ऋषि-मुनि हैं वे ही इतिहास पुराण तथा धर्मशास्त्र के भी द्रष्टा-व्याख्याता हैं। अर्थात् द्रष्टा तथा व्याख्याता की दृष्टि से साहित्य के इन तीनों अंगों में समानता का ही भाव विद्यमान है। तब इनका प्रामाण्य भी क्या एक ही प्रकार का है? वात्स्यायन का उत्तर है-नहीं, इन तीनों के विषय पृथक् रूप से व्यवस्थित हैं और उन्हीं के प्रतिपादन में इनका विषयानुसार प्रामाण्य है। मन्त्रब्राह्मण का विषय है यज्ञ। इतिहास-पुराण का विषय है लोकवृत्त। धर्मशास्त्र का विषय है लोक व्यवहार का व्यवस्थापन। फलतः वात्स्यायन की दृष्टि में इन विशिष्ट विषयों में ही इन ग्रन्थों का प्रामाण्य है।"

पुराण प्रामाण्य पर शंकराचार्य का मत है- 'समूलमितिहासपुराणम्'; अर्थात् इतिहास और पुराण समूल है, निर्मूल नहीं। और इस तथ्य की सिद्धि के लिए उन्होंने अनेक युक्तियों और तर्कों का प्रदर्शन किया है। देवों का विग्रह तथा सामर्थ्य के विषय में शंकराचार्य कहते हैं कि इतिहास पुराण का कथन मन्त्र तथा अर्थवादमूलक सम्भावित हो तो वह भी देवताओं के विग्रह को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है।

पुराणों में वैदिक अनुष्ठान का ही महत्त्व है, जो सामान्य जनता के जीवन के साथ सम्बन्ध रखते हैं। श्रौत-यज्ञों का वर्णन अप्रासंगिक होने से विशेष उपलब्ध नहीं है, परन्तु गृह्य-यज्ञों का देवों की बलि, पूजन तथा हवन का प्रसंग ही प्रचुरतया उपलब्ध होने से तत्तत् प्रसंग में वैदिक मन्त्रों का बहुशः उल्लेख किया गया है, कहीं प्रतीकरूप से और कहीं पूर्णरूप से।

स्कन्दपुराण में वेद-विषयक विपुल सामग्री उपलब्ध होती है।[७] जिसमें वेद की महिमा के प्रतिपादन के साथ-साथ वेद के अध्ययन की रीति का भी सुस्पष्ट वर्णन है। वेदाभ्यास केवल पठन मात्र से सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत उसमें अर्थविचार, अभ्यास, तप तथा शिष्यों का अध्यापन भी क्रमशः उद्धृत है-

"श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात् स्वीकारोऽर्थविचारणम्।
अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम्।।"[८]

वैदिक सूक्तों तथा उपनिषदों के नाम का उल्लेख इस पुराण में बहुशः मिलते हैं। इस पुराण के विभिन्न खण्डों में पचासों वैदिक मन्त्र प्रतीक रूप से ही तत्तत् स्थलों पर पूजा, जप आदि के प्रसंग में उद्धृत किये गये हैं। कतिपय मन्त्रों का निर्देश इस प्रकार है-

१. शन्नो देवी। २. आपो ज्योतिः। ३. चित्रं देवानाम्। ४. मधुण्वाता। ५. अग्निमीडे। ६. नमो वः पितरः। ७. आपो हि ष्ठा। ८. उद्वयं तमसस्परि। ९. सुमित्रिया नः। १०. मा नस्तोक तनये।

मत्स्यपुराण में नाना-वैदिक विधान-अनुष्ठानों का विस्तृत विवरण है, जिसमें वैदिक मन्त्रों का प्रयोग पद-पद पर किया गया है।

वैदिक मन्त्रों के अनन्तर पौराणिक मन्त्रों का पूर्ण उल्लेख उद्धृत है-

"सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते॥"[९]

श्रीमद्भागवत में वैदिक सूक्त तथा मन्त्रों की उपलब्धि इतर पुराणों की

अपेक्षा कहीं अधिक है। भागवत के रचयिता वेद के मूर्धन्य ज्ञाता और प्रकाण्ड पण्डित थे। भागवत की प्रशंसा में इस तथ्य का उल्लेख है कि भागवत सब वेदान्त का सार है-

"सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।" □

सन्दर्भ-

१. इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। इति पूरणात् पुराणमिति चान्यत्र न चावेदेन वेदस्य बृंहणं सम्भवति, नहि अपूर्णस्य कनकवलयस्य त्रपुणा पूरणं युज्यते॥
भागवत सन्दर्भ, पृ. १७ (कलकत्ता सं.)

२ यदा तपश्चचारोग्रममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः सषडंगपदक्रमा।
ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्।
निर्गतं ब्रह्मणो वक्त्रात......................॥

३ इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥ श्रीमद्भागवत, ३/१२

४ एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेद, सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहास पुराणम्। बृ.उ. २/४/१०

५ पुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय २४

६ "य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्यश्च शास्त्रस्य चेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यं। यज्ञो मन्त्रस्य ब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः।"
('समारोपणादात्यन्यप्रतिवेद्यः' न्यायसूत्र ४/१/६२- वात्स्यायन)

७ डॉ. रमाशंकर भट्टाचार्य; इतिहास-पुराण का अनुशीलन; पृ.२३८ (काशी १९६३)

८ स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, उत्तरभाग ५/१४

९ मत्स्यपुराण, अध्याय १२ ।

पुराण-परिचय

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा*

पुराण प्राचीन भारतीय वाङ्मय का अक्षय निधान हैं, जो तत्कालीन व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन-धारा को समझने में सहायक हैं। सामान्यतः पौराणिक आख्यानों को कपोल-कल्पित एवं कल्पनाजन्य माना जाता है किन्तु पौराणिक-कथानकों का गूढ़ अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि पुराण की साधारण कथाएँ भी अपने आप में गूढ़ सिद्धान्तों एवं सच को समाहित किये हुए हैं। पण्डित माधवाचार्य का 'पुराण दिग्दर्शन' एवं महामहोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी 'पुराण-परिशीलन' पौराणिक सिद्धान्तों के सच को दर्शाते हैं। डॉ. सिद्धेश्वरी नारायण राय ने काशीराज न्यास द्वारा प्रकाशित 'पुराणम्' पत्रिका, जिल्द ५ में 'डेट ऑफ ब्रह्माण्ड पुराण' नामक लेख में विभिन्न तार्किक प्रमाणों के आधार पर 'ब्रह्माण्ड पुराण' की तिथि निर्धारित की है। डॉ. उद्धव लाल चतुर्वेदी ने 'ब्रह्माण्ड पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन' नामक पुस्तक में ब्रह्माण्ड पुराण का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया है। अनेकानेक विद्वान पुराणों का अध्ययन कर लेखन कार्य कर रहे हैं जो शोध-जगत् में नये आयाम को प्रस्तुत करेंगे।

साररूप में पुराण-साहित्य तत्कालीन दृष्टिकोणों का समन्वयन एवं संस्कृतियों का सामाजिक जीवन में प्रत्यंकन है। संस्कृत साहित्य में 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। अथर्ववेद के सायण भाष्य में उल्लिखित है- "पुराणं पुरातन वृत्तान्त कथन रूपमाख्यानम्।"[१] छान्दोग्य उपनिषद्[२] भी इस कथन की पुष्टि करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् के लिए पुराण शब्द का प्रयोग किया गया है-

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥[३]

वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण में पुराण शब्द 'पुराणशास्त्र' का बोधक है।[४] यह पौराणिक-साहित्य अक्षय ज्ञान का भण्डार है, जिसमें ज्ञान, विज्ञान, लोकव्यवहार, समाज एवं संस्कृति के समस्त पक्षों की विवेचना है। व्याकरण की दृष्टि से पुराण

*एसो. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास पुरा.एवं संस्कृति विभाग, रा.मो.ग.पी.जी. कालेज, फैजाबाद

शब्द का अर्थ होता है-पुरानी घटनाओं अर्थात् अत्यन्त प्राचीन काल में जो कुछ हुआ उसे पुराण कहते हैं।[५] यास्क ने 'पुरा' इस अव्यय को पूर्व में रखकर 'नु' धातु से पुराण शब्द को सिद्ध किया है। आपके अनुसार "पुराणं कस्मात्? पुरानवं भवति।"[६] अर्थात् जो अत्यन्त प्राचीनकाल में नया था, वह पुराण है। मधुसूदन लिखते हैं- "विश्वसृष्टेरितिहासः पुराणम्।"[७] अतः पुराण शब्द पुरातन के साथ-साथ विश्व-सृष्टि इतिहास रूप अर्थ में भी परिभाषित है। जो वस्तु आज प्राचीन है वह अपने उद्‌भवकाल में नवीन थी; अर्थात् जो सृष्टि के आरम्भ में नवीन था किन्तु आज प्राचीन हो गया है, वह पुराण है।

मानव-जीवन काल, कलाओं से आवृत्त है। वह सृष्टि के आदि में न था, न प्रलय-काल में रहेगा। सृष्टि और प्रलय का प्रवाह आदि-अनन्त रूप से प्रवाहित हो रहा है। इसके पूर्व या प्रारम्भिक निर्माता कौन थे? उनके क्या-क्या नाम थे? उन्होंने क्या कार्य किये? सृष्टि के, सभ्यता के विकास में उनका क्या योगदान रहा? यह सभी तथ्य पुराणों से ज्ञात होते हैं। इसी तथ्य को लेकर पुराण का लक्षण करते हुए ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लिखित है-

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणम् पंचलक्षणम्॥"[८]

अर्थात् पुराण एक पारिभाषिक शब्द है। पुराण उन ग्रन्थों को कहते हैं जिनमें सर्ग (ईश्वरीय कृति), प्रतिसर्ग (सृष्टि और प्रलय), वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित इन पाँच विषयों का समावेश रहता है।[९] यद्यपि पुराणों में परस्पर शैली और भाषा का सामन्जस्य है; किन्तु वर्ण्य-विषयों की विशेषता से विषमता भी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हें पुराण, उपपुराण और महापुराण में विभाजित किया गया है।

भारतीय मान्यता पुराणों को वेदों की प्रतिछाया सिद्ध करती है। अथर्ववेद[१०] के अनुसार यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए हैं। लगभग सभी पुराण यह घोष करते हैं कि पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे, पुराणों के बाद ही ब्रह्मा के मुख से वेद निकले- "पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्, अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिः सृताः।" इसकी पुष्टि प्रो. शिवाजी सिंह के पुराणान्तर्गत इतिहास कार्यशाला १४ मार्च २०१० के उद्‌घाटन भाषण के सम्पादित अंश 'ऐतिहासिक सामग्री के अक्षय भण्डार : पुराण' की इन पंक्तियों से होती है- "पुराण हमें वेदों से प्राचीनतर ले जाते हैं जैसे ऋग्वेद में मान्धाता को प्राचीनतम शासकों में गिना गया है जबकि पुराणों में मान्धाता के पूर्व की २०

पीढ़ियों का वर्णन है।"...........

आचार्य कौटिल्य ने इतिहास की परिभाषा निम्नवत की है-

"पुराणम् इतिवृत्तम् आख्यायिका उदाहरणम्।
धर्मशास्त्रम्, अर्थशास्त्रम् चेति इतिहासः॥"[११]

अर्थात् पुराण, रामायण, महाभारत आदि इतिहास, आख्यायिका, उदाहरण, मीमांसा आदि मन्वादि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र इन्हें इतिहास ही समझना चाहिए। पौराणिक सूत्रों के कथनानुसार तत्त्वज्ञ वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की रचना की। वस्तुतः आदिकाल में वेद की भाँति "पुराणमेकमेवासीत्" अर्थात् पुराण एक ही थे; कालान्तर में पुराणों का विभाजन सूत्रों द्वारा हुआ।

पुराण मानव जीवन के हर पहलू को सँवारने में उपयोगी हैं। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुराण समाज को प्रेरणाशक्ति प्रदान करते हैं; इनमें राष्ट्रीय जीवन का उदात्त उत्साह निहित है। लोकचेतना, लोकरुचि और लोकहित की भावना से प्रेरित होकर ही पुराणों का प्रचलन किया गया। पौराणिक आदर्शों को अपनाकर चलने वाला समाज सदैव प्रशस्त और जागरूक रहा है। समाज के अन्तर्बाह्य कलेवर को शुद्ध बनाकर 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' के निकट पहुँचाने की सामर्थ्य पुराणों में अब भी है जिनके उपयोग की कला हम सभी को सीखनी चाहिए। ☐

सन्दर्भ-

१. अथर्ववेद, सायण भाष्य, ११/४/९/२४
२. छान्दोग्य उपनिषद्, ७/२
३. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, अध्याय ८, श्लोक ९
४. वायु पुराण, १/२०२ - "यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।"
५. हलायुध कोष, पृ. ४३८
६. निरुक्त, ३.९/२४
७. कल्याण, ३/१.२
८. ब्रह्माण्ड पुराण, १/१/१/३८
९. वायु पुराण, आमुख
१०. अथर्ववेद, ७१/७/२४
११. अर्थशास्त्र, १/५.

शैव धर्म से सम्बद्ध देवियाँ पुराणों के सन्दर्भ में

डॉ. रत्न मोहन पाण्डेय*

शैव धर्म से सम्बन्धित देवियों की अवधारणा का प्रारम्भिक रूप शिव की पत्नी उमा अथवा पार्वती हैं जो जगज्जननी कही जाती हैं, वस्तुतः उनका तान्त्रिक और दार्शनिक विकास शक्ति के रूप में हुआ है। शिव एवं शक्ति की अभिन्नता का उल्लेख पुराणों में हुआ है, शक्ति में सभी देवताओं की दिव्यता समाहित थी तथा सभी देवताओं के तेज पुंज से शक्ति की उत्पत्ति हुई थी। शक्ति के रूप में विकसित होकर पार्वती अन्य रूपों को ग्रहण करते हुए दर्शायी गयी हैं; शैव धर्म से सम्बद्ध देवियों शिवा, उमा, पार्वती, शैलपुत्री, रुद्राणी आदि नाम शक्ति के रूप में तत्कालीन धर्म एवं साहित्य में मिलते हैं; शिव उमापति थे। मत्स्यपुराण के वर्णन के अनुसार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने के निमित्त उमा के शरीर से देवी की उत्पत्ति हुई थी।[१] वर्तमान में हम यहाँ कुछ प्रमुख शैव धर्म से सम्बन्धित देवियों का उल्लेख करेंगे।

शिवा– शिवा शिव की पत्नी हैं, यह भक्तों को महान सुखों को प्रदान करने वाली हैं; इन्हें रूप सौन्दर्य, सुख, प्रतिष्ठा, स्वर्ग, दिव्य देने वाली देवी बताया गया है। इनके स्वरूप का वर्णन इनकी स्तुति के अन्तर्गत मिलता है जो उदय काल के सूर्यमण्डल की-सी कान्ति धारण करने वाली है। उन शिवा देवी का मैं ध्यान करता हूँ, जिनकी चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय की मुद्रा धारण किये रहती हैं।[२] देवी भागवत में[३] शिवा को अखिल ब्रह्माण्ड एवं जीव दोनों को उत्पन्न करने वाला बताया गया है; इनके दर्शन को दुर्लभ बताया गया है, उदार चेतना वाले पुण्यात्मा और तपस्विनी को ही इनका दर्शन मिल सकता है। वामन पुराण में शिवा का उल्लेख शिव पत्नी के रूप में मिलता है।[४] भविष्य पुराण में शिव चतुर्थी को इनके पूजन का उल्लेख मिलता है; भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शिवा है, इसमें इन्हें सदा सुख स्वरूप, महान सुखों को देने वाली अत्यन्त सौभाग्य करने वाली मांगलिक एवं रूप सौन्दर्य देने वाली देवी कहा गया है।[५]

उमा– 'उमा' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम केनोपनिषद् में हुआ है, जहाँ इन्हें 'विद्यादेवी' का रूप मानते हुए 'हेमवती' (हिमालय की पुत्री) कहा गया है।[६] तैत्तिरीय आरण्यक में रुद्र को अम्बिका पति तथा उमापति कहा गया है।[७] शिव पुराण की रचना में कुल सात खण्ड हैं, उनमें एक उमा संहिता है। उमा का प्रादुर्भाव देवताओं को यह शिक्षा देने के लिए हुआ है कि अपनी तुच्छ शक्ति के ऊपर उन्हें कभी गर्व और अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि सर्वशक्तिमान परब्रह्म की शक्ति के वे प्रतीक मात्र हैं। उसी परब्रह्म के निर्देशन में रहकर ही वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सकने में समर्थ होते हैं, अतः हेमवती विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी है।

वायु पुराण में उल्लिखित है कि उमा के क्रोध से भद्रकाली उद्‌भूत हुई थी।[८] मत्स्यपुराण के वर्णन के अनुसार देवताओं के कार्य सम्पन्न करने के निमित्त उमा के शरीर से देवी की उत्पत्ति हुई थी।[९] तैत्तिरीय आरण्यक में उमा का उल्लेख मिलता है यहाँ रुद्र को उमापति कहा गया है।[१०] वायु पुराण में उल्लेख है कि उमा मेनका की पुत्री थी तथा कठोर तप करने के कारण ही माँ ने उन्हें उमा कहकर सम्बोधित किया था।[११] अग्नि पुराण में भी उमा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।[१२]

रुद्राणी– रुद्राणी का उल्लेख पाणिनि की अष्टध्यायी में मिलता है।[१३] कालिका पुराण में पार्वती के रूप का रुद्राणी के नाम से उल्लेख है।[१४] देवताओं ने देवी दुर्गा की उपासना कर प्रार्थना की कि वे ब्राह्मणों एवं धर्म के संरक्षण के लिए रुद्राणी के रूप में अवतरित होकर अपनी योगशक्ति द्वारा विश्व का संचालन करें।[१५]

पार्वती– शैव धर्म के आराध्य देव शिवजी की पत्नी के रूप में पार्वती का उल्लेख मिलता है। अमरकोषकार ने पार्वती के २१ नामों का भी उल्लेख किया है। इनके अनुसार उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हेमवती, ईश्वर, शिव, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमंगला, अपर्णा, पार्वती, दुर्गा, मृदानी, चन्द्रिका, अम्बिका इसके अतिरिक्त आर्यादाक्षामणी, गिरिजा और मेनका है।[१६] पार्वती के दो पुत्र कार्तिकेय एवं गणेश जी सर्वप्रसिद्ध हैं। पार्वती जी ने ही शिव को अर्धनारीश्वर बनाया, वही स्वामी को अपनी विराट शक्ति देकर मृत्युंजय के रूप में प्रतिष्ठित किया। भगवती श्री पार्वती ने अपने दोनों पुत्रों को सेनानी और गणाध्यक्ष बनाया तथा स्वयं लोक कल्याण के लिए शस्त्र उठाकर चण्डमुण्डविनाशिनी चामुण्डा बनीं, मत्स्य पुराण में देवी ने १०८ तीर्थों में अपने वास एवं विभिन्न नामों का उल्लेख किया है, इसमें शिव के समीप जो देवी का स्वरूप है, वह पार्वती के

*प्रवक्ता, प्रा०इतिहास विभाग, नन्दिनीनगर पी.जी. कालेज, नवाबगंज-गोण्डा

नाम से उद्धृत है।[१७] मत्स्य पुराण में ही शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में पार्वती जी का उल्लेख प्राप्त होता है। मार्कण्डेयपुराण में भी कौशिकी की उत्पत्ति के प्रसंग में पार्वती का उल्लेख मिलता है। पुराणों में पार्वती को तीनों जगत् की जननी कहा गया है, इन्हें पापों का विनाश करने वाली बताया गया है, उनका नाम स्मरण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है।[१८]

शैलपुत्री- दुर्गा के नौ नामों में पहला नाम शैलपुत्री का है, गिरिराज की पुत्री पार्वती देवी यद्यपि ये सबकी अधीश्वर हैं तथापि हिमालय की तपस्या और प्रार्थना से प्रसन्न हो कृपापूर्वक उनकी पुत्री के रूप में प्रकट हुईं, यह बात पुराणों से स्पष्ट है। 'शैलपुत्री' देवी का विवाह भी शंकर जी से हुआ, पूर्व जन्म की भाँति इस जन्म में भी वे शिव की अर्द्धांगिनी बनीं। नव दुर्गाओं में प्रथम शैलपुत्री दुर्गा का महत्त्व और शक्तियाँ अनन्त हैं। नवरात्र पूजन में प्रथम दिवस इन्हीं की पूजा और उपासना की जाती है। इस प्रथम दिन की उपासना में योगी अपने मन को 'मूलाधार' चक्र में स्थिर करते हैं, यहीं से उनकी योग साधना का प्रारम्भ होती है।[१९] शैलपुत्री का नाम सर्वज्ञ महात्मा वेद भगवान् द्वारा ही प्रतिपादित हुआ है, जो मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, रणभूमि में शत्रुओं से घिर गया हो, विषम संकट में फँस गया हो तथा इस भय से आतुर होकर जो इनकी शरण में आता है, उसका कभी अमंगल नहीं होता है।[२०]

इस प्रकार यदि देखा जाय तो शैव धर्म से सम्बन्धित इन सभी देवियों का समय-समय पर विशेष महत्त्व था और ये सभी विषम स्थिति में धर्म रक्षण हेतु देव लोक में जन्म लेकर सभी क्षेत्रों में कल्याणकारी कार्य किये, और इसीलिए इनके विभिन्न नामों से जन लोक ने आराध्य स्तुति की। शैव मत से सम्बन्धित इन देवियों के ऐतिहासिक अध्ययन, विश्लेषण में पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्त्रोत हैं। □

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची-

१. मत्स्य पुराण, १५७, १५-१६.
२. दुर्गा सप्तशती, १३-०१.
३. देवी भागवत पुराण, देवी स्तोत्र, ६०.
४. वामन पुराण, २८.५, २९.७१.
५. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, ११.३१.
६. केनोपनिषद्, ३.१२.
७. तैत्तिरीय आरण्यक, १०-१८.

८. वायु पुराण, ३०-१६४.
९. मत्स्य पुराण, १५७, १५-१६.
१०. तैत्तिरीय आरण्यक, १०-१८.
११. वायु पुराण, ७२, १०-१२.
१२. अग्नि पुराण, २१९, १०-११.
१३. बी.एस. अग्रवाल, इण्डिया एज नोन टू पाणिनी, वाराणसी १९६३, पृ.३५९.
१४. कालिका पुराण, ६५, ४५, ४६.
१५. दुर्गा सप्तशती, २३, ९-१०.
१६. अमर कोष १, ३७-३८.
१७. पार्वती शिवसंनिधौ, मत्स्यपुराण १३.५१.
१८. ब्रह्माण्ड पुराण, ४.२९-१४५.
१९. नवदुर्गा, गीताप्रेस, गोरखपुर।
२०. प्रथम शैलपुत्री च, दुर्गा सप्तशती, देव्याः कवचम् १३।

पुराणों में राजा की भूमिका : एक अवलोकन

डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र*

पुराणों के विषय में हमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक एवं विभिन्न मन्वन्तर (काल विभाग) के साथ मन्वन्तर में राजवंशों एवं राजाओं के शासन की जानकारी प्राप्त होती है। अपितु पुराणों में तिथिक्रम की स्पष्टता की कमी परिलक्षित होती है। पर वस्तुतः पुराण को वेदों के साथ अध्ययन कर हम तत्समय की परिस्थिति व चरित्र का स्पष्टतया अवलोकन कर सकते हैं। क्योंकि वेदों में राजाओं का प्रासंगिकता वश उल्लेख मिलता है पर पुराण में राजा एवं शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

पुराणों की संख्या अठारह मानी गयी है परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों की जनकारी भी मिलती है। पुराणों को हृदयंगम कर मुमुक्ष विश्लेषण करने पर हमें राजाओं के सन्दर्भ में एवं उनके विषय में विविध जानकारी मिलती है। राजतन्त्र में राजा को केन्द्र मानकर उसके परम अस्तित्व को स्वीकारा गया है। राजा को राज्य का संरक्षक, प्रजा, धर्म एवं समस्त शक्तियों का पोषण करने वाला माना गया है। क्योंकि समस्त प्रकार के राजकीय कार्य एवं निर्णयों का अधिकार राजा को ही था।

पुराणों में राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मतः

राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जानकारी मार्कण्डेयपुराण से मिलती है।[१] यथा–

"राज्ञः शरीर ग्रहणं ना भोगाय महीपतेः।
क्लेशाय महते पृथ्वीस्वधर्मः परिपालने॥
जातिजान्य मदान्धर्मान्श्रेणी धर्माश्च धर्मावते।
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्म प्रतिपादयते॥"

उपरोक्त विवरण से राजा की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त के मत की पुष्टि होती है। एक अन्य स्थान पर विवरण मिलता है कि "राज्ञः राज्यः परिलक्षते सर्वदेवतेजोमयः"[२]। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि राजा की उत्पत्ति के पीछे ब्रह्मा के विचार एवं उद्देश्य पवित्र थे। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा द्वारा निर्देश दिया गया कि (राजा) ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, वरुण, धाता, पूषा, पृथ्वी, चन्द्र आदि देवता राजा में वास करें एवं राजा के अन्दर अपने गुणों का समावेश करें। ब्रह्मा ने संसार के समस्त प्राणियों की रक्षा करने के लिए विविध देवताओं के अंशों से राजा की सृष्टि की है।[३]

"दण्डप्रणयनार्थ राज्ञाः सृष्ट स्वयम्भुवा।
देव भागानुपादाय सर्वभूतादि गुप्तये॥"

अग्निपुराण में भी राजा को सूर्य, चन्द्र, वायु, यम, वरुण, अग्नि, कुबेर, पृथ्वी एवं विष्णु आदि देवताओं के समान आचरण करने वाला माना गया है एवं कामना की गयी है कि इन देवताओं के समान कार्यों को राजा पूर्ण करेगा।[४] इसी में उल्लेख मिलता है कि वह अपने कार्यों से अपनी उत्पत्ति को सिद्ध करेगा एवं राजा समस्त ईश्वरीय विधान को पूर्ण करते हुए मनोकामनार्थ अपने सद्गुणों से यश की पूर्ति करेगा।[५]

वायु पुराण ने चक्रवर्ती राजा को विष्णु का अंश स्वीकारा है एवं कामना की है कि वह विष्णु के समान अपने इन्द्रियों से समस्त सृष्टि की समस्याओं का निग्रह करेगा।[६] मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख मिलता है कि राजा इन्द्र, अग्नि, सोम, यम, कुबेर के समान एवं इनके गुणों को धारित करने वाले, इनके यशों का पान कर यशकीर्ति करने वाला व सद्गुणों, तमोगुणों में इन राजाओं के समान आचरण करने वाला सिद्ध होगा।[७]

राजा के ही उपरिलिखित गुणों के सदृश कालिदास ने पुराणान्तर्गत भावों को अपने रघुवंश में भी उल्लेख किया।[८]

"असौ शरण्यः शरणोन्मुखानागाधसत्वो प्रतिष्ठतः।
राजा प्रजारन्जनलब्धवर्णः परंतपो नाम यथार्थनामा॥
कर्मः नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहसेन् भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलपि ज्योतिषमती चन्द्रसमैव रात्रिः॥"

उपरोक्त शक्तियों, अर्ह गुणों एवं राजा में आम जन से पृथक शक्तियों के कारण राजत्व सिद्धान्त में राजा को दैवी गुणों से युक्त किया गया एवं पुराणों में स्पष्ट यह निर्देशित किया गया कि राजा की उत्पत्ति देवताओं ने अपने प्रतिनिधिस्वरूप किया है। इन्हीं उत्पत्ति विषयक मतों का समर्थन ऋग्वेद[९] में भी मिलता है तथा इन्हीं मतों का समर्थन नारद[१०], मनु[११], शुक्र[१२] एवं बृहस्पति ने भी किया है। वसिष्ठ ने भी अपने मत में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया कि राजा आम जन से विलग अस्तित्व रखता है एवं इनके निर्माण में अद्वितीय शक्तियों

*वरिष्ठ प्रवक्ता,नन्दिनीनगर पी.जी. कालेज, नवाबगंज-गोण्डा

ने योगदान दिया है। उपरोक्त पौराणिक आख्यान में स्पष्टतया राजत्व के प्रतिपादन में राजा को विलक्षण गुणों से युक्त समस्त दैवी शक्तियों के धारण करते हुए बताया गया है।

पौराणिक सत्यता के समीचीन कालान्तर में राजाओं के भटकाव की स्थिति उत्पन्न होने पर बन्धन एवं आघात का प्रबन्ध भी दिखाई पड़ता है। मत्स्य पुराण में विहित है कि अगर राजा देवत्व के आधार पर दण्ड से बचना चाहे एवं अगर उसने ऋषियों के समझाने-बुझाने पर अपनी दुष्टता का त्याग नहीं किया तो उसे ऋषियों द्वारा दण्डित किये जाने का प्रावधान है।[१३]

राजा के देवत्व गुणों के साथ यह अपेक्षा की गयी कि उसकी योग्यता एवं उसके कार्य भी देवसम हो। इसी को लक्षित कर प्राचीन धर्मशास्त्रों एवं उसके सहायक ग्रन्थों में राजा के लौकिक दायित्वों पर विहंगम जानकारी प्राप्त होती है। पुराणों में भी राजा के सत्व गुणों एवं स्वच्छ आचरण पर जानकारी प्राप्त होती है। प्राचीन आचार्यों (कौटिल्य, बृहस्पति) का मत है कि राजा को महान पराक्रमी, विनयी, कुलीन, क्षमाशील, त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति आदि राजविद्यायों में पारंगत, साम-दाम, दण्ड और भेदनीति में निपुण, षाडगुण्य (सन्धि, विग्रह, मान, आसन, संश्रय तथा दैधीभाव) के प्रयोग का जानकार, उत्साही, स्वाभिमानी और धर्मात्मा होना चाहिए।[१४] राजा की विशेषताओं को सूत्र रूप में कौटिल्य निम्नवत रेखांकित करता है-

"प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥"[१५]

महाभारत के शान्ति पर्व में भी कहा गया है-

"भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणी सह धर्मिणा॥"[१६]

विष्णु पुराण ने राजा की योग्यता को निम्न प्रकार से आवृत्त किया है-"राजा को सत्यवादी, दानशील, सत्य व मर्यादा की स्थापना करने वाला, लज्जाशील, सुदृढ़, क्षमाशील, पराक्रमी, दूसरों का दमन करने वाला, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रियभाषी, यज्ञपरायण, साधु समाज से सम्मानित, शत्रु व मित्र के साथ समान व्यवहार करने वाला होना चाहिए।"[१७]

मत्स्य पुराण ने इन्हीं योग्यताओं में आगे कुछ अन्य योग्यताओं का निदर्शन किया है- "राजा तीनों वेदों, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) तथा आत्मविद्या का ज्ञाता होना चाहिए।"[१८] आगे इसी में उल्लेख मिलता है- "राजा को शिकार, मद्यपान, द्यूतक्रीड़ा का परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि पूर्वकाल में इनके सेवन

से कई राजा नष्ट हो चुके हैं।"[१९] व्यर्थ घूमना, दिन में शयन करना, कटुवचन बोलना, कठोर दण्ड देना परोक्ष रूप से किसी की निन्दा करना उचित नहीं है। राजा को इस प्रकार के कर्म नहीं करने चाहिए।[२०] स्वयं राम के मुख से ही इन्हीं प्रकार की योग्यताओं का विवेचन अग्निपुराण में अद्भुत मिलता है। अग्नि पुराण में कहा गया है, "राजकुल में उत्पन्न, शील, अवस्था सत्य (धैर्य) दाक्षिण्य, क्षिप्रकारिता, षडभक्तित्व, सत्यप्रतिज्ञता, कृतज्ञता, देवसम्पन्नता, अक्षुण्ण पारिवारिकता, दीर्घदर्शिता, पवित्रता, दानशीलता, धार्मिकता, वृद्धसेवा, सत्य एवं उत्साह आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही राजा बनने योग्य है।"[२१]

"बुद्धिमतं सदा दृष्टि मोदते वंचकैः सह।
स्वदुर्गुणं न वै वेति स्वात्मनाशाम् सो नृपः॥"

इसी विषय पर आचार्य शुक्र ने लिखा है- "जो राजा सदा बुद्धिमानों से द्वेष रखता है और वंचकों से खुश रहता है, अपने दुर्गुणों को नहीं समझता है वह अपने नाश करने के लिए स्वयं कारण बन जाता है।"[२२] राजा की योग्यताओं पर गुरुनीति में पुराणों सदृश वर्णन मिलता है। "जो राजा अभिमान के कारण अपनी प्रजा, अमात्य, गुरुजन व बन्धुओं का अपमान करता है वह रावण की तरह नष्ट हो जाता है।"[२३]

राजा की योग्यताओं एवं कार्यों का समावेशन करने का अद्भुत संयोग पुराणों में प्राप्त होता है। यथा- वायुपुराण में राजा को गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यस्त आश्रम के लोगों का रक्षण करने वाला एवं ब्रह्मचर्य आश्रम को सिंचित करने वाला होना चाहिए। मत्स्यपुराण में यथेष्ट उल्लेख मिलता है-

"महता तु प्रयत्नेन् स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च तथा मता यथा पिता॥"[२४]

आगे उसी में उल्लेख मिलता है-

"राजास्य जगतो हेतुर्बुद्धियै वृहायिसंयतः।
नयनान्दजनकः शशांक इव तोयधे॥
वायुगर्न्धरस सदसत्कर्मणः प्रकौ नृपः।
धर्म प्रवर्तको धर्मनाशवास्मसो रविः॥"[२५]

राजा के प्रधान कार्यों में विहित वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना बताया गया है जिसका उल्लेख मत्स्यपुराण में मिलता है। यथा-

"चतुर्वर्णात्मकमं लोकस्याचार रक्षात्।
नश्यतं सर्व धर्माणां राजा धर्म प्रवर्तकः॥"

राजा को सदैव चातुर्वर्ण की प्रजा का ध्यान रखना चाहिए एवं अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए।[२६] राजा को सदैव अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए एवं प्रसन्न रखने के उपायों को महत्त्व प्रदान करना चाहिए।[२७] कौटिल्य ने भी उपरोक्त कार्यों को स्वीकार किया है-

"बालं वृद्धं व्याधितुमुन्मतं क्षुत्यिासहवाल्कान्तमत्यशिवमात्मक शिवं दुबलं व न कर्मकाणेत्।"[२८]

मत्स्य पुराण में कहा गया है कि राजा वानप्रस्थी, धर्मशील, ममतारहित परिग्रहदीन एवं धर्मशास्त्र विद्वान पुरुषों की परिषद् द्वारा भलीभाँति विचार कर वर्णों पर दण्ड का विधान करे।[२९] इस प्रकार राजा को लोकानुग्रह की कामना के साथ न्यायविशेष करना चाहिए।

"तस्माद राजा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।
दण्डप्रणयनं कार्य लोकानुग्रहवाम्यया।।"[३०]

राजा के कार्यात्मक विधान का मत्स्य पुराण में उल्लेख मिलता है। वहाँ कहा गया है कि राजा को सदैव सम्मानित पलित उत्तम गुप्तचर रखकर शेष प्राणियों को यथायोग्य कार्यों में नियुक्त करना चाहिए। धर्म कार्य में धर्मात्मा, युद्ध कर्मों में शूरवीरों, अर्थकर्मों में विशेषज्ञों की नियुक्ति करनी चाहिए।[३१] राजा को धर्म, अर्थ, काम, और नीति के कार्यों में गुप्त पारिश्रमिक देकर लोगों की परीक्षा करनी चाहिए।[३२]

सम्भाव्य प्राचीन समय में राजा को उच्च आदर्शों का केन्द्र-बिन्दु बनाकर कर्तव्यों को विहित किया गया एवं राजा व प्रजा का सम्बन्ध पिता व पुत्र के समान निर्मित किया गया। प्रजा हित ही राजा का श्रेष्ठ कार्य, गुण व उद्देश्य माना गया। इतिहास का यह कम महत्त्वपूर्ण हिस्सा नहीं है कि उसमें जीवन पद्धति की विशेषताएँ, राजा-प्रजा के आपसी सम्बन्ध, उनके नैतिक आचरण का विवेचन किया गया हो। पुराण इस दृष्टि से भारतीय इतिहास के अनन्यतम स्त्रोत हैं। □

सन्दर्भ-

१. मार्कण्डेय पुराण, १३०-३४.
२. विष्णु पुराण, १ -१३.
३. मत्स्य पुराण, २२६
४. अग्नि पुराण, २२६, १७-२०
५. वही, २२६, ३६
६. वायु पुराण, ५७, ७२
७. मार्कण्डेय पुराण, पृ. २७, २१, २६
८. रघुवंश सर्ग, ६, २१, २२
९. ऋग्वेद, १,१४
१०. नारद स्मृति, जौली अनुदित; पृ. ११३-११४
११. मनुस्मृति, ७-३
१२. शुक्र नीति, १, ७१
१३. मत्स्य पुराण, अध्याय, १०
१४. अर्थशास्त्र, ६.१
१५. वही, १,१९
१६. महा. शान्तिपर्व, ५६.४४
१७. विष्णु पुराण, १, २३, ६२, ६३
१८. मत्स्य पुराण, २१५-५४
१९. वही, २२०, ८-१०
२०. वही, २२०, १२
२१. अग्निपुराण, पृ.-२३९, २.५
२२. शुक्र, १, १२८
२३. गुरुनीति, पृ. ५३
२४. मत्स्य पुराण, २२०-४४
२५. वही
२६. मत्स्य पुराण, ७, २८
२७. वही
२८. अर्थशास्त्र, ४. ४८
२९. मत्स्य पुराण, २२५, ५-६
३०. वही, २२५, ७
३१. मत्स्य पुराण, २१५, ७६
३२. वही, २१५, ७८

पुराणों की ऐतिहासिक विवेचना

डॉ. संगीता शुक्ल*

डॉ. अम्बरीश कुमार दूबे**

पुराण भारतीय साहित्य के गौरव-ग्रन्थ हैं। प्राचीन मनीषियों का कहना है कि कोई द्विज चारों वेदों तथा उनके अंगों-उपनिषदों को जानता भले हो, यदि वह पुराण को नहीं जानता तो वह विचक्षण चतुर तथा शास्त्रकुशल नहीं माना जा सकता। पुराणों की रचना का उद्देश्य वेदों का विस्तार करना है। उनके रचयिता महर्षि व्यास कहे जाते हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वे स्वयं नारायण के अवतार थे और उन्होंने वेदों के अर्थ को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए पृथ्वी पर पुराणों को प्रकट किया।

विस्ताराय तु वेदानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले॥[१]

भारतीय समाज का सबसे अच्छा क्रमबद्ध विवरण पुराणों में मिलता है। पुराणों की संख्या १८ है-

१.मत्स्य, २.मार्कण्डेय, ३.भविष्य, ४.भागवत, ५.ब्रह्माण्ड, ६.ब्रह्मवैवर्त, ७.ब्रह्मा, ८.वामन, ९.वाराह, १०.विष्णु, ११.वायु, १२.अग्नि, १३.नारद, १४.पद्म, १५.लिङ्ग, १६.गरुड़, १७.कूर्म, तथा १८.स्कन्दपुराण। इसके अतिरिक्त हाजरा नामक विद्वान ने १०० उपपुराण की सूची दी है।

अधिकांश पुराणों की रचना तीसरी-चौथी शताब्दी ई. में की गयी थी। सर्वप्रथम पार्जिटर (Pargiter) नामक विद्वान ने इनके ऐतिहासिक महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया।[२] अमर कोष में पुराणों के पाँच विषय बताये गये हैं- १. सर्ग अर्थात् जगत् की सृष्टि, २. प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय के बाद जगत् की पुनः सृष्टि, ३. वंश अर्थात् ऋषियों तथा देवताओं की वंशावली, ४. मन्वन्तर अर्थात् महायुग, और ५. वंशानुचरित अर्थात् प्राचीन राजकुलों का इतिहास।[३] इनमें ऐतिहासिक दृष्टि से 'वंशानुचरित' का विशेष महत्त्व है। १८ पुराणों में केवल पाँच (मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड, भागवत) में ही राजाओं की वंशावली पायी जाती है। इनमें मत्स्य पुराण सबसे अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक है। पुराणों की भविष्य शैली में कलियुग के राजाओं की तालिकाएँ दी गयी हैं। इनके साथ शैशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र तथा गुप्त वंशों की वंशावलियाँ भी मिलती हैं। मौर्यवंश के लिए विष्णु पुराण तथा आन्ध्र (सातवाहन) वंश के लिए मत्स्य पुराण महत्त्व के हैं। इसी प्रकार वायु पुराण में गुप्तवंश की साम्राज्य सीमा का वर्णन तथा गुप्तों की शासन पद्धति का भी विवरण प्राप्त होता है।

पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों में 'पुरणात् पुराणम्' भी अन्यतम व्युत्पत्ति है जिसका तात्पर्य यह है कि वेदार्थ को पूर्ण करने के कारण ही इस ग्रन्थ को पुराण नामकरण प्राप्त हुआ। व्यास जी का यह प्रख्यात श्लोक इसी तथ्य की ओर संकेत करता है-

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताम् वेदो मामय प्रहरिष्यति॥[४]

पुराणों के समय निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रमाणों पर ध्यान देना आवश्यक है-

१. शंकराचार्य तथा कुमारिलभट्ट ने अपने ग्रन्थों में पुराणों के उद्धरण दिये हैं। बाणभट्ट (६२५ ई.) ने हर्षचरित में वायुपुराण के अस्तित्व की सूचना दी है।

२. पुराणों में कलियुग के राजाओं का जो वर्णन किया गया है, उसकी परीक्षा भी समय निरूपण में सहायक है। विष्णु पुराण में मौर्यवंश का प्रामाणिक विवरण दिया गया है। मत्स्यपुराण दक्षिण के आन्ध्र राजाओं का (लगभग २२५ ई.) प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। वायुपुराण गुप्त राजाओं के प्रारम्भिक साम्राज्य से परिचित है। अतः पुराणों की रचना का काल मौर्यकाल से गुप्तकाल के अनन्तर माना जा सकता है।

३. वर्तमान महाभारत और पुराणों का परस्पर सम्बन्ध एक विवेचनीय वस्तु है। महाभारत को यह वर्तमान रूप प्राप्त होने से भी पहले पुराणों का अस्तित्व था। महाभारत कथा के वक्ता उग्रश्रवा सूत लोमहर्षण के पुत्र थे। वे पुराणों में पूर्णरूप से निष्णात् बतलाये गये हैं। लोमहर्षण भी पुराणों के विशेष ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध थे।

४. कौटिल्य पुराणों से अच्छी तरह परिचित हैं। कौटिल्य का कथन है कि उन्मार्ग पर चलने वाले राजकुमारों को पुराणों का उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाना चाहिए। कौटिल्य ने पौराणिक को राज्य के अधिकारियों में अन्यतम स्थान दिया है; अतः पुराणों को कौटिल्य से प्राचीन मानना उचित है।

५. सूत्र-ग्रन्थों के अवलोकन से पुराणों के अस्तित्व का परिचय मिलता है।

*प्रवक्ता, प्रा०इतिहास विभाग, नन्दिनीनगर पी.जी. कालेज, नवाबगंज-गोण्डा
*प्रवक्ता, प्रा०इतिहास विभाग, शान्ति सशक्तिकरण महाविद्यालय, सिधुआपार, गोरखपुर

गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि राजा को अपनी शासन व्यवस्था के लिए वेद, धर्म-शास्त्र, वेदांग और पुराण को प्रमाण बनाना चाहिए।[५]

६. उपनिषद् काल में पुराणों का उल्लेख हमें मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में इतिहास-पुराण पंचम वेद कहा गया है।[६]

७. इससे भी महत्त्वपूर्ण उल्लेख स्वयं अथर्वसंहिता का है।[७] अथर्व के एक मन्त्र के अनुसार- उच्छिष्ट नाम से अभिहित परम पुरुष से चारों वेदों के अनन्तर पुराण को उत्पत्ति का निर्देश किया गया है। प्रसंग से प्रतीत होता है यहाँ 'पुराण' शब्द से केवल पुराने आख्यान का अर्थ नहीं है प्रत्युत विधा-विशेष है।

अन्ततः ईस्वी से छः सौ वर्ष पूर्व वर्तमान काल में उपलब्ध होने वाले पुराणों के समान ही पुराण ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था। पुराण किसी एक शताब्दी की रचना नहीं है, समय-समय पर उनमें नये-नये अध्याय जोड़े गये थे। गुप्तकाल में वे अपने वर्तमान रूप को प्राप्त कर चुके थे।

यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने परमधाम को पधार गये उस समय पृथ्वी पर किस वंश का राजा हुआ? और अब किसका राज्य होगा?[८] भागवत पुराण में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। भागवत के नवें स्कन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि जरासन्ध के पिता बृहद्रथ के वंश में अन्तिम राजा होगा पुरञ्जय अथवा रिपुञ्जय; उनके मन्त्री का नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामी को मार डालेगा और अपने पुत्र प्रद्योत को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करेगा। प्रद्योत का पुत्र होगा पालक, पालक का विशाखयूप, विशाखयूप का राजक, और राजक का पुत्र होगा नन्दिवर्धन। प्रद्योत वंश में यही पाँच नरपति होंगे। इनकी संज्ञा होगी 'प्रद्योतन'। ये एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे।[९] इसके पश्चात भागवत पुराण में शिशुनाग नाम के राजा का वर्णन प्राप्त होता है। शिशुनाग का पुत्र काकवर्ण, उसका पुत्र क्षेमधर्मा और क्षेमधर्मा का पुत्र होगा क्षेत्रज्ञ। क्षेत्रज्ञ का बिम्बसार, उसका अजातशत्रु, फिर दर्शक और दर्शक का पुत्र अजय होगा। अजय से नन्दिवर्धन और उससे महानन्दि का जन्म होगा। शिशुनाग वंश के दस राजा होंगे और सब मिलकर कलियुग में ३६० वर्ष तक पृथ्वी का राज्य करेंगे।[१०] महानन्दि की शूद्रा पत्नी के गर्भ से नन्द नाम का पुत्र होगा। वह बड़ा बलवान होगा। महानन्दि 'महापद्म' नामक निधि का अधिपति होने के कारण लोग उसे महापद्म भी कहेंगे। वह क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा। तभी से राजा शूद्र और अधार्मिक हो जाएँगे।[११]

भारतीय एवं विदेशी दोनों ही जाति नन्दों की शूद्र अथवा निम्न जातीय उत्पत्ति

का स्पष्ट संकेत करते हैं। पुराणों के अनुसार- महापद्म नन्द शिशुनाग वंश के अन्तिम राजा महानन्दिन की शूद्रापत्नी के गर्भ से उत्पन्न (शूद्रागर्भोद्भव) हुआ था। विष्णुपुराण में कहा गया है कि "महानन्दी की शूद्रा से उत्पन्न महापद्म अत्यन्त लोभी तथा बलवान परशुराम के समान सभी क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा।"[१२] नन्दवंश में कुल ९ राजा हुए और इसी कारण उन्हें 'नवनन्द' कहा जाता है। उग्रसेन, पण्डक, पण्डगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त, धन। इसमें प्रथम अर्थात् उग्रसेन को ही पुराणों में महापद्म कहा गया है, शेष आठ उन्हीं के पुत्र हैं। पुराणों में वर्णन प्राप्त होता है कि कलियुग में मौर्यवंशी नरपति पृथ्वी पर राज्य करेंगे; कौटिल्य, वात्स्यायन तथा चाणक्य नाम का एक विश्वविख्यात ब्राह्मण नन्द और उनके सुमाल्य आदि आठ पुत्रों का नाश कर डालेगा और वही ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को राजा के पद पर अभिषिक्त करेगा।[१३] चन्द्रगुप्त पुत्र वारिसार-वारिसार का पुत्र अशोक वर्द्धन और उसके सुयश, सुयश का संगत, संगत का शालिशूक और शालिशूक का सोमशर्मा। सोमशर्मा का शतधन्वा और शतधन्वा का पुत्र बृहद्रथ। ब्रहद्रथ का सेनापति होगा पुष्यमित्र शुंग। वह अपने स्वामी को मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा और उसके पश्चात शुंग वंश का शासन एक सौ बारह वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। शुंग वंश के अन्तिम नरपति को उसका मन्त्री कण्ववंशी वसुदेव मार डालेगा और बुद्धिबल से राज्य करेगा।[१४] इसके पश्चात अवभृति नगरी के सात आभीर, दस गर्दभी, सोलह कंग पृथ्वी का राज्य करेंगे।[१५]

एलन, एस के आयंगर, अनन्त सदाशिव अल्टेकर, रोमिला थापर, रामशरण शर्मा जैसे कुछ विद्वान गुप्तों को वैश्य मानते हुए अपने मत के समर्थन में विष्णुपुराण के एक श्लोक का सहारा लिया है जिनके अनुसार ब्राह्मण अपने नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय वर्मा, वैश्य गुप्त तथा शूद्र दास शब्द लिखेंगे।[१६]

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्त वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तवैश्य शूद्रयोः॥

पुराणों का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व धार्मिक महत्त्व की अपेक्षा कथमपि न्यून नहीं है। पुराण की दृष्टि ही भारतवर्ष के मनीषियों के विचार से सत्य इतिहास की पोषिका है पंचलक्षण पुराण के पाँच लक्षण हैं[१७]- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित। मानव समाज का इतिहास तभी सम्पूर्ण समझा जा सकता है जब उनकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध रूप से दी जाय। पुराण का आरम्भ होता है सर्ग (सृष्टि) से और अन्त

होता है प्रतिसर्ग (प्रलय) से। इन दोनों छोरों के बीच में होने वाले विशाल काल खण्डों (मन्वन्तर) का राजवंशों का; तथा महत्त्वशाली राजाओं का विवरण देना ही पुराण का 'पुराणत्व' है। कलिवंशीय राजाओं का सच्चा वर्णन हमें पुराणों में ही उपलब्ध है जिसकी पुष्टि आधुनिक ऐतिहासिक उपकरणों से-जैसे शिलालेख, ताम्रलेख, मुद्रा आदि से भी भली-भाँति हो रही है। अशोकवर्द्धन के पूर्व के शिलालेख तो उंगली पर गिनने लायक हैं; राजा परीक्षित से लेकर राजा पद्मनन्द तक का इतिहास पुराण के आधार पर ही इतिहास प्रवीण मनीषियों ने खड़ा किया है। और यह इतिहास यथार्थ है, इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं। यह शुभ लक्षण है कि पार्जिटर के 'एंशियेन्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडिशन' के अनन्तर भारतीय तथा विदेशी विद्वानों का ध्यान पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री की ओर आकृष्ट हुआ है; और पुराण पर आधारित तथ्य प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्धकारपूर्ण काल के इतिहास को उज्ज्वल रूप से प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं। एक बात ध्यातव्य है कि पुराण के द्वारा निर्दिष्ट कतिपय भूमिपति नई खोज के आलोक में प्रकाशित होने लगे हैं। तथ्य तो यह है कि पुराण का यह दोष नहीं है कि उसके द्वारा वर्णित किसी राजा के ऊपर नवीन खोज के आलोक ने अपना प्रकाश नहीं डाला है। नूतन गवेषणा के सर्वांगपूर्ण होने पर पुराण का प्रत्येक ऐतिहासिक विवरण प्रस्फुटित हो उठेगा-यह आशा नहीं है, प्रत्युत तथ्य है। इसका मूल कारण यह है कि पौराणिक अनुश्रुति (ट्रेडेशन) को सूतों ने बड़ी सावधानी से सुरक्षित कर रखा है। सूत का काम राजाओं का गुणगान करना आवश्यक था। फलतः उन्होंने राजवंशावली को विकृत होने से बचाया है। इन वंशावलियों में एक ही नाम वाले अनेक राजा हुए हैं। अशुद्धि बचाने के लिए पुराणों ने ऐसे नामों का स्पष्ट निर्देश कर दिया है; यथा- नल नामक दो राजा हुए- एक तो थे नैषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र (नलोपाख्यान तथा नैषधचरित में इन्हीं का चरित वर्णित है), दूसरे इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न मरुत नामक दो राजा हुए-करन्धम के पुत्र तथा अविक्षित् के पुत्र, जो प्राचीन भारत के एक महनीय मूर्धाभिषिक्त सम्राट थे (ऐतरेय ब्राह्मण, अष्टम् पंचिका में उल्लिखित)। इसी प्रकार सोमवंश में हुए दो परीक्षित, दो जन्मेजय तथा तीन भीमसेना।[१८] इतनी सावधानी रखने वाला पुराण सच्चे रूप में ऐतिहासिक है.......क्या इसमें सन्देह का स्थान है! पुराणों का ऐतिहासिक स्त्रोत के रूप में उपयोग कर भारतीय राज्य एवं समाज के इतिहास का पुनर्लेखन आवश्यक है। यदि भारतीय धर्म साहित्य का पूर्वाग्रह के बिना तथ्य के रूप में उपयोग किया जाय तो भारत का वास्तविक इतिहास नये रूप में सामने

आ सकता है।

पुराणों में प्राचीन भूगोल का एक वृहत् अंश उपस्थित है, जिसे 'भुवन-कोश' की संज्ञा दी जाती है। पुराणों की द्विविध कल्पना है कि चतुर्द्वीपा वसुमती तथा सप्तद्वीपा वसुमती। भूगोल का यह प्रसंग पुराणों का एक निजी वैशिष्ट्य है। कल्पना यह है कि वसुमती द्वीपमयी है और समुद्रों से घिरी हुई है। जम्बूद्वीप तो यही भारतवर्ष है जिसमें हमारा निवास है। सम्राट भरत के द्वारा शासन होने के कारण यह देश उन्हीं के नाम पर 'भारत' कहलाता है। इससे पहले इसका नाम 'अजनाभ' था, जिसका शाब्दिक अर्थ है- अज (ब्रह्मा) की नाभि से उत्पन्न होने वाला (नाभ) और यह नाम आर्यों के मूल निवास को भारतवर्ष में प्रतिष्ठित होने का स्पष्ट संकेत करता है। शकद्वीप में शक लोगों का निवास था। यह जिस क्षीरसागर के द्वारा चारों ओर से वेष्ठित था वही आजकल कैस्पियन सागर है, जिसे फारसवासी भी अपनी भाषा में 'शीरवाँ' (क्षीरसागर) के नाम से पुकारते थे। कुशद्वीप के निवासी 'कुसा-इट्स' के नाम से सम्राट डैरियस (दारा या दारियवहु) के शिलालेखों में अनेकत्र उल्लिखित है। तात्पर्य यह है कि पुराणों का भूगोल काल्पनिक नहीं है, प्रत्युत ठोस भूतल पर अवस्थित है। उसकी गवेषणा अपेक्षित है।

प्राचीन भारत का ज्ञान और विज्ञान; पशु तथा पक्षि-विज्ञान, वनस्पति तथा आयुर्वेद सब एकत्र कर पुराणों में भर दिया गया है। इसका परिणाम यह है कि पुराण विश्वविद्या का कोष है। जिस प्रकार आजकल विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) लिखने का प्रचलन है जिससे विस्तृत विज्ञान संक्षेप में शिक्षित जनता के ज्ञानवर्धन के लिए प्रस्तुत किया जाता है, उसी प्रकार अग्नि, नारद, गरुड़ पुराणों की रचना ज्ञान-विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से की गयी है।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप को यथार्थतः जानने के लिए पुराण का अनुशीलन नितान्त अपेक्षित है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक आदि अनेक दृष्टियों से पुराण का विशिष्ट महत्त्व है। वेद हमसे बहुत दूर हट गये, पुराण हमारे समीप हैं, इसलिए पुराण का अध्ययन-अनुशीलन वर्तमान जगत् में नितान्त समुचित एवं उपयोगी है। वास्तव में पुराणों में उल्लिखित विभिन्न महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन करने पर एक नवीन ऐतिहासिक दृष्टिकोण एवं चिन्तन को बल मिलेगा। □

सन्दर्भ-

१. संगम लाल पाण्डेय- भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण; पृ. ८५

२. पार्जिटर- 'एन्शेन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रैडिशन्स', 'डायनेस्टीज ऑफ कलिएज'।
३. "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितश्चैनं पुरानं पंचलक्षणम्।।"
४. महाभारत, आदिपर्व-४६
५. गौतम धर्मसूत्र ११/१९
६. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमार्थवणं
चतुर्थमितिहास पुराणं पंचम वेदानांवेदम्। छान्दोग्य, ७/१/२७
७. ऋचः समानि छन्दासि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाञ्जीज्ञरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।। अथर्ववेद, ११/७/२४
८. श्रीमद्भागवत् महापुराण, द्वादशः स्कन्ध, प्रथमोऽध्याय; पृ. ७६९
९. श्रीमद्भागवत् महापुराण, द्वादशः स्कन्ध, प्रथमोऽध्याय; पृ. ७६९, २-४
१०. वही, ५-६
११. वही, ७-९
१२. महानन्दीनस्त तश्शूद्राग्योद्भवो अतिलुब्धो अतिबलो महापद्मनामानन्दः परशुरमिवपरो अखिल क्षत्रान्तकारी भविष्यति। विष्णुपुराण, ४.२४.२०
१३. भागवत्पुराण, पृ. ७७०, १२-१३
१४. भागवत्पुराण, पृ. ७७०, १९-२०
१५. वही, २९-३०
१६. विष्णुपुराण; ३,१०,९
१७. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्।।
१८. विशेष के लिए द्रष्टव्य- बलदेव उपाध्याय-पुराण विमर्श (पृ. ३५५, चौखम्भा, काशी १९६५) जहाँ द्विविषयक पौराणिक श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख स्रोत : भविष्य पुराण

डॉ. चन्द्रमौलि त्रिपाठी*

भारतीय संस्कृति वाङ्मय में पुराणों का विशेष महत्त्व है। सर्वविदित है कि पुराण ऐतिहासिक सामग्री के प्रमुख स्रोत हैं। भारतीय साहित्य में पुराण व इतिहास शब्द का प्रयोग प्रायः साथ-साथ व एक दूसरे के अर्थ के लिए होता है। पुराणों का वर्ण्य विषय बड़ा ही व्यापक रहा है। महाभारत में कहा गया है कि-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रृतादवेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

अर्थात् वेदों के उपवृंहण होने के कारण पुराणों का महत्त्व स्वतः प्रमाणित है। यह नितान्त सत्य है कि पुराण संस्कारकों ने वेदों के रहस्यात्मक मन्त्रों को सरल प्रयोग द्वारा जन सामान्य के लिए उपयोगी व ग्राह्य बना दिया है। इसीलिए पुराणों को पंचम वेद माना गया है।[१] देवी पुराण में कहा गया है कि श्रुति-स्मृति धर्म की दो आँखें हैं और पुराण धर्म का हृदय है। पद्मपुराण[२] में इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा गया है-

बहुशास्त्रं समम्यस्य बहून्नेदान सविस्तरान्।
पुंसो अश्रुत पुराणस्य न सम्यग् याति दर्शनम्।।

पुराण व इतिहास के अध्येता के लिए सर्वविदित है कि अष्टादश पुराणों में भविष्य पुराण का कितना महत्त्व है। पूर्ववृत्त को इतिहास कहा गया है-

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

भविष्य महापुराण, भारतीय धर्म कर्मकाण्ड, इतिहास व राजनीति का एक बृहद कोश है। कुछ प्राचीन ग्रन्थ भी इसमें समाहित हैं। विभिन्न यम-नियम व्रत आदि की प्रामाणिकता के लिए हेमाद्रि, अपरार्क, देवण्णभट्ट आदि स्मृति टीकाकारों ने इस पुराण को प्रमाण माना है। भविष्य महापुराण का नाम भारतीय साहित्य विशेषकर पुराणों में अति प्रसिद्ध है; ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ अधिक प्रमाणित माना जाता है। सम्भवतः इसीलिए उर्दू, फारसी, अरबी व अंग्रेजी भाषा में लिखे गये इतिहासों के साथ इसकी तुलना की गयी है। पार्जिटर, वी.

*प्राचार्य, श्रीमती जे. देवी महिला पी.जी. कालेज, बभनान, गोण्डा

स्मिथ, पं.भगवदत्त ने बड़ी छानबीन के साथ भविष्य महापुराण को इतिहास के लिए सर्वाधिक प्राचीन आधार माना है।

वर्तमान समय में भविष्य महापुराण के विभिन्न संस्करणों में चार पर्व हैं- १. ब्राह्म पर्व, २. मध्यम पर्व, ३. प्रतिसर्ग पर्व, ४. उत्तर पर्व।

भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व के बारे में इतिहासकारों का बड़ा उत्साह रहा है। पुराणों के सम्बन्ध में कहा गया है-

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणम् पंच लक्षणम्॥"[३]

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय व उसके बाद की सृष्टि), वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र, कश्यप-दक्ष आदि के वंशों का सम्यक निरूपण) पंचलक्षण कहलाता है। अर्थात् किसी भी पुराण को महापुराण की श्रेणी में तभी रखा जा सकता है जब वह उपर्युक्त पंचलक्षणों से युक्त हो। भविष्य पुराण में उपर्युक्त पंचलक्षणों का उल्लेख दो बार आया है। इससे स्पष्ट है कि भविष्य पुराणकार पंचलक्षणों को आश्रित कर पुराणों की रचना करने हेतु अधिक आग्रही व सचेष्ट थे। पुराणों की सूची में यह पुराण नौवें क्रम में आता है। यानी भविष्य पुराण की रचना के पूर्व आठ पुराण रचे जा चुके थे। भविष्यपुराण में आद्योपान्त नैरेन्तर्य मिलता है। भविष्यपुराण के रचना काल के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं पर उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार इसकी रचना पाँचवीं-छठीं शताब्दी ई. मानी जाती है।

पुराणों में कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक सामग्री तो सर्वत्र ही मिलती है, किन्तु भविष्यमहापुराण में जिस प्रकार की और जिन ऐतिहासिक सामग्रियों का संचयन हुआ है, वैसी अन्य पुराणों में नहीं मिलती। इस पुराण में 'प्रतिसर्गपर्व'[४] के जुड़ जाने के कारण कतिपय पुराण-मर्मज्ञों ने इसकी प्रामाणिकता पर अपनी आशंका जतायी है, किन्तु निःसन्देह इस पर्व को छोड़कर शेष पर्व अति प्राचीन हैं, तथा उनमें अवश्यमेव भविष्यत्कालीन घटनाओं का संग्रह है। इसके भविष्यपुराण नाम से ही द्योतित है कि इस पुराण के निर्माता ने भविष्यकालीन घटनाओं का भूतकाल में निरूपित करने का सफल प्रयत्न किया। वर्तमान में जो घटनाएँ घट रही हैं उनको पुराणकार ने पहले ही कह दिया है। दृढ़ निश्चयपूर्वक चिन्तन किया जाए, तो इसका यही भाव निकलेगा कि उस समय की जिन घटनाओं का वर्णन इस पुराण में किया गया है, किसी भी अंश में आज दृष्टिगोचर हो रही है।

यदि इस प्रकार कहा जाय कि भविष्यमहापुराण का प्रतिसर्गपर्व मध्यकालीन इतिहास का कोश स्रोत है, तो अधिक उचित होगा। इस पर्व को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। अब आगे प्रतिसर्गपर्व[५] के पृथक-पृथक खण्डों में वर्णित विषयों पर प्रकाश डालना समीचीन है।

इसके प्रथम खण्ड में वैवस्वत मनु से आरम्भ कर अनेक भूपतियों के राज्य-काल का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। सात अध्यायों में इस खण्ड की विषय-सामग्री प्रतिपादित है। म्लेच्छ यज्ञ का विवेचन करते हुए पुराणकार ने विभिन्न म्लेच्छ राजाओं (आदम, श्वेत, न्यूह) के वृतान्त, म्लेच्छ भाषा का विधान, आर्यावर्त में म्लेच्छों के आने के कारण-प्रसंग में काश्यप ब्राह्मण वृत्तान्त, बौद्ध धर्म संस्कार वर्णन, चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति तथा विक्रमादित्यावतार सहित बेताल-विक्रम संवाद का सविस्तार विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में पद्मावती, मधुमती, वीरवर, चन्द्रावती, हरिदास, कामांगी, त्रिलोकसुन्दरी, कुसुमदा, कामालसा, सुखभाविनी, जीमूतवाहन, मोहिनी इत्यादि कन्याओं का वर्णन करते हुए पुराणकार ने सत्यनारायण व्रत कथा विस्तृत रूप से निरूपित किया है। इसका पाणिनि, बोपदेव तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि का व्याख्यान भी कम आकर्षक नहीं है।

इसके तृतीय खण्ड में ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णन-प्रसंग में महाभारत युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए कौरवों, यादवों, पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण इत्यादि के पुनः अवतार का विवेचन है। भरतखण्ड के १८ राज्यों, शालिवाहन, शक, कालिदास, भोजराज, मुहम्मद साहब, ईसामसीह, भोजराज के वंश में उत्पन्न अनेक राजाओं-जयचन्द, पृथ्वीराज, भीष्मराज, परिमलराज, लक्ष्मणराज, जम्बूकराज, देशराज, वत्सराज, चण्डिकादेवी, इन्दुल, पद्मिनी, चित्रलेखा, के वर्णन के साथ पुराणकार ने इस खण्ड को ऐतिहासिक सामग्रियों के कोश के रूप में सजाने का भरपूर प्रयत्न किया है, जो सहज ही इतिहासकारों का मन मोह लेता है।

इसके चतुर्थ खण्ड का वर्णन न केवल इतिहासकारों, बल्कि सामान्य लोगों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया है। इस खण्ड में अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का वर्णन करते हुए पुराणकार का स्पष्ट अभिमत है कि भावी पीढ़ी तभी आगे बढ़ सकती है जब उसको अपने पूर्वजों के किये हुए कार्यों का सम्यक् ज्ञान हो। इसी को आश्रित कर उन्होंने विक्रमवंशीय भूपाल, अजमेरपुर, द्वारकाराज्य, सिन्दुदेश, कच्छभुज, उदयपुर, कान्यकुब्ज, देहली में

स्थित म्लेच्छराजाओं का वृत्तान्त, सूर्यमाहात्म्य, मध्वाचार्य, धन्वन्तरि, कृष्ण चैतन्य, सुश्रुत, शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, ढुण्ढिराज, रामानुज, वामदेव, कबीर, नरश्री, पीपा, नानक, नित्यानन्द इत्यादि की उत्पत्ति को वर्णित किया है। इसी क्रम में कण्व ब्राह्मण की पत्नी आर्यावती से उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डे तथा चतुर्वेदी- इन दश पुत्रों की उत्पत्ति की कथा मिलती है। इसके आगे पुराणकार ने अकबर, शिवाजी मोंगल, कलकत्तानगरी, गुर्जरदेश, विश्वकर्मा इत्यादि का वर्णन करते हुए प्रतिसर्गपर्व का उपसंहार किया।

प्रतिसर्गपर्व के इन चार खण्डों की विषय-सामग्री आइने अकबरी, तारीख-ए-फिरोजशाही, तवकात-ए-अकबरी इत्यादि अनेक उर्दू ग्रन्थों में तो प्रकाशित है ही- पार्जिटर, स्मिथ तथा पं. भगवद्दत्त ने भी इतिहास का प्रमुख स्रोत भविष्यमहापुराण को मानते हुए अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की है। इन विद्वानों के ग्रन्थों के आधार पर भी स्वतन्त्र रूप में अनेक ग्रन्थ लिख डाले गये हैं।[६]

भविष्यपुराण की विषय-सामग्री विविधतापूर्ण है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ई.पू. पाँचवीं शताब्दी से लेकर अकबर, विक्टोरिया, ईसामसीह, हजरत मोहम्मद, आल्हा-ऊदल व कबीर, सूर तक का विषय-वस्तु इसमें समाहित है। □

सन्दर्भ-

१. इतिहासं पुराणं च पंचमो वेद उच्यते। - श्रीमद्भागवतपुराण
२. पद्मपुराण (४.१०५.१३)
३. भविष्यमहापुराण १.२.४-५, ४.२.११; विष्णुपुराण ३.६.२४
४. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.१५.१
५. भविष्यमहापुराण प्रतिसर्गपर्व प्रथम खण्ड-अध्याय १ से ७ तक; द्वितीय खण्ड-अध्याय १ से ३५ तक; तृतीय खण्ड-अध्याय १ से ३२ तक; चतुर्थ खण्ड-अध्याय १ से २६ तक।
६. भविष्यमहापुराण - डॉ. रामजी तिवारी का आमुख।

पुराणों में नदियों का संक्षिप्त इतिहास

डॉ. बृजभूषण यादव*

पुराण भारतीय इतिहास का विश्वकोष है। पुराणों में भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों के अतिरिक्त भारत के भूगोल, पर्वत, नदी, समुद्र आदि विभिन्न विषयों पर पर्याप्त विवरण दिया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में पुराणों में वर्णित प्रमुख नदियों और नदियों के संगम का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत है।

पुराण के रचनाकारों ने नदी के विशेषण में 'शिवा', 'पुण्या', 'शिवजला' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है, जो नदी सम्बन्धी उनकी उदात्त भावना का ज्ञापक है। भौतिक दृष्टि से नदी की महत्ता का ज्ञान तब होता है, जब हम देखते हैं कि पुराणों में प्रत्येक वर्ष (अर्थात् प्रत्येक द्वीप का एक निश्चित भाग) में कितनी नदियाँ हैं; इसके लिए प्रश्न किया गया है (तेषु नद्यश्च काः स्मृताः)[१] और इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर भी दिया गया है। वस्तुतः देश की नदियों की संख्या का निश्चय करना एक मान्य परिपाटी थी- यह पुराण के अध्ययन से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। स्कन्दपुराण में नदियों की संख्या दी हुई है-'सहस्रविंशतिश्चैव षट्शतानि तथैव च'[२]। पुराणों में नदी की असाधारण प्रशंसा की गयी है, और उनको 'विश्वस्यमातरः' माना गया है।[३]

पुराणों का प्रसिद्ध मत है कि नदी पर्वत से उद्भूत होती है, जैसा कि इस विषय में वायुपुराण में कहा गया है-'स्रवन्ते पावना नदयः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः'। सरोवर से भी नदी उत्पन्न होती है, जैसा कि लिंगपुराण में कहा गया है- 'नदयो बहुजलाः सरोवरेभ्यः सभूताः'[४]। मत्स्यपुराण में भी इस विचार का समर्थन हुआ है क्योंकि यहाँ कहा गया है कि अच्छोदसर से अच्छोदिका नदी उत्पन्न हुई है।[५]

नदियों की उत्पत्ति के विषय में अनेक शब्द व्यवहृत हुए हैं;[६] हो सकता है कि इन शब्दों के अर्थों में कुछ-न-कुछ विलक्षणता रही हो। उत्पत्ति सम्बन्धी कुछ शब्द निम्न हैं- १. हिमवत्पादनिःसृत, २. पारियात्राश्रय, ३. ऋक्षवत्-पादज, ४. विन्ध्यपादप्रसुत, ५. सह्यपादनिःसृत, ६. शुक्तिमत्पादसंजात (भारतवर्षगत नदियों के विषय में)। यहाँ हिमवत्, पारियात्र आदि पर्वत है। निःसृत, प्रसुत आदि

*प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, बच्चीदेवी महाविद्यालय, पाण्डेपार, गोरखपुर

शब्दों में यदि कोई भेद हो, तो वह अज्ञात है। यह भी जानना चाहिए कि पर्वतों के नामों के साथ 'पाद' शब्द के व्यवहार का भौगोलिक कारण है, उसी प्रकार 'पार्श्वनिःसृत', 'आश्रित' आदि शब्दों की भी सार्थकता है। जैसे पर्वत से नदी प्रवाहित होती है, वैसे 'गिरिप्रस्थ' या पर्वतप्रस्थ से भी नदी की उत्पत्ति मानी गयी है जैसा कि वायुपुराण में जाम्बूवती नदी के विषय में कहा गया है।[७]

पर्वत और नदी का पारस्परिक सम्बन्ध- विभिन्न नदियों और पर्वतों के नाम लेकर पुराणों में उनका जो परस्पर संघर्ष दिखाया गया है, वह पुराणकारों के प्रत्यक्षदर्शित्व का ज्ञापक है। मार्कण्डेयपुराण में त्रिपथगामिनी गंगा के साथ मेरु आदि पर्वतों के संघर्ष के विषय में कहा गया है-

मेरु कूटतटान्तेभ्यो निपतन्तो विवर्तिता।
विकीर्यमाण-सलिका निरालम्बापपात सा॥
मन्दरादयेषु पादेषु प्रविभक्तोदका समम्।
चतुर्ष्वपि पपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया॥[८]

इस सार्थक विवरण में नदी-पर्वत संघर्ष की छः अवस्थाएँ (गंगा से सम्बन्धित) वर्णित हुई हैं, यथा- (क) गंगा मेरुकूट के तटान्त से पतित होती है; (ख) वह विवर्तित होती है; (ग) उसका जल विकीर्णमाण होता है; (घ) गिरने के समय वह अवलम्बनहीन हो जाती है; (ङ) मन्दरादि पर्वतों के पाद में उसका जल प्रविभक्त होता है; (च) जल स्रोत के कारण शिलोच्चय उद्भिन्न हो जाते हैं। जल प्रवाह सम्बन्धी यह विवरण कितना दार्शनिक, विवेचित और मार्मिक है, यह सहज ही समझ में आ सकता है।

नदी और पर्वत के पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञान के लिए वायुपुराण अत्यधिक सहायक है। वायुपुराण के कुछ वचन यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। पर्वत के कूटों में नदी परिश्रुत होती है, इसमें स्पष्ट उल्लेख है (पूर्वे कूटे परिश्रुता)[९]। पर्वत के तलों में नदी का पानी विक्षोभित हो जाता है-'क्रीडिता ह्यन्तरतले या सा विक्षोभितोदका'[१०]। पर्वत से नदी निवर्तित हो जाती है और पर्वत से नदी का विभाग भी होता है, यह भी वायुपुराण में स्पष्ट वर्णित है-'मेरुकूटतटान्तेभ्य उत्कृष्टेभ्यो निवर्तिता, विकीर्यमाणसलिला चतुर्धा संसृतोदका'[११]। नदी पर्वतों का विदारण करती है-'एवं शैल-सहस्राणि दारयन्ती महानदी'[१२]। नदी कभी-कभी पर्वत-सानुगामिनी भी होती है[१३] और कभी कूट तट से भ्रष्ट भी होती है।[१४] पर्वतों के कूटों से नदी का पानी संशित हो जाता है; वायुपुराण में इसका स्पष्ट उल्लेख है-'सुपक्ष कूट तटगा तस्माच्च संशितोदका'[१५]। वायुपुराण में यह भी कहा गया है कि पर्वतों की कुक्षियों में पानी विघूर्णित होता रहता है और इससे उसमें तरंग उत्पन्न हो जाते हैं-'तस्य कुक्षिष्वनेकासु भ्रान्ततोया तरंगिणी'[१६]। गण्डशैल से नदी का वेग आहत हो जाता है-'व्याहन्यमासंवेगा गण्डशैलेष्वनेकशः'[१७]। पर्वत-कन्दराओं में नदी विभ्रट होती है।[१८] इत्यादि नदी-सम्बन्धी तथ्य वायुपुराण में वर्णित हैं।

मत्स्यपुराण में भी इस विषय पर विशिष्ट वाक्य मिलते हैं; यथा- 'अम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया'[१९]-यह नदी विशेषण यहाँ मिलता है। पर्वतों के शिखर पर भी नदियाँ गिरती हैं (अद्रीणा शिखरेषु निपत्य सा)[२०] इत्यादि वर्णन इस पुराण में है।

पुराणों में स्थान-स्थान पर नदी की सुन्दरता एवं रमणीयता का वर्णन मिलता है। नदी पद्मों से अलंकृत रहती है, यह प्रायः सभी पुराणों में कहा गया है- 'नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलंकृताः'[२१]। कूर्मपुराण में तो स्वर्ण-पद्म की बात भी कही गयी है[२२], जिसका तात्पर्य चिन्तनीय है। नीलोत्पल भी नदी में होते हैं जैसा कि कूर्मपुराण में कहा गया है-'नद्योविमलपानीयाः चित्रनीलोत्पला कराः'।[२३] वायुपुराण में ऐसे पद में नदी के सुन्दर विशेषण भी दिये गये हैं, यथा-

'जाम्बूनदमयैःपद्मैः गन्धस्पर्शगुणान्वितैः।
नीलवैदूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः।
तथा कुसुमखण्डैश्च महापद्मैरलंकृता॥'[२४]

नदी पुष्पों से सुशोभित होती है, वायुपुराण में कहा गया है-'....नाना पुष्पोत्कटोत्कटा'[२५]। जैसे पुष्प आदि से नदी शोभित होती है उसी प्रकार जलधाराओं से भी नदी की शोभा बढ़ती है। वायुपुराण में यह तथ्य स्पष्ट रूप से वर्णित है-'अनेकाभिः स्रवन्तोभिराप्यावित जला'। जल-प्रपातों से भी नदी शोभित होती है-'चितैःप्रपातविविधैः नैकविस्फारितोदकाः'[२६]। प्रपातों की तरह निर्झरों से भी नदी शोभित तथा विशाल होती है जो 'नैकनिर्झरवप्राढया'[२७], विशेषण से विज्ञात है। हंस और पुष्प विशेष से सम्बन्धित विशेषण भी हैं। मत्स्यपुराण के 'सितहंसावलिच्छना' तथा 'काशचामरणजिता' ये दो विशेषतः द्रष्टव्य हैं।[२८]

वायुपुराण में नदी को 'प्रस्यन्दवाहिनी' कहा गया है।[२९] इसका तात्पर्य स्पष्ट है। पवन से नदी का पानी इतस्ततः धावित होता है। यह 'पवनेनेरितोदका' विशेषण से स्पष्ट है।[३०] वायुपुराण में नदी के लिए 'विपुलोदका' तथा 'सुवर्णमणिसोपाना' विशेषण भी दिये गये हैं।[३१] इनमें द्वितीय विशेषण हमारे देश के वैभव का सूचक

है। नदी पानी से भी विभिद्यमान होती है, यह वायुपुराण के 'विभिद्यमानासलिलैः' विशेषण से स्पष्ट ज्ञात होता है।[३२] पुराणों में यह भी कहा गया है कि नदी स्रोत का रोध कुञ्जादि के द्वारा होता है। सीता नदी निकुञ्ज से निरुद्ध हो गयी है-'सा निकुञ्जनिरुद्धा'[३३] नदी की गति की वक्रता के विषय में पुराणों में कहीं-कहीं कुछ स्पष्ट वचन मिल जाते हैं। वायुपुराण में इस बात की चर्चा की गयी है।[३४]

लिंगपुराण में विभिन्न दिशाओं में बहने वाली नदियों के लिए 'प्राङ्मुखा' (पूर्व की ओर चलने वाली), 'दक्षिणास्या' (दक्षिण की ओर बहने वाली), 'उत्तर प्रभवाः' तथा 'पश्चिमाग्रा' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[३५]

नदी के प्रवाहों के विषय में वायुपुराण में तीन विशेषण आए हैं- क्षीरवाहिनी, मधुमौरेयवाहिनी तथा घृतवाहिनी।[३६] मधुवाहिनी विशेषण भी मिलता है।[३७] अतीत काल में भारत की समृद्धि कितनी थी- यह इन विशेषणों से विज्ञात होता है। मत्स्यपुराण में नदी के स्रोत के लिए दो सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए हैं-'मध्येन शक्रचापाभा' तथा 'तपनीयाभा'।[३८] शक्रचाप=इन्द्रधनुः, तपनीय=स्वर्ण मत्स्यपुराण में कहा गया है। स्रोत में कभी ह्रास और कभी वृद्धि होती है।[३९] इस पुराण में नदी स्वरूप पर एक रोचक वर्णन दिया गया है, जिसमें नदी की उत्पत्ति, नदी के वेग का स्वरूप, नदी के जल स्पर्श, नदी के जल का वर्ण आदि का स्पष्ट चित्र खींचा गया है।[४०]

वामनपुराण में नदी के प्रवाह के लिए कुछ माननीय शब्द मिलते हैं; यथा-"एतासामुदकं पुण्य प्रावृत्काले प्रकीर्तितम्, रजस्वलात्वमेतेषां विद्यते न कदाचन"[४१]। वर्षाकाल में नदी का जल पुण्यमय हो जाता है और नदियों में रजस्वलात्व (=धूलियुक्त) नहीं होता। वस्तुतः ऋतु के अनुसार प्रवाह के स्वरूप की दृष्टि से नदियों के दो भेद पुराणों में किये गये हैं- "प्रावृत् कालवहा नद्यः सदाकालवहास्तथा" अर्थात् कुछ नदियों में केवल वर्षाकाल में प्रवाह रहता है, और कुछ में सब ऋतुओं में प्रवाह रहता है।[४२] नदी की समाप्ति समुद्र में होती है- यह पुराण-प्रसिद्ध मत है। इस दृष्टि से ही नदी के लिए 'समुद्रगा' शब्द पुराणों में प्रयुक्त हुआ है।

नदी को समुद्र की महिषी के रूप में कल्पना कर एक असाधारण काव्यमय वर्णन मत्स्यपुराणकार के रचनाकार ने किया है[४३] जिसमें कहा गया है कि आवर्त नदी रूपिणी नारी की नाभि है, द्वीप उसका जघन है, नलिनी रज नेत्रों की ज्योति है, उत्फुल्ल कमल उसका मुख है, हिमवर्ण फेन उसके वस्त्र हैं, चक्रवाक उसकी भ्रू है, हंस उसके नूपुर हैं, इत्यादि; इस विवरण की शब्दावली रोचक

तथा हृदयावर्जक है।

पुराणकारों ने जल-प्रवाह के चार स्थूल भेद किये हैं-कुल्या, (अण्पजलाशय, नाला), क्षुद्र नदी, नदी, और महानदी। लम्बाई के अनुसार इनके भेद किये थे। स्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्ड में परिणामज्ञापक एक श्लोक इस प्रकार है-

षड्योजनवहा कुल्या नद्योऽल्पा द्वादशैव च।
चतुर्विंशतिगा नद्यो महानद्यस्ततोऽधिका॥

अर्थात् ६,१२,२४ और उससे अधिक योजन परिमाण यथाक्रम 'कुल्या', 'अल्पनदी', 'नदी' और 'महानदी' के हैं। महानदियों की एक सूची ब्रह्मपुराण में मिलती है, जिसमें १२ महानदियों की गणना है- गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, और वितस्ता। इस विषय में आचार्य एकामन का मत तीर्थ प्रकाश में उद्धृत है; यथा-

कुल्याः षड्योजनं यान्ति द्वादश क्षुद्रसंज्ञिताः।
प्रवहन्ति नदीसंज्ञा श्चतुर्विंशतियोजनम्।
प्रवहन्त्यस्ततोऽप्यूर्ध्व महानद्यः प्रकीर्तिताः॥

यह विचार पूर्व के विचार से पूरी तरह मिलता है। पुराणों का यह मत काल्पनिक है क्योंकि यह देखा जाता है कि नदियों के निर्देश में महानदी, क्षुद्रनदी, आदि शब्दों का पृथक-पृथक व्यवहार है। नदी सम्बन्धी अन्य लक्षण इस प्रकार है-

नदी तीर- ब्रह्मपुराण में लिखा है-'सार्धहस्तशतं यावद्गर्भतस्तीरमुच्यते' अर्थात् नदी गर्भ से डेढ़ सौ हाथ पर्यन्त स्थान 'तीर' कहलाता है।

नदी गर्भ- ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है-

भाद्रकृष्ण चतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्।
तावद्गर्भ विजानीयात् तदन्यत् तीरमुच्यते॥

अर्थात् भाद्रकृष्ण चतुर्दशी में जल जहाँ तक प्रवाहित रहता है, वह नदी का गर्भ माना जाता है, उसके अतिरिक्त तीर कहलाता है।

नदी क्षेत्र- ब्रह्माण्डपुराण में नदी क्षेत्र के बारे में लिखा है-"तीरादगव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यतेः।" अर्थात् तीर से गव्यूति (दो क्रोश) परिमाणस्थान नदी क्षेत्र कहलाता है। भट्टोजि ने इस वाक्य का यह अर्थ किया है- तटयो प्रत्येकं क्रोशद्वयाख्यं गंगायां क्षेत्रम्।

क्षेत्र सीमा- भविष्यपुराण में नदी क्षेत्र सीमा के लिए लिखा है- एक योजन विस्तीर्णा क्षेत्र सीमा तटद्वयात्। अर्थात् नदी के दोनों तटों से एक-एक योजन

विस्तीर्ण स्थान क्षेत्र सीमा कहलाता है।

गर्त- छन्दोग परिशिष्ट में नदी गर्त का लक्षण इस प्रकार मिलता है-

धनुः सहस्राण्यष्टौ चगतिर्यासां न विद्यते।
न ता नदी शब्दवहा गर्तास्ते परिकल्पिताः॥

अर्थात् जिनकी गति आठ सहस्र धनुः पर्यन्त नहीं होती, वे नदी नहीं बल्कि गर्त कहलाते हैं।

स्वल्प नदी- मत्स्यपुराण के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है-

यावन्नोदेति भगवान दक्षिणाशाविभूषणः।
तावद् रजोवहा नद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः॥

यहाँ 'करतोया' का अर्थ स्वल्पतोया है। नदी का रजस्वला भाव धर्मशास्त्र में भी स्वीकृत है। इस विषय में व्याघ्रपाद का विचार है-

सिंह कर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः।
तासु स्थानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥

नदी सम्बन्धी पुराणीय विवरणों में यह निर्देश मिलता है कि दो नाम वाली नदियों में प्रत्येक नाम का अधिकार-क्षेत्र कहाँ से कहाँ तक है। स्कन्दपुराण में गंगा और मन्दाकिनी का पार्थक्य माना गया है। उसी तरह पद्मपुराण में यमुना और कालिन्दी का पार्थक्य भी मिलता है। इस तरह नदी की तरह लिंगपुराण और कूर्मपुराण में क्षुद्र नदी शब्द भी आया है। इसी प्रकार वायुपुराण में उपनदी और महानदी शब्द आया है। मत्स्यपुराण (११४/३४) में 'उपनदी' शब्द आया है।

नदी-संगम- नदियों का संगम पौराणिक भूगोल का महत्त्वपूर्ण विषय है। न केवल भौगोलिक दृष्टि में, अपितु सांस्कृतिक दृष्टि में भी संगमों की महत्ता है। अनेक तीर्थ-आश्रम आदि संगम में ही प्रतिष्ठित हैं। इतिहास-पुराण में इन संगमों का असाधारण माहात्म्य भी वर्णित हुआ है। संगम के लिए कुछ सार्थक पर्याय शब्द पुराणों में मिलते हैं; यथा- संग(तुरा संग इत्यादि), संभेद (गंगा सागर संभेद-प्रभास क्षेत्र.३/९६; ३/९२)। 'व्यतिकर' शब्द भी इस अर्थ में प्रयुक्त होता है-'नदीद्वयव्यतिकरे'[४४]। तथैव 'संगति'[४५], सन्धि (अर्वण सन्धि), और 'समागम' (अमासोमसमागम) शब्द भी मिलते हैं। वेणी शब्द नदीद्वय-संयोग के लिए आया है। पद्मपुराण में 'पश्चिमाभिमुखी गंगा कालिन्द्या सहसंगम' कहकर उसी संगम को बाद में वेणी कहा गया है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि दो नदियों के संयोग होने पर ही 'संगम' होता है। पर यह नियम सार्वत्रिक नहीं है, क्योंकि नदी-त्रय संयोग का एक उदाहरण स्कन्दपुराण में मिलता है।[४६]

पुराणों में कहीं-कहीं संगम नामों का कारण भी कहा गया है। नर्मदा के साथ कुब्जा का जो संगम पद्मपुराण में कथित हुआ है, उसका कारण अन्यत्र में कहा गया है। उसी प्रकार ब्रह्मपुराण में जिस वृद्धासंगम का उल्लेख है[४७] उस नाम का कारण इसी स्थल में कहा गया है। ऐसी घटनाओं में कितनी सत्यता है, यह कहना कठिन है। संगमों के नामकरण के आधार पर दोनों नदियों में कौन प्राचीनतर है, इसका पता लगाना कठिन है। संगमगत नदीनामों के क्रम को देखकर इसका निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि संगम नामों में नामों का क्रम व्यत्यास मिलता है। जैसे सरस्वती-अरुण-संगम कहा गया है, उसी प्रकार अरुणा-सरस्वती-संगम शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। 'गंगा-यमुना-संगम' को 'यमुना-गंगा-संगम' भी एकाधिक पुराणों में कहा गया है। यह भी देखा जाता है कि कहीं-कहीं संगमनाम में एक नदी-नाम का ही प्रयोग किया गया है, अन्य नदी नाम का नहीं। शायद कथित नदी की अत्यन्त प्रसिद्धि थी, जिसके कारण दूसरा नाम अव्यवहार्थ रह जाता था। इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं, जिनका अन्वेषण आवश्यक है। निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं- कालिका संगम[४८], कपिला संगम[४९], कावेरी संगम[५०], एरण्डी संगम[५१], परुष्णी संगम[५२], फेना संगम[५३], प्रवरा संगम[५४], सौमित्री संगम[५५], वरदा संगम[५६], वेणी संगम[५७], विदर्भा संगम[५८] इत्यादि।

संगम नाम में सभी नाम नदियों के ही हों, यह आवश्यक नहीं। नदी नाम तथा तीर्थनाम को मिलाकर भी संगम नाम बनता था; यथा- वाराणसी-जाह्नवी-संगम। यहाँ वाराणसी तीर्थ है, नदी नहीं। पुराणों में नर्मदा और गोदावरी के माहात्म्य का जहाँ वर्णन है, वहाँ कुछ ऐसे संगम नाम भी मिलते हैं जिनमें एक नाम तीर्थ का और दूसरा नदी का है। सागर और नदी के नाम से भी संगम नाम बनते हैं। सिन्धु-सागर-संगम नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ सिन्धु नदी का नाम है और सागर पश्चिमोदधि है। संगम स्थल में केवल सागर नाम का उल्लेख भी मिलता है, जैसे- पश्चिमोदधि-सन्धियाअर्णव सन्धि। गंगासागर संगम तो प्रसिद्ध ही है।[६०] भारतवर्ष के प्रसिद्ध संगमों का विवरण अनुलिखित पंक्तियों में ध्यातव्य है- अमासोमसमागम, इक्षुनदी संगम, इरावती नदवला संगम[६१], कुब्जा संगम[६२], कौशिकी-कोका-संगम[६३], कौशिकीदृषद्वतीसंगम[६४], कौशिक्यरूण संगम[६५], कृष्णावेण्यासंगम[६६], गंगागोमतीसंगम[६७], पयोष्णीसंगम[६८], प्रवरासंगम, यमुना संगम, शोणज्योतिरथा संगम, वाग्मतिवणिपति संगम, रेवा संगम, आदि।

उपर्युक्त नदी सम्बन्धी पुराणीय विवरण से यह ज्ञात होता है कि पुराणों में नदी की संख्या दी हुई है। जैस कि स्कन्दपुराण में कहा गया है। पर यह गणना

किस पद्धति से की गयी है और कहाँ तक प्रामाणिक है, यह विचारणीय है। □

सन्दर्भ-

१ द्र. पुराणीय भुवनकोश का आदिम अंश
२ स्कन्दपुराण, ११/५०
३ द्र. पुराणीय भुवनकोश, भारतीय नदियों के गणना के आरम्भ में
४ लिंगपुराण, १/५२/१
५ मत्स्यपुराण, १२१/७
६ पुराण इतिहास अनुशीलन, रमाशंकर भट्टाचार्य, पृ.२१९
७ वायुपुराण, ३५/२९
८ मार्कण्डेयपुराण, ५६/३-५
९ वायुपुराण, ४१/४९
१०. तत्रैव, ४२/५
११. तत्रैव, ४२/१०
१२. तत्रैव, ४२/२०
१३. तत्रैव, ४२/४५
१४ वायुपुराण, ४२/४४
१५. तत्रैव, ४२/४९
१६. तत्रैव, ४२/५५
१७. तत्रैव, ४२/५६
१८. तत्रैव, ४२/७६
१९. मत्स्यपुराण, ५६/५
२०. तत्रैव, ५६/१५
२१. कूर्मपुराण, १/४८/६
२२. तत्रैव, ४८/७
२३. तत्रैव, १/४८/३८
२४ वायुपुराण, ३५/२९
२५. तत्रैव, ४१/१४
२६. तत्रैव, ४२/५४
२७. तत्रैव, ४२/२५
२८. वायुपुराण, ४२/६५
२९. मत्स्यपुराण, अ. ११६
३०. वायुपुराण, ३५/२९
३१. वायुपुराण, ४२/५९

३२. तत्रैव, ४२/९
३३. तत्रैव, ४२/१७
३४ वायुपुराण, ४२/४९, 'अनेकाभोगवक्रांगी'
३५. लिंगपुराण, ५२/२
३६. वायुपुराण, ४२/२७
३७. तत्रैव, ३५/२९
३८. मत्स्यपुराण, ११६/२-३
३९. तत्रैव, ११६/५
४०. मत्स्यपुराण, ११५/१९ तुहिनगिरिभवां महौधवेगां तुहिनगभस्ति समान शीतलोदाम्
तुहिन सदृशहैमवर्णपुञ्जम्।
४१. वामनपुराण, ३४/९
४२. तत्रैव
४३. मत्स्यपुराण, ११६/८-१२

अग्रयां समुद्र महिषीं महर्षिगणसेविताम्।
सर्वलोकस्य चोत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम्।।
हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्।
गोकुलाकुलतोरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्।।
हंससारससंधुष्टां जलजैरूपशोभितम्।
आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरूजघनस्थलीम्।।
नीलनीरजनेत्राभाभुत्फुल्ल कमलाननाम्।
हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्।।
वलाकापङ्क्तिदशनां चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम्।
स्वजलोद्भूतमःतङ्गरम्यकुम्भपयोधराम्।।
हंसनूपुरसंधुष्टां मृणालवलयावलीम्।।

४४ स्कन्दपुराण, २/१/३४/२९
४५. अयोध्याकाण्ड, ०५/१९
४६. स्कन्दपुराण, (कार्तिकमास.) ४/२४-२४
४७ ब्रह्मपुराण, १०७/१
४८. अग्निपुराण, १२०/९
४९. मत्स्यपुराण, १८६/४०
५०. अग्निपुराण, ११३/३
५१. मत्स्यपुराण, २२/३३
५२. मत्स्यपुराण, २२/३३

५३. ब्रह्मपुराण, १२९/१
५४ ब्रह्माण्डपुराण, १०६/१
५५. मत्स्यपुराण, २२/५३
५६. वन, ८५/३५
५७ तत्रैव, ८५/३४
५८. ब्रह्मपुराण, १२१/१
५९. वायुपुराण, ७७/५६
६०. स्कन्दपुराण, प्रभास क्षेत्र माहात्म्य ३/९२
६१. वामनपुराण, ७९/५१
६२. पद्मपुराण, २/९२/३२
६३. वामनपुराण, १४०/७५
६४ तत्रैव, ३४/१८
६५ वन, ८४/१५६
६६. पद्मपुराण, ६/१०८/२७
६७ अग्निपुराण, १०९/१९
६८. मत्स्यपुराण, २२/३३

पुराणों में नगर योजना

डॉ. राम गोपाल शुक्ल*

पुराण वाङ्मय भारतीय संस्कृति का आधार बिन्दु है। पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन आख्यान होता है। 'पुराण' शब्द का उल्लेख अथर्ववेद, उपनिषदों तथा सूत्रों में हुआ है। पाणिनि ने 'पुराण' प्रोन्केषु ब्राह्मण कल्पेषु-(४.३.१०५) में 'पुराण' शब्द का प्रयोग किया है। यास्क की निरुक्ति (३.१९) के अनुसार 'पुराण' के लिए- 'पुरा नवं भवति' कहा गया है, अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है। वायुपुराण[१] में पुराण को विद्या विशेष बोधक माना गया है। पद्मपुराण[२] के अनुसार पुराण के लिए 'पुरा' का अर्थ परम्परा माना गया है, सम्भवतः पुराणों की रचना किसी एक काल विशेष में न होकर भिन्न-भिन्न कालों में की गयी है; अमर कोश में पुराणों के पाँच लक्षण बताये गये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन पाँच लक्षणों में वंशानुचरित का विशेष महत्त्व है।

पुराणों में नगर योजना के अनेकानेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनसे समाज में स्थापत्य कला के क्षेत्र में हुई उन्नति को जाना जा सकता है। नगरीकरण का प्रथम चरण हड़प्पा सभ्यता में परिलक्षित होता है। हड़प्पा सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी। अनेकानेक उत्खनित स्थलों से इस युग के नगर-नियोजन की जानकारी प्राप्त होती है। प्राचीन भारतीय साहित्य आर्यों के ग्राम और नगर-नियोजन की जानकारी प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में ग्राम घोष नगर और संवाह के रूप में चार बस्तियों की जानकारी मिली है।[३] अष्टाध्यायी में ग्राम तथा नगर दोनों का उल्लेख है।[४]

वायुपुराण में वर्णित है कि समाज में जन सन्निवेश की आवश्यकता महसूस की गयी और गृह-निर्माण क्रिया को सम्पन्न किया गया था। मत्स्यपुराण में 'वास्तु' की उत्पत्ति शंकर से मानी गयी है, और देवताओं का वास होने के कारण उसे वास्तु कहा गया है।[५] पुराणों में वास्तु विद्या के विशेषज्ञों की भी चर्चा की गयी है। इसी ग्रन्थ में प्रणेताओं के नाम- भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति मिलते हैं, ऐसे विशेष व्यक्ति को 'स्थपति' कहा गया है तथा उसके परिश्रम तथा दूरदर्शिता आदि गुणों पर मत्स्यपुराण में विशेष

*प्रवक्ता, प्रा.इतिहास विभाग, नन्दिनीनगर पी.जी. कालेज, नवाबगंज-गोण्डा

चर्चा की गयी है। विश्वकर्मा को प्रासाद आदि के निर्माण में दक्ष बताया गया है। श्रीपुर नामक नगर के निर्माण में विश्वकर्मा तथा मय आदि का विशेष योगदान था।[६] मान्धाता की कन्याओं के भवन का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।[७]

नगर निर्माण में कुछ विशेष बातों का हमेशा ध्यान रखा जाता था; पर्वत, जल और मरुस्थल से घिरे स्थान पर नगर-निर्माण होता था। पर्वत संरक्षित दुर्ग को महादुर्ग की संज्ञा दी गयी है।[८] विष्णुपुराण, वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में भी पर्वत, जल और मरुभूमि द्वारा सुरक्षित व संरक्षित भूक्षेत्र को दुर्ग कहा गया है। महाभारत में बताया गया है कि गिरिब्रज नामक नगर पाँच पर्वतश्रेणियों से घिरा था। कौटिल्य ने भी पर्वत एवं मरुभूमि को नगर रक्षा का स्वाभाविक उपादान स्वीकार किया है। नगर योजना में राजमार्गों की भी अच्छी व्यवस्था होती थी।[९] राजमार्गों की चौड़ाई का भी विशेष ध्यान दिया जाता था, इनके सफाई तथा प्रकाश की भी व्यवस्था होती थी। इसको गन्दा करने वाला व्यक्ति अपराधी माना जाता था। सैन्धव क्षेत्र, कौशाम्बी तथा तक्षशिला के उत्खनन से राजमार्ग के साक्ष्य भी प्राप्त किये गये हैं।

भवन निर्माण में भूमि का चयन भी महत्त्वपूर्ण था। भवन निर्माण में शुभ-मुहूर्त का भी ध्यान रखा जाता था; चैत्र में गृह निर्माण प्रारम्भ करने से व्याधि-ग्रस्त, वैसाख में धेनु तथा रत्न प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ तथा श्रावण में दास भृत्य तथा पशु आदि की प्राप्ति, भाद्र में हानि, आश्विन में भार्या वियोग, कार्तिक में धन-धनादि की प्राप्ति, मार्गशीर्ष में पुत्र प्राप्ति, पौष में चोर भय, माघ में गृहदाह, फाल्गुन में स्वर्ण तथा अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है।[१०] इसके अतिरिक्त रविवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष सभी दिन मंगलकारी कहे गये हैं। गृह निर्माण के आरम्भ में अश्विन, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाति, हस्ती और अनुराधा नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं।

पुराणों में भवन निर्माण में स्तम्भों के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है। मत्स्यपुराण में रूचक- चार कोने, बज्र- आठ कोने, द्विवज- सोलह कोने, तथा प्रलीनक- बत्तीस कोनों वाले तथा वृन्त स्तम्भ वृत्ताकार होने की बात कही गयी है। इसके साथ इन स्तम्भों के अलंकरण के लिए परम लता, बल्लरी, पत्र दप्रण आदि का भी प्रयोग किया जाता था। गृह निर्माण में गृह तथा गृह के द्वार की दिशा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। पूर्व दिशा में इन्द्र और जयन्त, पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त और वरुण, उत्तर दिशा में भल्लाट और स्रौक्यं तथा दक्षिण दिशा में याम्य और वितथ के पदों पर निर्मित द्वार मंगलकारी और शुभकर माना गया

है।[११] इसके साथ भवन में प्रकाश तथा हवा का भी विशेष ध्यान दिया जाता था।

नगर नियोजन में सौन्दर्यीकरण का भी विशेष ध्यान रखा जाता था, नगर व उसके आसपास उद्यान लगाये जाते थे। ब्रह्माण्डपुराण में वर्णित है कि नगर के उद्यान में फूल, फल, पल्लव और सौरभयुक्त वृक्ष आरोपित होते थे।[१२] जामदग्निपुरी के चारों ओर पुन्नाग, चम्पक, मदार एवं कदम्ब आदि वृक्षों के जंगल थे।[१३] पारिजात वृक्ष घर का आभूषण माना जाता था।[१४] नगर में जलाशय का निर्माण इसमें सीढ़ियाँ, जलाशयों में कमल तथा पक्षियाँ भी सुशोभित की जाती थीं, एवं इसमें स्त्री, पुरुषों के जल क्रीड़ा का भी वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक युग में नगरों का निर्माण एक निश्चित योजना के अनुसार किया जाता था। नगर निर्माण में सुरक्षा स्थान आदि का विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त नींव की मजबूती, मुख्य द्वार की दिशा, निर्माण का मुहूर्त, हवा, स्वच्छ जल, जलाशय, फूल-फल, वृक्षों का आरोपण आदि बातें तत्युगीन समाज के लोगों की वैज्ञानिक सोच को सिद्ध करते हैं। नगर नियोजन में मानवीय स्वास्थ्य को विशेष महत्त्व दिया गया था। जलाशयों में स्त्री-पुरुष का जल क्रीड़ा करना उनकी स्वच्छन्द मानसिकता का भी परिचायक है। गृह निर्माण को प्रारम्भ करने के लिए निर्धारित दिन तथा महीने उनके अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करते हैं। ☐

सन्दर्भ-

१. वायुपुराण, १/२००३
२. पद्मपुराण,५.२.५३- पुरा परम्परां वष्टिपुराणं तेन तत् स्मृतम्।
३. महाभाष्य, ७.३.१४
४. अष्टाध्यायी, ७.३.१४
५. मत्स्यपुराण, २५२/५-१४
६. ब्रह्माण्डपुराण, ४/३१/८
७. विष्णुपुराण, ४/२/९७
८. मत्स्यपुराण, २०३/२
९.वही, १०३/२
१०.वही, २५३/२-५
११.वही, २५५/७-९
१२.ब्रह्माण्डपुराण, ४/३१/५४-५५
१३.विष्णुपुराण, ५/३५/८, ब्रह्माण्डपुराण, ३/२७/१७
१४.विष्णुपुराण, ५/३/३४

पुराण-वेद-इतिहास

राजेश कुमार शर्मा*

हिन्दुओं के धार्मिक तथा तद्‌तिरिक्त साहित्य में पुराणों का एक विशेष स्थान है। वेदों के बाद इन्हीं की मान्यता है। महाभारत के साथ इन्हें 'पंचम वेद'[१] कहा गया है। इनका बाह्य रूप और अन्तःस्वरूप प्रायः रामायण, महाभारत और स्मृतियों के समान ही है, इन पुराणों को समष्टि रूप से भारतीय समाज का उसकी धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृति का लोकसंगत विश्वकोष ही समझना चाहिए।

प्राचीन काल से प्राणित होने के कारण पुराण कहा जाता है। भारतीय विधाओं की परम्परा में वैदिक चिन्तन की धारा निरन्तर प्रवाहित प्रतीत होती है। वैदिक तत्त्वज्ञान को इतिहास और पुराणों में पुष्पित और फलित होते प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। महाभारत के आदिपर्व का निर्देश भी 'इतिहास पुराणाभ्यां देवं समुपबृंहयेत्'[२] जैसा ही अन्तर्दृष्टि को प्रमाणित करता है।

महाभारत के अलावा पौराणिक परम्परा में भी वेदों के साथ इतिहास पुराण की प्रासंगिकता को इन्हीं शब्दों में अनेक बार दोहराया गया है। यह अन्तःसम्बन्ध उभयपदी भी हो सकता है। अर्थात् वेदसम्मत अर्थदृष्टि के लिए यदि इतिहास और पुराण के सन्दर्भ आवश्यक थे तो पुराणों तक सुविस्तृत सन्दर्भों में वेदसम्मत मौलिक अर्थवत्ता भी प्रामाणिक सिद्ध होती है। वैदिक अर्थदृष्टि के लिए इतिहास और पुराण साहित्य के बीच स्वयं वेदव्यास भी सूत्रधार कहे जा सकते हैं। क्योंकि परवर्ती इतिहास और पुराणों की रचना से उनका अटूट सम्बन्ध माना जाता है। इतिहास और पुराणों के सन्दर्भ में नचिकेता के उपाख्यान का मूल स्रोत सायणार्थ के अनुसार संहिता भाग से भी सम्बद्ध है। वेद, इतिहास और पुराण साहित्य में जीवन सातत्य नचिकेतोपाख्यान के विकास-क्रम में स्पष्ट दिखाई देता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १३५वें सूक्त में यम देवता को निर्देशित किया गया है। इस सूक्त के ऋषि को कुमारो यामायनः कहा गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र-

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा को विश्पतिःपिता पुराणॉअनु वेनति॥

*उपग्रन्थाध्यक्ष, रतनसेन महाविद्यालय, बाँसी - सिद्धार्थनगर

की व्याख्या में आचार्य सायण 'यमः' का अर्थ 'मम' करते हुए 'नचिकेतम्' का उल्लेख करते हैं। जहाँ तक संहिता पाठ का प्रश्न है, ऋषि के रूप में यम कुमार से नचिकेतस् का कोई सन्दर्भ स्पष्ट नहीं है। इसी प्रसंग में परवर्ती ब्राह्मण, उपनिषद् आदि सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण बन पड़ते हैं।

पुराणों में वंश परम्परा का जो इतिहास आता है, वह प्राचीनतम है और इसकी बहुत सी सामग्री पुरातन और मूल्यवान है। अतः पुराणों का प्रमाण सर्वथा त्याज्य समझने का कोई कारण नहीं है। पुराणों के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों का रुख समय-समय पर बदलता रहा है। पुराणों में कलाओं और ऐतिहासिक घटनाओं के गड्डमड्ड होने से तथा युगों के सम्बन्ध में उनकी कुछ विचित्र ही कल्पना होने के कारण भारतीय इतिहास के संशोधन के आरम्भ काल में ईसा की १८वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों तथा १९वीं शताब्दी के आरम्भ में पुराणों का कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं माना जाता था। पीछे कैप्टेन स्पेक ने नूविया (कुशद्वीप) जाकर नील नदी के उद्‌गमस्थान का पता लगाया और उससे पुराणों के वर्णन का समर्थन हुआ। तब पुराणों पर आख्या होने लगी थी। ताम्रपत्रों और मुद्राओं से ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ निकालने की प्रवृत्ति इसी समय उदय हुई, इससे पुराणों का मूल्य घटने लगा और कहीं-कहीं पुराणगत परम्परा का इतिहासवृत्त अयथार्थ भी प्रमाणित हुआ। कुछ बातों में बौद्ध ग्रन्थों ने भी पुराणों की बातें काट दी। इस प्रकार सन्देह बढ़ने पर पुराणों पर अविश्वास उत्पन्न हुआ।

पुराण अब भारत में परम्परागत इतिहासवृत्त के एक बहुत बड़े प्रमाण माने जाने लगे हैं। ऐतिहासिक सामग्री की खोज के लिए आजकल पुराणों का विशेष रूप से आलोचनात्मक अध्ययन होता है। आधुनिक इतिहासकार और प्राच्यतत्त्वविद रैप्सन, स्मिथ, जायसवाल, भण्डारकर, रायचौधरी, प्रधान, रंगाचार्य, जयचन्द्र आदि ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों, समीक्षाओं, प्रबन्धों और लेखों में पौराणिक सामग्री का उपयोग किया है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के व्यापक इतिहास के लिए पुराणों का बड़ा महत्त्व है क्योंकि इनमें अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, शासन संस्थाएँ, धर्म, तत्त्वज्ञान, कानून और उसकी समस्याएँ, ललित कलाएँ, शिल्पशास्त्र आदि विविध विषयों के विस्तृत प्रकरण हैं। □

सन्दर्भ-

१. ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धताः। इतिहासपुराणं च पंचमो वेद उच्यते॥ 'ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नाम के चार वेद कहे गये हैं। इतिहास पुराण को पंचम वेद कहा जाता है।'

२ महाभारत, आदिपर्व, १.२६७

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची-

१. समेकित अद्वैत विमर्श; सम्पादक-शर्मा, अम्बिका दत्त; विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, २००५

२. वैदिक संस्कृति एवं उसका सातत्व; सम्पादक-दूबे, सीताराम; प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, २००६

३. हिन्दू-संस्कृति अंक; चौबीसवें वर्ष का विशेषांक, कल्याण; गीताप्रेस, गोरखपुर।

ऐतिहासिक स्रोत के रूप में भागवत पुराण का मूल्यांकन

नीतू द्विवेदी*

संस्कृत वाङ्मय और भारतीय संस्कृति में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। पुराण भारतीय धर्म, इतिहास और संस्कृति के मुख्य उद्गाता हैं। सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य प्राचीन विद्या का वह श्रीयन्त्र है जिसकी साधना से अनेक रहस्य खोले जा सकते हैं।

पुराणों का प्रधान उद्देश्य पौराणिक वीरों एवं महापुरुषों के वंश एवं वंशानुचरित को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का प्रतिपादन करना है। आधुनिक इतिहास ग्रन्थों की भाँति ये तिथियों एवं घटनावलियों का क्रमबद्ध इतिहास भले ही न उपस्थित करते हों, फिर भी भारत के सांस्कृतिक इतिहास के अनुशीलन के लिए वे बहुमूल्य हैं। पुराणों के विषय प्रतिपादन की शैली अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। पुराणों की सरल भाषा, प्रासादिक शैली, बोधगम्य विवेचन पद्धति, रोचक आख्यान आदि सामान्य पाठक के लिए अत्यन्त रोचक है और इसी से यह समस्या खड़ी होती है कि उनमें से ऐतिहासिक तथ्यों का दोहन कैसे किया जाय।

पुराविदों एवं इतिहासकारों ने महापुराणों में प्रत्येक की तिथियों पर समुचित प्रमाणों के साथ विचार किया है। बलदेव उपाध्याय ने भागवत पुराण को ५०० ई. से ९०० ई. के मध्य रखा है[१] जबकि पार्जिटर ने इसका काल ९वीं शताब्दी के आस-पास सुझाया है।[२] पुराणों का संकलन परम्परा की रक्षा के लिए उन ब्राह्मणों द्वारा किया गया, जिन्होंने उसे अपना महत्त्वपूर्ण दायित्व माना किन्तु उनमें ब्रह्मणोचित ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव था। यही कारण है कि बाद के राजाओं का उल्लेख नहीं किया गया। भागवत पुराण में भी यह कमी उल्लेखनीय है जिसमें कलियुग के राजाओं की उस सूची में कोई परिवर्द्धन नहीं किया गया है, जहाँ तक चार शताब्दियों पहले वायुपुराण ने समाप्त की थी।[३]

स्रोत के रूप में भागवत पुराण का मूल्यांकन महाभारत के साथ किया जाना उचित होगा क्योंकि महाभारत वासुदेव कृष्ण, नारायण और विष्णु के सम्प्रदायों का परिचय देने वाला सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। महाभारत सूतों की सम्पत्ति था और

*शोध छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

विकास की अगली अवस्था में इस पर भृगुवंशी ब्राह्मणों का अधिकार हो गया। भार्गव ब्राह्मण धर्म व नीति के विशेषज्ञ थे। शान्ति पर्व के भगवद्गीता तथा नारायणीय खण्डों पर भार्गवों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। नारायण के प्रति भार्गवों की भक्ति पक्षपात के स्तर तक थी जिसका प्रतिबिम्ब पुराणों में मिलता है। पुराणों में कहा गया है कि देवीश्री का जन्म भृगु ऋषि की पुत्री के रूप में हुआ था, जिसे ऋषि ने नारायण को समप्रित कर दिया। भागवत पुराण में वर्णन है कि ऋषियों ने भृगु को किस प्रकार देवताओं में सबसे श्रेष्ठ देवता का पता लगाने का दायित्व सौंपा था। भृगु ने ब्रह्मा, शिव व विष्णु के साक्षात्कार के बाद नारायण विष्णु को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया।[४]

पुराणों में ब्रह्म पुराण में कृष्ण कथा का सबसे प्राचीन वर्णन है। उसके बाद तृतीय-चतुर्थ शताब्दी में विष्णु पुराण की रचना से इस कथा को विस्तार मिला। भागवत पुराण में भक्ति व वैष्णव सम्प्रदाय को सर्वाधिक लोकप्रियता मिली, इसमें विष्णु पुराण की कथाओं का विस्तार है। यह बात नरसिम्हा की कथा के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। यह कथा हरिवंश, मत्स्य तथा कुछ अन्य पुराणों में भी पायी जाती है।[५]

पुराण चूड़ामणि, साक्षात् श्रीहरि विग्रह स्वरूप, भक्ति सर्वस्य, निगम, कल्पतरु, वैष्णव श्रवणामृत श्रीमद्भागवत पुराण कलियुग में हिन्दू समाज का सर्वाधिक आदरणीय एवं पूज्य ग्रन्थ है। सकाम भक्ति हो या निष्काम योग, नवधा भक्ति हो या ज्ञान साधना, द्वैत भाव हो या अद्वैत दर्शन सभी मार्गों के रहस्यों को समन्वित करने वाला यह अलौकिक दिव्य ग्रन्थ लौकिक इच्छाओं व पारलौकिक सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। वैष्णव सम्प्रदाय का यह प्रमुख ग्रन्थ है और वेदों, उपनिषदों तथा दर्शन के गूढ़ व गम्भीर विषयों का निरूपण इसमें इतनी सरलता से किया गया है कि इसे भारतीय धर्म एवं संस्कृति का विश्वकोष ही कहा जाना चाहिए। त्रितापों को शान्त करने वाले इस ग्रन्थ में कुल १२ स्कन्ध हैं तथा छन्दोबद्ध १८००० श्लोक हैं, जिनमें भगवान् विष्णु के चौबीस अवतारों की कथा का वर्णन है। वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता काफी बढ़ जाती है।

इस महापुराण के प्रथम स्कन्ध में भक्ति योग का भली-भाँति निरूपण हुआ है और साथ ही भक्ति योग से उत्पन्न एवं उसके स्थिर रहने वाले वैराग्य का भी वर्णन किया गया है। युग धारण के द्वारा शरीर त्याग की विधि, ब्रह्मा और नारद संवाद, अवतारों की संक्षिप्त चर्चा तथा महत्तत्त्व आदि के क्रम से प्राकृतिक सृष्टि की उत्पत्ति आदि विषयों का वर्णन द्वितीय स्कन्ध में हुआ है। तृतीय स्कन्ध

में गुणों के क्षोभ से प्राकृतिक सृष्टि और महत्त्व आदि के साथ प्रकृति विकृतियों के द्वारा कार्य-सृष्टि का वर्णन है। इसके बाद ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन है। तदनन्तर स्थूल और सूक्ष्म काल का स्वरूप, लोक-पद्म की उत्पत्ति, प्रलय-समुद्र से पृथ्वी का उद्धार करते समय वराह भगवान् के द्वारा हिरण्याक्ष का वध, देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यों की सृष्टि एवं रुद्र की उत्पत्ति का प्रसंग है, इसके पश्चात अर्धनारी-नर के स्वरूप का विवेचन है, जिससे स्वायम्भुव मनु और शतरूपा का जन्म हुआ था। कर्दम प्रजापति का चरित्र, उनसे मुनि पत्नियों का जन्म, कपिल अवतार और कपिल-देवाहुति संवाद का प्रसंग आता है। चौथे स्कन्ध में मरीचि आदि नौ प्रजापतियों की उत्पत्ति, दक्ष यज्ञ का विध्वंस, राजर्षि ध्रुव एवं पृथु का चरित्र तथा प्राचीन बर्हि और नारद जी के संवाद का वर्णन है। पाँचवें स्कन्ध में प्रियव्रत का उपाख्यान, नाभि, ऋषभ और भरत के चरित्र, द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत और नदियों का वर्णन, ज्योतिश्चक्र के विस्तार एवं पाताल तथा नरकों की स्थिति का निरूपण हुआ है। छठें स्कन्ध में दक्ष पुत्रियों की संतान, देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पर्वत और पक्षियों का जन्म-कर्म, वृत्रासुर की उत्पत्ति और उसकी परम गति का वर्णन है। सातवें स्कन्ध में मुख्यतः दैत्यराज हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष के जन्म-कर्म एवं दैत्य शिरोमणि महात्मा प्रह्लाद के उत्कृष्ट चरित्र का निरूपण है। आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों की कथा, गजेन्द्र मोक्ष, विभिन्न मन्वन्तरों में होने वाले जगदीश्वर भगवान् विष्णु के अवतार कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीव आदि अमृत प्राप्ति के लिए देवताओं और दैत्यों का समुद्र मंथन और देवासुर संग्राम आदि विषयों का वर्णन है। नवें स्कन्ध में मुख्यतः अन्य पुराणों की भाँति पुराणों के एक प्रमुख लक्षण वंशानुचरित का वर्णन है। मनु व इनके पाँच पुत्रों के वंश, इक्ष्वाकु वंश, निमि के वंश, चन्द्रवंश, विश्वामित्र के वंश, भरत के वंश, मगध के देशीय राजाओं के वंश, अनुद्रह्यु, तुर्वसु और यदु आदि वंशों का वर्णन है। दशम् स्कन्ध श्रीमद्भागवत का सबसे विस्तृत व महत्त्वपूर्ण स्कन्ध है। इसमें ९० अध्याय हैं, यह स्कन्ध पुनः दो खण्डों पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में विभाजित है। पूर्वार्द्ध के ४९ अध्यायों में भगवान् कृष्ण के प्राकट्य से लेकर अक्रूर जी के हस्तिनापुर जाने तक की कथा है। उत्तरार्द्ध के शेष ४१ अध्यायों में प्रभु के जरासन्ध से युद्ध व द्वारिकापुरी के निर्माण से लेकर भगवान् के मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाने तक की कथा है। ग्यारहवें स्कन्ध में इस बात का वर्णन हुआ है कि भगवान् ने ब्राह्मणों के शाप के बहाने किस प्रकार यदुवंश का संहार किया। श्रीकृष्ण-उद्धव संवाद का अद्भुत वर्णन है, उसमें सम्पूर्ण

आत्मज्ञान और धर्म निर्णय का निरूपण हुआ है और अन्त में यह बात बतायी गयी है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने आत्मयोग के प्रभाव से किस प्रकार मर्त्यलोक का त्याग किया। बारहवें स्कन्ध में विभिन्न युगों के लक्षण और उनमें रहने वाले लोगों के व्यवहार का वर्णन किया गया है तथा यह भी बतलाया गया है कि कलियुग में मनुष्यों की गति विपरीत होती है। चार प्रकार के प्रलय और तीन प्रकार की उत्पत्ति का वर्णन भी इसी स्कन्ध में है।[६]

अनेक पुराणों में विष्णु, नारायण, वासुदेव और गोपाल कृष्ण से होते हुए वैष्णव धर्म के विकास की परम्परा विवृत्त है, किन्तु वासुदेव कृष्ण, कुरुवंश, यदुवंश के वीरों के अद्‌भुत कार्यों और भूमिकाओं को, महाभारत की वर्णन परम्परा को यदि किसी पुराण ने समुचित ढंग से आगे बढ़ाया है तो वह भागवत पुराण है। इस पुराण ने भक्ति आन्दोलन को अद्वितीय लोकप्रियता प्रदान की जिसके फलस्वरूप महाभारत युद्ध के ऐतिहासिक यथार्थ को प्रतिष्ठा मिली है।

श्रीमद्‌भागवत पुराण के अन्त में श्रीमद्‌भागवतमाहात्म्यम् के अन्तर्गत चार अध्याय हैं जिसके चतुर्थ अध्याय में श्रीमद्‌भागवत का स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ता के लक्षण तथा श्रवण विधि और माहात्म्य वर्णित है। जिसके अनुसार श्रीमद्‌भागवत का सेवन चार प्रकार का है- सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण। जिसमें यज्ञ की भली-भाँति तैयारी की गयी हो, बहुत सी पूजा-सामग्रियों के कारण जो अत्यन्त शोभा-सम्पन्न दिखाई दे रहा हो और बड़े ही परिश्रम से बहुत उतावली के साथ सात दिनों में ही जिसकी समाप्ति की जाय, वह प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ श्रीमद्‌भागवत का सेवन 'राजस' है। एक या दो महीने में धीरे-धीरे कथा के रस का आस्वादन करते हुए, बिना परिश्रम के जो श्रवण होता है, वह पूर्ण आनन्द को बढ़ाने वाला 'सात्त्विक' सेवन कहलाता है। तामस सेवन वह है जो कभी भूल से छोड़ दिया जाय और याद आने पर फिर से आरम्भ कर दिया जाय, इस प्रकार एक वर्ष तक आलस्य और अश्रद्धा के साथ चलाया जाये वह 'तामस' सेवन भी न करने की अपेक्षा अच्छा और सुख देने वाला है। जब वर्ष, महीना और दिनों के नियम का आग्रह छोड़कर सदा ही प्रेम और भक्ति के साथ श्रवण किया जाय, तब वह सेवन 'निर्गुण' माना गया है।

राजा परीक्षित और शुकदेव के संवाद में भी जो भागवत का सेवन हुआ था, वह निर्गुण ही बताया गया है। उसमें जो सात दिनों की बात आती है वह राजा की आयु के बचे हुए दिनों की संख्या के अनुसार है, सप्ताह कथा का नियम करने के लिए नहीं। □

सन्दर्भ-ग्रन्थ :

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ. ५३७-५७०
२. एफ.ई. पार्जिटर, एणशेयेन्ट इण्डियन 'हिस्टोरिकल ट्रेडिशन', पृ. ५७
३. पूर्वोक्त
४. भागवत पुराण, १०.८९ : २.१९
५. सुवीरा जायसवाल, वैष्णव धर्म का उद्‌भव और विकास, पृ.१४-१५
६. भागवत पुराण, १२.३२.

भारतीय इतिहास लेखन और इतिहास-पुराण परम्परा

राजेन्द्र देव मिश्र*

पुराण संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि है। भारतीय संस्कृति के सम्यक् अभिज्ञान के लिए पुराण साहित्य का अनुशीलन अत्यावश्यक है। भारतीय परम्परा में पुराणों को ही इतिहास ग्रन्थ कहा गया है जिन्हें पंचमवेद अथवा इतिहास वेद की संज्ञा दी गयी है।

भारतीय इतिहास लेखन में इतिहास-पुराण परम्परा का विशेष महत्त्व है। इतिहास-पुराण परम्परा का बीजारोपण हमें वैदिक साहित्य में ही होता हुआ दिखाई पड़ता है। पुराण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेकशः हुआ है। वहाँ इसका अर्थ है 'प्राचीन काल में होने वाला'। यास्क के अनुसार 'पुरानव भवति इति पुराणम्' अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया बना रहता है अर्थात् हर काल में प्रासंगिक बना रहता है, वह पुराण है। वायु पुराण के अनुसार- 'यस्मात् पुराहि अनिति इति पुराणम्' अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था वह पुराण है। पद्मपुराण के अनुसार 'पुरा परम्परया वहित काम्यते' अर्थात् जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है, वह पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण में 'पुरा एतत् अभूत' अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ, यह अर्थ पुराण को परिभाषित करता है। चूँकि इतिहास भी अतीतकालीन मानव के जीवन की घटनाओं से सम्बद्ध है इसलिए भारतीय विचारधारा में पुराण एवं इतिहास को एक ही अर्थ में स्वीकार करने की परम्परा रही है।

पुराण साहित्य में मानव जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के अतिरिक्त देवों, राक्षसों, किन्नरों, अतिमानवीय एवं इतर मानवीय घटनाओं के विवरण के साथ-साथ यत्र-तत्र सम्भव एवं असम्भव के बीच भेद का अभाव होने के कारण फ्लीट, स्मिथ, वर्नेल, विण्टरनित्स प्रभृति विद्वान इन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ मानने के लिए तैयार नहीं हैं। विण्टरनित्स ने पुराण ग्रन्थों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"Puranas have Akhyanas, Myths and Legends and thus they have no Historical facts but episodes."

पुराण साहित्य की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिये गये नकारात्मक विचार भारत की ऐतिहासिक अवधारणा को ठीक से न समझ पाने के कारण है। उन्होंने पुराणों को पाश्चात्य ऐतिहासिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है। पुराणों में घटनाओं के विवरण के प्रति कम जबकि संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की ओर अधिक ध्यान दिया गया। इन मूल्यों के संरक्षण से जो पात्र सम्बन्धित हैं, केवल उन्हीं का उल्लेख पुराण साहित्य में मिलता है।

विष्णु पुराण में पुराणों के पाँच लक्षण बताये गये हैं- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित। इनमें से वंशानुचरित अंश जिसमें विभिन्न वंशावलियाँ मिलती हैं, इतिहास शास्त्र के अत्यधिक निकट है। पं. भगवद्दत्त ने इतिहास और पुराण के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है कि 'इतिहास आत्मा है और पुराण उसका शरीर।' इस पुराण रूपी शरीर में प्रवेश कर इतिहास आत्मा मूर्तिमान हो उठती है। इतिहास और पुराण की अति समीपता के कारण ही कतिपय विद्वान् इसके लिए 'पुराणेतिहास' शब्द का प्रयोग करते हैं।

वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर इतिहास-पुराण का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में इसका उल्लेख गाथा, नाराशंसी एवं आख्यान के साथ हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार से विद्या सीखने के अवसर पर नारद मुनि ने अपनी अधीत विधाओं में 'इतिहास-पुराण' का भी नामोल्लेख किया है और इसे पंचमवेद की संज्ञा दी है। महाभारत के आदिपर्व में इसे इतिहासोत्तम के साथ-साथ पुराण भी कहा गया है। वायुपुराण अपने को प्राचीनतम इतिहास कहता है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ. विश्वम्भर शरण पाठक का मत है कि वैदिक साहित्य में उल्लिखित 'गाथा' तथा 'नाराशंसी' सामान्यतया इतिहास तथा पुराण के प्रतिरूप हैं।

ब्राह्मण साहित्य में भी इतिहास-पुराण परम्परा के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। गोपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है कि 'एवमिमे सर्ववेदाः निर्मिताः सकल्याः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः ऐतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः।' आरण्यकों एवं उपनिषदों में भी इतिहास पुराण परम्परा का विकसित रूप द्रष्टव्य है। तैत्तिरीय आरण्यक में उल्लिखित है- 'ब्राह्मणानि, इतिहासान पुराणानि कल्यान गाथा नाराशंसीरिति।' वृहदारण्यक उपनिषद् में पुराणों की उत्पत्ति वेदो के समान ही बतायी है। सूत्र ग्रन्थों में भी इतिहास पुराण परम्परा के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। गृह्यसूत्र में एक स्थलज पर कहा गया है कि 'आयुष्मतां कथां कीर्तियन्तो

*इतिहास लेखन : चुनौतियाँ एवं नये प्रतिमान से

मांगल्यानीतिहास पुराणानि।' अर्थात् चिरंजीवी मनुष्यों की कथाएँ, कीर्तियाँ और मांगलिक इतिहास पुराण का पाठ करना श्रेयस्कर है।

रामायण में वाल्मीकि ने पुराणों की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को स्पष्ट किया है और राजा को उनमें वर्णित कथाओं को सुनने का निर्देश दिया है। महाभारत में पुराण, इतिहास और आख्यानों के महत्त्व को कई स्थलों पर रेखांकित किया गया है।

धार्मिक साहित्य के साथ ही साथ लौकिक साहित्य में भी इतिहास-पुराण के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। अर्थशास्त्र में एक स्थल पर इतिहास तथा पुराण की ओर निर्देश किया गया है- 'सामर्ग्युजुवैदास्त्रयी अथर्ववेद इतिहास वेदौच वेदाः।' कौटिल्य का निर्देश है कि राजा अपराह्न में इतिहास का श्रवण करें। उन्होंने इतिहास के अन्तर्गत आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि की गणना की है- 'पश्चिम इतिहास श्रवणे। पुराण इतिवृत्तं आख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रं, अर्थशास्त्र चेतीतिहासः।' महाभाष्यकार पतंजलि ने भी इतिहास और पुराण को एक विधा के रूप में स्वीकार किया है जिससे ज्ञात होता है कि शुंगकाल में यह परम्परा प्रशस्त रूप में विद्यमान थी।

व्यासस्मृति में वेद का पारंगत विद्वान् होने के लिए छः वेदांगों के साथ-साथ पुराणों की भी मीमांसा करना आवश्यक बताया गया है- 'मीमांसते च यो वेदान् षडभिरगैः विस्तरैः। इतिहास पुराणानि समवेत वेदपारगाः।' शुक्र ने अपने नीतिसार में बत्तीस विद्याओं का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत मीमांसा, तर्कशास्त्र, वेदान्त, योग, स्मृति के साथ ही साथ इतिहास-पुराण भी शामिल हैं। इसी प्रकार दर्शन साहित्य में भी इतिहास-पुराण की एक नियमित परम्परा के विद्यमान होने का संकेत मिलता है।

पौराणिक ग्रन्थों में हमें ऐतिहासिक सामग्री- गाथा, आख्यान, उपाख्यान, कल्पशुद्धि तथा नाराशंसी के रूप में प्राप्त होती है। पुराणों में निहित ऐतिहासिक अवधारणा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

१. समय की गति चक्रिक है जबकि पाश्चात्य विचारधारा समय की गति को रेखीय मानती है।

२. इतिहास केवल मानवीय घटनाओं के वर्णन से ही सम्बन्धित नहीं है।

३. पुराणों से सम्भव एवं असम्भव के बीच भेद नहीं किया गया है।

प्राचीनतम पुराण 'मत्स्यपुराण' से सातवाहन राजवंश के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। इसी प्रकार विष्णुपुराण तथा वायुपुराण मौर्यवंश एवं गुप्तवंश का इतिहास जानने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। पुराणों में जहाँ भी राजनीतिक अराजकता एवं आर्थिक विपन्नता का वर्णन हुआ है उसका सम्बन्ध हम पूर्वमध्यकालीन भारत से स्थापित कर सकते हैं। पुराणों में शक, यवन, कुषाण, हूण जैसी विदेशी जातियों का उल्लेख होना इनके ऐतिहासिक महत्त्व को द्विगुणित कर देता है।

वैदिक साहित्य से लेकर धर्मशास्त्रों तक में वर्णित इतिहास-पुराण परम्परा के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीयों की अपनी एक विशिष्ट ऐतिहासिक परम्परा थी। इसी परम्परा के तहत पुराण साहित्य का सृजन हुआ। यद्यपि हम पुराणों को मार्क्स एवं हीगल द्वारा रचे गये ऐतिहासिक ग्रन्थों की कोटि में तो नहीं रख सकते किन्तु यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इनमें ऐतिहासिक तथ्य पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं जो भारतीय इतिहास के लेखन में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं। □

पुराण विद्या

कृतिका शाही*

पुराण एक विद्या का नाम है। संस्कृत-वाङ्मय में जो चौदह या अट्ठारह विद्याओं की गणना कई जगह की गयी है, उनमें पुराण-विद्या को प्रमुख स्थान दिया गया है। इनमें ही चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद या संगीत और स्थापत्यवेद या शिल्प) और जोड़ देने से अट्ठारह विद्याएँ हो जाती हैं। इन सबमें महर्षि याज्ञवल्क्य ने पुराण-विद्या को प्रमुख स्थान दिया है। उस पुराण-विद्या की अनादिता का ही हम विचार कर रहे हैं। यूरोपीय विद्वानों या भारतीय ऐतिहासिकों ने खास-खास ग्रन्थों पर विचार किया है। ग्रन्थों पर विचार करना और बात है, और विद्या पर विचार रखना उससे बिल्कुल भिन्न है। धर्मशास्त्र की अट्ठारह या अट्ठाईस स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा प्रकाशित हुई हैं। सैकड़ों निबन्ध भी धर्मशास्त्र के बने हैं। आज भी धर्मोपदेश के बहुत से ग्रन्थ बन रहे हैं, किन्तु इससे धर्मशास्त्र आज का सिद्ध नहीं होता। व्याकरण या धर्मशास्त्र विद्यारूप से बहुत प्राचीन ही कहे जाएँगे। इसी प्रकार, हम भी पुराण-विद्या की चर्चा कर रहे हैं कि वह अनादि या सबसे प्राचीन है। भगवान् वेदव्यास ने जहाँ वेद को चार संहिता रूप में विभाजित किया, वहाँ पुराण को भी संक्षिप्त कर अट्ठारह विभागों में बाँट दिया। वह पुराण-विद्या क्या है, जिसे अनादि कहा जा रहा है? पुराणों में ही इस विद्या का लक्षण इस प्रकार मिलता है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई? इसका लय कहाँ और कैसे होगा? सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है या मनुष्य-जाति के प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकारारूढ़ हुए? उनके चरित्र कैसे थे? और इस सृष्टि और प्रलय के बीच समय कितना लगता है, इन पाँचों बातों की विवेचना जिसके द्वारा की जाय अथवा यों कहें कि इन पाँचों बातों का ज्ञान जिस विद्या से प्राप्त हो, वही पुराण-विद्या है।

*शबरी बालिका महाविद्यालय, सिखड़ी, गाजीपुर

विद्या और ज्ञान शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। हमारे दर्शनशास्त्रों में सूक्ष्म विचारपूर्वक यह सिद्धान्त निश्चित किया गया है कि ज्ञान स्व-स्वरूप से अनादि ही है। ज्ञान को कोई उत्पन्न नहीं कर सकता। सब प्रपंचों का मूल तत्त्व जो परब्रह्म या परमात्मा नाम से कहा जाता है, उसे ही ज्ञान-रूप वेदों, पुराणों और दर्शनों ने बताया है। हम जिसे ज्ञान शब्द से कहते या समझते हैं, उसमें दो अंश होते हैं- एक 'प्रकाश्य' और एक उसका 'प्रकाश'। इन्हीं को 'ज्ञान का विषय' और 'ज्ञान' नाम से कहा जाता है। जैसे हमें एक पर्वत का ज्ञान हुआ, वहाँ पर्वत उस ज्ञान के द्वारा प्रकाश्य है, और वह ज्ञान पर्वत का प्रकाश। प्रकाश्य पर्वत को ज्ञान का विषय भी कहते हैं। वेदान्तादि दर्शनों का कहना है कि विषय बदलते रहते हैं, प्रकाश-अंश कभी नहीं बदलता। कभी पर्वत का ज्ञान, कभी ब्रह्म का ज्ञान, कभी पशु का ज्ञान, कभी मनुष्य का ज्ञान, यों विषयों में परिवर्तन होता रहेगा, किन्तु उनका ज्ञान या प्रकाश एक रूप ही है। पर्वत का प्रकाश या वृक्ष का प्रकाश, प्रकाशांश में जुदे-जुदे नहीं होते। अतः न बदलने वाला यह प्रकाश या ज्ञान नित्य है। विषयों के परिवर्तन के कारण हम उसमें परिवर्तन का व्यवहार कर लेते हैं। इस विचार से ज्ञान की अनादिता सिद्ध हुई। सृष्टि आदि उक्त पाँचों विषय भी प्रवाह-रूप से नित्य हैं। जैसे, किसी नदी के तट पर बैठा हुआ मनुष्य अपनी आँखों के सामने निरन्तर ही जल देखता है। यह नहीं कहा जा सकता कि पहले क्षण में जो जल उसकी आँखों के सामने था, वही दूसरे क्षण में भी है; क्योंकि वह जल तो वेग से निकल गया। दूसरे क्षण में दूसरा जल, तीसरे क्षण में तीसरा जल, यह क्रम चलता रहेगा। किन्तु, कोई-न-कोई जल उसकी आँखों के सामने अवश्य रहेगा। इसे ही दार्शनिक भाषा में प्रवाहनित्यता कहते हैं।

ऐसी नित्यता सृष्टि आदि विषयों में भी है। हमारे दर्शन, पुराण आदि सभी का सिद्धान्त है कि ऐसा कोई समय नहीं होता, जिसमें यह कहा जाय कि आज ही सृष्टि हुई है, इससे पूर्व सृष्टि थी ही नहीं। वर्तमान सृष्टि का आदिकाल निकाल सकते हैं, किन्तु उससे पूर्व प्रलय और प्रलय से पूर्व भी सृष्टि थी। यों सृष्टि और प्रलय का प्रवाह अनादिकाल से निरन्तर चलता रहता है। सृष्टि और प्रलय का प्रवाह जब अनादि हुआ तब उसका ज्ञान या उसकी विद्या भी अनादि हुई; क्योंकि बिना ज्ञान से वस्तु की सत्ता सिद्ध होती ही नहीं। यदि सृष्टि का ज्ञान न होता, तो सृष्टि हुई, यह कहा ही जाता किस आधार पर?

वेद-विद्या और पुराण-विद्या में इतना ही भेद है कि प्रकृति जिस नियम से काम करती है, जिस क्रम से सृष्टि होती है, सृष्टि का सिलसिला जिस प्रकार

होता है, इन सब प्रकृति के नियमों को पुराण-विद्या बता देती है, जबकि वेद विद्या हमारे प्रतिकूल जाने वाले प्रकृति के नियमों को अनुकूल बना लेने का प्रकार बताती है। इसीलिए वेद यज्ञ-वेद कहा जाता है। यज्ञ ही वह विद्या है, जिससे हम भी नये-नये पदार्थ पैदा कर सकते हैं और प्रकृति को अनुकूल बना कर उपयुक्त वृष्टि को प्राप्त या अनुपयुक्त वृष्टि का निवारण कर सकते हैं। यों, समाज के और व्यक्ति के सभी हितसाधक नियमों को यज्ञ-वेद बताता है। किन्तु परिवर्तन करने की प्रक्रिया या यज्ञ-वेद से पहले प्रकृति के नियमों का जानना अत्यावश्यक है। जब तक प्रकृति के नियमों का ही ज्ञान न हो, तब तक परिवर्तन की प्रक्रिया किस आधार पर चलायी जा सकेगी? इस विचार के अनुसार यज्ञ-वेद से पुराण-वेद प्राचीन सिद्ध होता है, यही पुराणों ने बताया भी है।

पुराण-वेद में शब्दों पर इतना बल नहीं दिया जाता। अर्थ वही रखा जाता है, किन्तु शब्दों में परिवर्तित कर देते हैं। आगे उनकी शिष्य-परम्परा में भी नई पुराण-संहिताएँ बनती हैं और उनमें वक्ता और श्रोता के संवाद के अनुसार शब्दों में परिवर्तन या घटी-बढ़ी होती है। इसलिए, पुराण संहिता को स्मृति-रूप माना जाता है। स्मृतियों में शब्दों की आनुपूर्वी पर बल नहीं प्रकाशनार्थ शब्दों में सुविधानुसार परिवर्तन भी होता रहे, तो कोई हानि नहीं। इस शब्द विन्यास का कर्तृत्व होने के कारण ही भगवान् व्यास पुराणों के कर्ता कहे जाते हैं; किन्तु प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से पुराण-संहिता भी वेद के समान ही अनादि हैं।

दुःख की बात है कि इस प्रकार की यह अनादि विद्या मध्यकाल में भारतवर्ष में अर्द्धशिक्षित मनुष्यों के हाथ में पड़कर दुर्दशाग्रस्त हो गयी। अपने शरीर का शृंगार कर स्त्रियों आदि के मध्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित करना ही पुराण-कथा का एकमात्र स्वरूप रह गया। उसी अवस्था में केवल शास्त्रार्थ या वाद-विवाद को ही शास्त्र समझने वाले भारतीय विद्वानों ने ऐसे श्लोक भी गढ़ डाले कि-

शास्त्रेषु नष्टाः कवयो भवन्ति काव्येषु नष्टाश्च पुराणपाठाः।
तत्रापि नष्टाः कृषिमाश्रयन्ते नष्टाः कृषेर्भागवता भवन्ति॥

अर्थात्, जो मनुष्य शास्त्रों में गति नहीं प्राप्त कर सकते, शास्त्र जिनकी बुद्धि में नहीं आते, वे कवि बनते हैं और काव्य भी जो नहीं समझ सकते, वे पुराणपाठक होते हैं; पुराणपाठ में भी जिनकी गति नहीं होती, वे खेती में लगते हैं और जो खेती भी नहीं कर सकते, वे भागवत बनते हैं, अर्थात्, भक्तों का ढोंग कर अपने को पुजवाने लगते हैं। यहाँ शास्त्रज्ञ केवल न्यायशास्त्र आदि के वेत्ता

वाद-विवादपटु पण्डितों को ही माना गया है। जिस 'कवि' शब्द की प्राचीनकाल में अत्यन्त महिमा थी, 'कविपुराणमनुशासितम्' इत्यादि वाक्यों में जहाँ ईश्वर को भी कवि कहा गया था उस 'कवि' शब्द को भी यहाँ इतनी दुर्दशा की गयी कि जो शास्त्रों को नहीं समझ सकते, वे ही कवि होते हैं और पुराणपाठकों को तो कवियों से भी बहुत नीचे गिराया गया है। यह सब मध्यकालीन भारत की विचार महिमा थी कि जब वादप्रधान ग्रन्थों को ही उच्च आसन प्राप्त हो गया था। विशेष दुःख की बात तो यह है कि ऐसे पद्यों को उस काल के विद्वानों ने आर्ष ग्रन्थों में भी समावेशित कर दिया। अस्तु, जो कुछ हुआ और उससे जो भारत की दुर्दशा हुई वह प्रत्यक्ष ही है। यहाँ हमारा वक्तव्य इतना ही है कि पुराण-विद्या भारत की बड़ी महनीय विद्या है, जिसका संकेत प्रारम्भिक प्रस्तावना में हम कर चुके हैं। वेद के अर्थज्ञान में भी पुराण से बहुत सहायता मिलती है, जैसा कहा गया है कि-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

अर्थात्, इतिहास और पुराणों के द्वारा ही वेदों के अर्थ का अनुशीलन करना चाहिए। जो पुरुष अल्पश्रुत होते हैं; अर्थात् इतिहास-पुराणादि को नहीं जानते, उनसे वेद डरता रहता है कि ये पुरुष कहीं मुझ पर प्रहार न कर दें। इसका निदर्शन आज स्पष्ट रूप से देखने में आ रहा है कि केवल ४ मन्त्र-संहिताओं को वेद समझकर उन पर मनमानी कल्पनाएँ की जा रही हैं। भारतीय परम्परा तो यही है कि मन्त्रों का अर्थ ब्राह्मण-ग्रन्थों द्वारा समझा जाता है और उनका भी स्पष्टीकरण पुराण एवं इतिहासों के द्वारा होता है। तभी वेद की गम्भीरता जिज्ञासुओं के हृदय में प्रकट होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि पुराणों में वेदार्थ के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा गया। 'पुराण वेद के विरोध के लिए ही बने हैं', यह यूरोपीय विद्वानों की कल्पना सर्वथा निस्सार है।

भूमण्डल विद्या-

पुराणों में भूमण्डल के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह इतना विस्तृत एवं विवेकपूर्ण वर्णन है कि जिसका मनन करने से ऋषिजनों की प्रतिभा पर चकित रहना पड़ता है। पृथ्वी का नाप, तोल, व्यास, परिधि, क्षेत्रफल और पार्थिव आकर्षण की सीमा, तथा पृथ्वीस्थ समस्त पर्वतों की स्थिति, विस्तार, उनकी चोटियों की ऊँचाई और पृथ्वी गर्भ में धँसी हुई गहराई, तत्सम्बद्ध धातुओं तथा रत्नों का ब्योरा, इसी प्रकार प्रसिद्ध नदियों, सरोवरों, नदों, महारण्यों और

तत्कालीन वन-उपवनों का संस्थान एवं सामयिक सम्राटों द्वारा निर्धारित तत्तत् प्रदेशों की हदबन्दी- गर्ज है कि जो बातें आज उन्नत कहे जाने वाले जमाने में भी 'इदमित्थं' नहीं जानी जा सकी हैं, पुराणों में उन सब का सर्वांगपूर्ण एवं यथार्थ वर्णन विद्यमान है। उदाहरण के लिए भूमि में धँसे हुए पर्वतपादों को ही लीजिए। वर्तमान अनुसन्धायक आज तक न इस रहस्य को जान सके हैं, न भविष्य में जान सकेंगे ऐसी सम्भावना है; क्योंकि जरीब और फीतों को डालकर नाप=पैमाइश करने वाले जड़वादी मौजूदा अनुसन्धायक भूगर्भ में धँसने की योग्यता नहीं रखते। यह रहस्य तो वे ही आत्मवादी महर्षि जान सकते हैं जो कि अष्टांग योग द्वारा- 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड के परोक्ष पदार्थों को भी 'हस्तामलक' कर सकने की क्षमता रखते हों। यह योग्यता केवल भारतीय ऋषियों की ही बपौती थी इसलिए आज विज्ञान के प्रकाश में जो कुछ भी दीख पड़ता है वह पुराणवर्णित रहस्यों की धुँधली छायामात्र है।

खगोल विद्या-

पुराण ग्रन्थों में खगोल सम्बन्धी सभी बातों का विवेकपूर्ण एवं विशद विवेचन किया गया है। इनमें सूर्य-चन्द्रादि ग्रह, राहु-केतु आदि उपग्रह, नक्षत्रमाला, राशिचक्र, आकाशगंगा, धूमकेतु, उल्कापिण्ड, दिदहक पिण्ड और ध्रुव - गर्ज है कि सभी प्रकार के आकाशचारी अण्ड और पिण्डों का न केवल वर्णनमात्र है, अपितु लौकिकी भाषा में उनक उत्पत्ति, परिवर्तन और गति-विगति आदि का रहस्य भी स्पष्ट एवं सरल रीति से प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त अमुक ग्रह, उपग्रह का परिमाण क्या है? तथा वह पृथ्वी से कितनी दूर स्थित है? एवं किस गति से कितने समय में किस मार्ग से घूमता है?- इत्यादि बातें भी भली-भाँति प्रकट की गयी हैं। खगोल तत्त्ववेत्ता बहुत दिनों तक अनुसंधान करने के बाद अभी अभी यह समझ सके हैं कि ग्रहों की गति-विगति का प्रभाव पृथ्वी पर भी अवश्यमेव पड़ता है। अब तो कई गवेषक यहाँ तक स्पष्ट कहने लग पड़े हैं कि 'पुच्छलतारा' निकलने से पुरुषों के स्वभाव तमोगुण के आवेश में आ जाते हैं और वे अकारण आपस में एक दूसरे के रुधिर के प्यासे बन जाते हैं। यूरोपियन ज्योतिषियों ने मंगल का नाम ही मार्स (Mars) रखा है जो कि युद्धकालीन मार्शल शब्द से सम्बन्ध रखता है। मंगल या शनैश्चर की विशेष दशा में भी अब अनिष्ट फल का होना माना जाने लगा है, परन्तु हिन्दू शास्त्रों का यह महत्त्व है कि हमारे पूर्वजों ने इन सब बातों को आज से सहस्रों वर्ष पूर्व न केवल जाना ही था बल्कि दुष्टग्रहों के प्रभाव से बचने के उपायों को भी खोज निकाला

था, जिसका धुँधला किन्तु सत्यस्वरूप फलित ज्योतिष के रूप में अद्यावधि विद्यमान है।

खगोल का विषय यूँ तो प्रायः सभी पुराणों में आया है, परन्तु कूर्मपुराण और भविष्यपुराण का वर्णन बड़ा ही मनोहर है। नवीन खगोलवेत्ता ग्रह, उपग्रहों की दूरी के विषय में अभी तक कोई मत स्थिर नहीं कर सके, उनके मत अभी तक साध्यकोटि में ही समझने चाहिए। उत्तरोत्तर विज्ञान ज्यों-ज्यों उन्नत होता जा रहा है, त्यों-त्यों आधुनिक मत भी पुराण-वर्णन के निकट आ रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि पुराणोक्त खगोलविद्या त्रिकालदर्शी महर्षियों की तपश्चर्या का ही फल है।

विज्ञान विद्या-

पुराण-सागर में वैज्ञानिक सिद्धान्तरूप अनमोल रत्नों की कमी नहीं है, परन्तु उन्हें प्राप्त करने के लिए गहरा गोता लगाने की आवश्यकता अवश्य है। जो लोग किनारे की कंकड़ियों को देखकर या ऊपर तैरते हुए भाग से घबड़ा कर हिम्मत हार बैठते हैं, वे मनुष्य उन अमूल्य मोतियों के अधिकारी नहीं हो सकते। उन्हें प्राप्त करने के लिए तो 'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ' वाली कहावत को चरितार्थ करने की आवश्यकता है।

इस लघु कलेवर पुस्तक में हम उन सभी मोतियों का भण्डार खोल दिखाएँ, यह तो अति कठिन बात है क्योंकि किसी वैज्ञानिक मत का निरूपण करने के लिए कितनी भूमिका की और कितने उपसंहार की आवश्यकता पड़ती है, यह केवल विज्ञानवेत्ता ही जान सकते हैं। दूसरों के लिए तो - 'धरा फिलासफी में क्या लफ्ज़तराशी के सिवा।' तथापि हम इस प्रघट्ट में कतिपय वैज्ञानिक सिद्धान्तों के दिग्दर्शन का प्रयत्न अवश्य करेंगे।

छन्द-शास्त्र-

अग्निपुराण में (अध्याय ३२८ से ३३५ पर्यन्त) छन्द-शास्त्र का समावेश है, इसमें लौकिक और वैदिक छन्दों के भेद का अद्वितीय वर्णन है।

व्याकरण विद्या-

पिछले दिनों काशी से प्रकाशित होने वाले 'सुप्रभातम्' संस्कृत पत्र में स्वर्गीय श्री कवि चक्रवर्ती देवीप्रसाद जी शुक्ल का बनाया हुआ श्लोकबद्ध व्याकरण छपता था। हम उसे बड़े चाव से पढ़ा करते थे, और वह इसलिए कि- 'वैयाकरण श्रुतिकटु= कर्कशभाषी होते हैं'- ऐसा लोक प्रवाद चला आता है। पाणिनि के 'टिड्ढाणञ्' ने और मुरारिकविकृत 'अनर्घ-राघव' के 'तत्तादृक्.....

...' आदि पद्यों ने इस प्रवाद को और भी दृढ़ बना रखा है। कवि चक्रवर्ती जी ने उसे सुललित शब्दों में बाँधने का प्रयत्न किया था। हमें हर्ष था कि-चलो अब 'शुष्को वृक्षास्तिष्ठत्यग्रे' के स्थान में 'नीरसतरूरिह विलसति पुरतः' हो जायेगा। जो कि शब्द-सौन्दर्योपासकों के मनोविनोद का पर्याप्त साधन सिद्ध होगा। परन्तु जब हमने अग्निपुराण का परायण (३४९ अध्याय से ३५९ अध्याय पर्यन्त) किया तो श्लोकबद्ध व्याकरण प्राप्त हो गया जिसे देखकर हम फूले नहीं समाये, और कवि चक्रवर्ती जी के प्रयत्न को प्रयासमात्र समझा। जो सज्जन उत्सुक हों वहाँ देखकर लाभ उठाएँ। इस तरह पुराणों में व्याकरण-शास्त्र का भी समावेश विद्यमान है।

अलंकार विद्या-

अलंकार विद्या का मूल अग्निपुराण है- यह बात सभी अलंकार धुरन्धरों ने स्वीकार की है। चतुर्दश-भाषा- वारविलासिनीभुजंगम पं. विश्वनाथ जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य दप्रण' के आरम्भ में ही इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है। अग्निपुराण में गुण, दोष, अलंकार, नाटकादि भेद, एवं नायक-नायिका भेद- गर्ज है कि साहित्य सम्बन्धी सभी बातों का विशद विवेचन किया गया है, इसलिए हम अग्निपुराण-वर्णित इस प्रघट्ट को 'साहित्य कल्पतरु का बीज' कह दें तो अत्युक्ति न होगी। इने-गिने पद्यों में अलंकार का ऐसा सर्वांगपूर्ण वर्णन करना श्री वेदव्यास जी का ही काम है।

इस समय साहित्य विद्या में 'काव्य प्रकाश' का स्थान बहुत ऊँचा है, परन्तु नाटकादि वर्णन का अभाव उसमें बेतरह खटकता है। परन्तु अग्निपुराण में प्रायः सभी साहित्यिक विषयों का समावेश रहने के कारण वह उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है; अतः हम उसे ही 'सर्वतोमुख' अलंकार-शास्त्र कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त अग्निपुराण के साहित्य में हमें कई विशेषताएँ भी दीख पड़ती हैं। उदाहरण के लिए हम कतिपय ऐसे अलंकारों के नाम पेश करते हैं जो आधुनिक ग्रन्थों में नहीं मिलते। यथा-

छायामुद्रा तथोक्तिश्च युक्तिगुंफनया सह।
वाकोवाक्यमनुप्रासश्चित्तं दुष्करमेव च॥
ज्ञेया नवालंकृतयः शब्दानामित्यसंकरात्॥
(अग्निपुराण, ३४४. १९-२०)

इन नौ शब्दालंकारों में से 'अनुप्रास' को छोड़कर शेष अलंकार इस समय पुराण वर्णित नामों से व्यवहृत नहीं होते। श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्ध का

- 'जयति तेऽधिकम्' आदि गोपीगीत नामक पूरा एक अध्याय विलक्षण शब्दालंकारों से परिपूर्ण है। साम्प्रतिक अलंकार-ग्रन्थों में ढूँढ़ने पर भी उक्त अलंकार का नाम नहीं मिलता- 'जयति ते' आदि में द्वितीय अक्षर 'य'कार है तो वह चारों ही पादों में 'य'कार ही है। इसी प्रकार 'न खलुगोपिकानन्दनो भवान्' के चारों ही पादों में द्वितीय अक्षर 'ख'कार है। इसी प्रकार अन्यान्य पद्यों में यही बात पायी जाती है। निःसन्देह यह अलौकिक अलंकार अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। यदि साहित्यप्रेमी अग्निपुराण का (अध्याय ३३८ से ३४४ तक) परायण करें तो उन्हें और भी अनेक विशेषताएँ मिल सकती हैं, जो विस्तारभयात् यहाँ प्रकट नहीं की जा सकतीं।

शब्दकोश विद्या-

अग्निपुराण के अध्याय ३६० से ३६९ तक शब्दकोश है, जिसके पढ़ने से प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध कोशकार अमर सिंह ने अपने कोश की रचना में उक्त ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता ली है। कदाचित् 'वादी भद्रं न पश्यति' न्याय के अनुसार कोई यह अड़ंगा लगाये कि- 'अमरकोश' ग्रन्थ के पश्चात उक्त पुराणों की रचना हुई है, और उसके श्लोक ही पुराणकार ने अपनाये हैं- तो हम उसके उत्तर में यही कहेंगे कि अमरकोश की विद्यमानता में उसके कुछ पद्य अपने ग्रन्थ में लिख लेने से सिवाय कागज काले करने के लिए जो कि अपने ग्रन्थ में मौलिक विषय लिखने की अद्वितीय योग्यता रखता हो- ऐसी सम्भावना भी नहीं कर सकते। संस्कृत ग्रन्थकारों ने किसी दूसरे कवि के शब्द, अर्थ और भाव आदि का चुराना 'तेऽन्यैवन्ति समश्नन्ति' के अनुसार अतिघृणित कार्य बताया है, अतः 'अमरकोश' के श्लोकों को अग्निपुराण ने उद्धृत किया हो यह असम्भव है। हाँ ! अमर सिंह अपने ग्रन्थ का गौरव बढ़ाने के लिए आर्ष ग्रन्थों से उचित उद्धरण अवश्य ले सकता है क्योंकि अन्यान्य कवियों ने भी अपने ग्रन्थ की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ऐसा किया है। जैसे कविकुलगुरु कालिदास जी ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य के आरम्भ में ही 'अथवा कृत-वाग्द्वारे' कहकर वाल्मीकि जी की उक्तियों को अपना लक्ष्य बताया इस तरह पुराणों में 'शब्दकोश' का भी समावेश विद्यमान है।

निरुक्त विद्या-

वेदार्थ परिज्ञान के लिए निरुक्त का जानना आवश्यक है, इसीलिए इस शास्त्र को वेदांगों में परिगणित किया गया है। इस समय इस विषय का यास्कमुनिकृत 'निरुक्त' एकमात्र ग्रन्थ मिलता है। परन्तु हमने पुराणों का पाठ करते हुए यत्र-तत्र बहुत से शब्दों का निर्वचन देखा है। यदि जहाँ-तहाँ बिखरे हुए इन निर्वचनरूप

मोतियों को एक सूत्र में ग्रथित किया जाए तो विवुध-वन्द के कण्ठ की शोभा के लिए अच्छी खासी वैजयन्ती माला तैयार हो सकती है। इसके अतिरिक्त जिन शब्दों को लेकर पुराणों पर 'अश्लीलता' का मिथ्या कलंक लगाया जाता है वह भी बहुत कुछ दूर हो सकता है।

आयुर्वेद विद्या-

स्वास्थ्यरक्षा आयुर्वेद पर ही निर्भर है। लोग विदेशी दवाओं का सेवन करके धन, धर्म तथा स्वास्थ्य तीनों चीजों को खो रहे हैं, परन्तु अपने आयुर्वेद की ओर ध्यान नहीं देते; परमात्मा ही उन्हें सुधार सकता है। प्राचीन ऋषियों का तो सिद्धान्त है कि- 'यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्योषधं हितम्॥' अर्थात्- जो प्राणी जहाँ उत्पन्न होता है उसके लिए उसी देश की औषधियाँ हितकर हो सकती हैं। परन्तु आज स्वास्थ्य खराब हिन्दुस्तानियों का हो और बोतलें खाली की जाएं इंग्लैंड की और फ्रांस की। यह अन्ध परम्परा अत्यन्त अनुचित है। कुछ अदूरदर्शी महाशय भारतीय चिकित्सा शास्त्र पर अपूर्णता का मिथ्या आक्षेप किया करते हैं परन्तु हम उन्हें दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि आयुर्वेद के 'चरक सुश्रुत' आदि सिद्ध ग्रन्थों का तो जिक्र ही क्या है, यदि हम पुराण ग्रन्थों की घरेलू दवाओं को भी बर्ताव में लाने लगें तो हमारी दैनिक आवश्यकता पूर्ण करने के लिए तो विश्वविद्या-भण्डार हमारे पुराण ही पर्याप्त हैं। उदाहरणार्थ हम यहाँ पुराणोक्त चिकित्साशास्त्र का कुछ दिग्दर्शन कराते हैं-

गजायुर्वेद विद्या-

बालबिल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह।
अतिसारविनाशाय पिण्डी भुञ्जीत कुञ्जरः॥
(अग्निपुराण, पृ. २८९)

अर्थात्, यदि हाथी के दस्त बन्द करने हों तो छोटे बेल, लोध और आँवलों को कूटकर मिश्री मिला कर पिण्डिये बना हाथी को खिला दें, इससे दस्त बन्द हो जाएंगे।

इसी प्रकार हाथियों के अन्यान्य रोगों की चिकित्सा भी पुराणों में लिखी है। इसी प्रकार पुराणों में अनेक विद्याओं का विवरण प्राप्त होता है जिसका वैज्ञानिक महत्त्व हमें प्रतिपादित करना है। □

विष्णुपुराण में भारतीय समाज

डॉ. भारती सिंह*

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने,
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च,
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥

विश्व की समस्त सभ्यता की जानकारी हमें उस तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टान्तों को पढ़कर या पुरातात्त्विक प्रमाणों को समझकर ही हो पाती है। सम्पूर्ण विश्व में भारत अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के लिए प्रसिद्ध रहा है। पूरी दुनिया में दूसरा कोई ऐसा देश नहीं जहाँ सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और समस्त सामाजिक पक्ष किस युग में कैसे होंगे इसकी जानकारी के क्रमबद्ध साहित्यिक साक्ष्य से प्राप्त होती हो, परन्तु यदि भारतीय पुराणों और ग्रन्थों को पढ़ा जाय उनकी ऐतिहासिक विवेचना की जाय तो भारतीय समाज के विविध पक्षों का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है। समस्त भारतीय धर्मग्रन्थों का इस दृष्टि से अध्ययन एक दुरूह एवं कठिन कार्य है तथापि हम यदि पौराणिक साहित्य पर ही केन्द्रित हों तो भारतीय समाज का बहुआयामी चित्र देखा और समझा जा सकता है। विशेष रूप से विष्णुपुराण भारतीय समाज के विविध पक्षों को उजागर करता है।

वर्तमान (कलि) का भारतीय समाज कैसा होगा? राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या होंगी? क्या धर्म अपना स्वरूप खो देंगे? क्या पारिवारिक मूल्य समाप्त हो जायेंगे? इन सभी बातों पर विष्णुपुराण के दसवें, ग्यारहवें अध्याय में स्पष्टतः उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ-

वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम्।
न सामऋग्यजुर्धर्म विनिष्पादनहैतुकली॥ (वि.पु. ६/१/१०)
विवाहं न कलौ धर्म्या न शिष्यगुरुसंस्थितिः।
न दाम्पत्यक्रमो नैव वह्निदेवात्मकः क्रमः॥ (वि.पु. ६/१/११)

वर्तमान समय में सामाजिक परिस्थिति कितनी तीव्र गति से बदली है, नैतिक

*शोध सहायक, विवेकानन्द अध्ययन केन्द्र, दिग्विजयनाथ पी.जी.कॉलेज, गोरखपुर

मूल्यों का जो क्षरण हुआ है, परस्पर आपसी सम्बन्ध चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक जिस विश्वासघात का शिकार हुए हैं, वे सब भारतीय ऋषियों द्वारा हजारों वर्ष पहले दिव्य दृष्टि से उल्लिखित किया जा चुका है और यह वर्णन केवल विष्णुपुराण ही नहीं बल्कि 'रामचरितमानस' आदि ग्रन्थों में भी देखा जा सकता है।

सभी युगों का अपना युगधर्म होता है और उनके अपने मूल्य होते हैं। सभी युगों के अपने मानदण्ड होते हैं और अपनी मर्यादाएँ होती हैं; उन्हीं के अनुरूप व्यक्ति को चलना होता है। परन्तु वर्तमान में जिस प्रकार से सामाजिक मूल्यों में गिरावट आयी है और सामाजिक परिदृश्य जिस तीव्रगति से बदला है वह आश्चर्यजनक है। वर्तमान में कोई भी व्यक्ति या सम्बन्ध विश्वसनीय नहीं रह गया। स्वार्थपरता ही सर्वोपरि है; यदि आप मेरे किसी कार्य के हैं तो आप मूल्यवान हैं अन्यथा व्यर्थ हैं।

वर्तमान में धनवान एवं बलशाली ही सर्वगुण सम्पन्न है फिर चाहे वह किसी भी वर्ण या धर्म का क्यों न हो, चाहे उसके आचरण उचित हों या अनुचित सभी बलवान और धनवान के आगे ही नतमस्तक होते हैं। यह बात विष्णुपुराणकार पहले ही कह चुका है। यथा-

यत्र कुत्र कुले जातो बलि सर्वेश्वरः कलौ।
सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो योग्यः कन्यावरोधने॥
(वि.पु ६/१/१२)

कलियुग में चरित्रवान और सदाचारी होना ही अवगुण है क्योंकि उसमें इसी छली समाज और समय के साथ चलने का गुण नहीं होगा। यह हालात केवल बाहरी सम्बन्धों के ही नहीं हैं बल्कि घर के भीतर व्यक्तिगत सम्बन्धों के भी हैं-

परित्यक्ष्यन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम्॥
(वि.पु ६/१/१८)

अर्थात् वही पति पूज्य होगा जो धनवान होगा जिसके पास धन नहीं होगा वह त्याग दिया जायेगा। यह स्थिति केवल यहीं नहीं बल्कि यदि मानें तो वही पुत्र भी श्रेष्ठ होगा जो सबसे ज्यादा धन का उपार्जन करेगा, वही मित्र उत्तम होगा जो धनवान होगा तथा हमारे स्वार्थों की जिससे अधिक पूर्ति होगी अर्थात् सम्बन्धों का आधार विचार नहीं धन होगा।

यो वै ददाति बहुलं स्वं स स्वामी सदा नृणाम्।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चाभिजनता तथा॥
(वि.पु ६/१/१९)

भारतीय धर्माचार्यों और भाष्यकारों द्वारा भी अर्थ की महत्ता बतायी गयी है। प्राचीन भारतीय जीवन के चार पुरुषार्थों में धर्म के बाद दूसरा स्थान अर्थ को ही दिया गया है, फिर काम तथा अन्त में मोक्ष की बात बतायी गयी है। परन्तु अर्थ का उपार्जन धर्मगत आधार पर हो इस बात पर बल दिया गया है, काम की तृप्ति भी धर्म के ही आधार पर हो जिससे हम अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकें; जिससे हमारा लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जीवन की सार्थकता सिद्ध हो सके। परन्तु क्या यह समाज आज ऐसा ही जीवन जी रहा है? यह सोचने और समझने का विषय है।

कहाँ गये वो सत्यवान और सावित्री के पति-पत्नी सम्बन्ध, गुरु ही ब्रह्मा है और गुरु ही विष्णु ऐसे भाव, अर्जुन और द्रोण के सम्बन्ध, कहाँ हैं वो श्रवण कुमार? कहाँ है भरत जैसा भाई और राजा शिवि जैसा त्यागी, जो एक कबूतर के प्राणों के रक्षार्थ अपने प्राणों की बलि देने से भी नहीं चूका। ये सब उसी भारतीय समाज के लोग हैं; पर कहाँ गये आज वे आदर्श और कहाँ है यह वर्तमान समाज?

यही कमोवेश स्थिति वर्तमान राजनीति की भी है। वर्तमान भारतीय राजनीतिक संरचना लोकतान्त्रिक है। प्राचीन भारत में राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। कहीं-कहीं गणतन्त्र के भी प्रमाण मिलते हैं। भारतीय शास्त्रकारों ने कहा है कि राजा को अपनी प्रजा को सदैव पुत्र के समान समझना चाहिए और उसी के हितार्थ प्रत्येक कार्य करना चाहिए। और प्रजा को भी चाहिए कि वो अपने राजा को अपना पिता समझे; पर क्या आज की जो राजनीतिक व्यवस्था है उसमें राजा अर्थात् राजनेता और प्रजा को अर्थात् जनता को ऐसा ही मानते हैं? आज का नेता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए पूरी दुनिया का धन इकट्ठा करना चाहता है और प्रजा भूखों मर रही है, पर कोई फर्क नहीं पड़ता नेता पर। भारतीय भाष्यकार कहते हैं कि जो राजा प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार नहीं करता वह नरक का अधिकारी होता है; तो फिर आप ही निर्णय करें कि वर्तमान नेता अपनी करनी से कहाँ जाएँगे, इन्हें ईश्वर का भी डर धन और स्वार्थ के आगे नहीं सताता है।

आगे भारतीय भाष्यकारों का कहना है कि राजा प्रजा से इस प्रकार कर ले कि उसे पता भी न चले परन्तु वर्तमान प्रजा कर देने से कराह रही है। इस सन्दर्भ

में विष्णु पुराण का निम्न उल्लेख अत्यन्त प्रासंगिक हो जाता है-

अरक्षितारोहर्त्तारशुल्कव्याजेन पार्थिवा:।
हरिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते तु कलौयुगे॥
(वि.पु ६/१/३४)

अर्थात् कलियुग आने पर राजा लोग प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि कर लेने के बहाने प्रजा का ही धन छीनेंगे। धन कितना है इसका कोई हिसाब नहीं रख पाते। पहले लाख की लालच में पड़ते हैं फिर करोड़, फिर कई सौ करोड़; क्या उनके परिवार के लिए इतने धन की आवश्यकता है? या फिर यह उनकी मानसिक विकृति को दर्शाता है। यह पाठकगण स्वयं सोचें।

महाराणा प्रताप, शिवाजी, स्वामी विवेकानन्द, सावरकर जैसे समाज के अग्रणी अगुआ अब क्यों नहीं होते, यह विचारणीय है। क्योंकि आज की नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में अपने धर्म और मर्यादाओं को लाँघकर धन और ऐश्वर्य तथा स्वान्तः सुखाय के ऐसे मकड़जाल में उलझकर रह गयी है कि उसे पता ही नहीं कि वो आज इतनी दूर निकल आयी है कि अब उसका वापस लौटना भी मुश्किल जान पड़ता है। यह हमारा वही देश है जहाँ पन्ना धाय जैसी वीर माताएँ हुई हैं पर ये अब क्यों नहीं, यह भी विचारणीय प्रश्न है।

यही परिस्थितियाँ धर्म की भी हैं। धर्म का तात्पर्य किसी सम्प्रदाय के इष्ट को पूजने से नहीं, बल्कि वो धर्म जो सम्पूर्ण जीवमात्र के लिए है अर्थात् हमारा आचार-विचार जीव हित के लिए है। वो धर्म जो समस्त पृथ्वी पर एक जीव का दूसरे जीव के लिए होना चाहिए। आज आधुनिक बनने की होड़ में हम अपनी प्राचीन कर्म आधारित वर्ण-व्यवस्था को भुला चुके हैं जो कि प्राचीन भारतीय समाज को सुदृढ़ता प्रदान करता था। प्रत्येक वर्ण के लोग अपने वर्ण के धर्म को मानते थे जिससे किसी भी तरह की सामाजिक मर्यादाएँ टूटने नहीं पाती थीं परन्तु आज हम सब भुलाकर अत्याधुनिक युग में जी रहे हैं। जाति-पाँति, वर्ण-धर्म किसी भी बात का कोई मतलब नहीं होता, यह कहा जाता है। वर्तमान में यदि किसी बात का कोई मतलब नहीं हमने सामाजिक बन्धन तोड़ दिये हैं तो फिर आज का समाज सुखी और सन्तुष्ट क्यों नहीं है? आज तो सब है पर ऐसा क्या छूट गया कि सब होकर भी सब बेकार है?

वर्तमान समय में अधिकांशतः अपना धर्म खो रहे हैं। ब्राह्मण जो अपनी सात्विकता के लिए जाना जाता था वो आज सर्वाधिक मांस और मदिरा का

भक्षण करता है, क्षत्रिय अपने क्षात्र धर्म को त्याग चुका है; यही हालत वैश्य और शूद्र की भी है। विष्णु पुराण में इस बात का उल्लेख हजारों वर्ष पूर्व ही किया जा चुका था। यथा-

वैश्या कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्मयत्।
शूद्र वृत्त्या प्रवर्त्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः॥
(वि.पु ६/१/३६)

प्राचीन भारतीय समाज वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार कर जीता था और वर्तमान जैसी उथल-पुथल भी समाज में नहीं था। सभी अपनी मर्यादा और अपने में परस्पर प्रेम और सौहार्दपूर्वक रहते थे; परन्तु बाद में सबको समानता का दर्जा देने की बात तो कही गयी पर क्या ऐसा हो पाया? वर्तमान समाज में क्या सभी वर्ण के लोग, सभी धर्म के लोग सुखी और सन्तुष्ट हैं वर्तमान सामाजिक परिवेश से? विष्णु पुराण में निम्न उल्लेख इस दृष्टि से ध्यातव्य है-

वेदमार्गे प्रलीने च पाषाण्डादये ततोजने।
अधर्मवृद्धया लोकानामलभमायुर्भविष्यति॥
(वि.पु ६/१/३९)

समस्त वर्णाश्रम व्यवस्था के लोप का तात्पर्य समस्त व्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था का लोप, ऐसा ही वर्तमान समाज देखकर लगता है। भारतीय प्राचीन समाज में शत्रु से भी युद्ध करते समय धर्मगत युद्ध किया जाता था परन्तु आज के वर्तमान समाज की विडम्बना है कि हर व्यक्ति ही हर अगले व्यक्ति का शत्रु है; जब जैसे भी हो सके अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरे को अपने मार्ग से हटा दो चाहे जो भी अनैतिक कृत्य करके उसे हटाना पड़े, यह मानव का मानव के लिए जो भाव है, वह अवश्य ही वर्तमान समाज को पतन की ओर ले जा रहा है।

समस्त सम्बन्धों की तिलांजलि देने की ओर बढ़ रहा भारत का यह वर्तमान समाज जहाँ भाई के लिए भाई का शत्रु हो गया है; पिता-पुत्र के सम्बन्ध, पति-पत्नी, मित्र का मित्र के किया गया व्यवहार सब कुछ स्वार्थ की बलि चढ़ चुका है।

परन्तु विष्णुपुराण ही नहीं, बल्कि अन्य धर्मशास्त्र भी कलियुग के धर्म की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि अन्य युगों में जो सम्पूर्ण जीवन तपस्या करके प्राप्त किया जा सकता है वो कलियुग में केवल ईश्वर को थोड़ा स्मरण मात्र तथा स्वच्छ हृदय से सम्बन्धों को यदि जीया जाय तो बड़ी सरलता से पाया जा सकता

है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपने धर्मग्रन्थों का अनुसरण कर इस (वर्तमान) डूबते समाज को बचाकर सामाजिक मूल्यों की पुनर्स्थापना कर लें या जो जैसा है वैसा ही रहने दें। इतिहास की सार्थकता इसी में है कि वह वर्तमान समाज को जीवन जीने की दिशा दे सके। भारत का पौराणिक साहित्य ऐसे ही इतिहास की रचना करता है। पुराणों के अध्ययन, उनके विवेचन एवं इतिहास के रूप में भावी पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने से भारत में सामाजिक क्रान्ति की जा सकती है। आज आवश्यकता है अपने धर्म-साहित्य के नैतिक-सदाचरण आधारित समाज को उदाहरण रूप में पढ़ने-पढ़ाने की। □

भारतीय इतिहास का प्रस्थान-बिन्दु एवं भगवान् बुद्ध की पौराणिक (ऐतिहासिक) तिथि

गुंजन अग्रवाल*

भारतीय-संस्कृति में काल को सदैव वन्दनीय माना गया है। भविष्यमहापुराण में कहा गया है कि नक्षत्र, ग्रह, योग, मास, अयन, ऋतुएँ, पक्ष, दिन, संवत्सर एवं यहाँ तक कि काल से जिस किसी का भी बोध हो, वे सभी वन्दनीय, नमस्कार करने योग्य एवं पूजनीय हैं-

'नक्षत्राणि ग्रहा योगा मासा मासाधिकाश्च ये।
अयने ऋतवः पक्षास्तथैव दिवसानि च॥
कालः संवत्सरश्चापि यः कश्चित्काल उच्यते।
अभिवन्द्यः स सर्वोऽपि नमस्य पूज्य एव च॥'[१]

इस प्रकार, काल यानि समय हमारे लिए पूजनयोग्य है। हम सभी लोग भगवान् शिव की नित्य उपासना करते हैं। शिव कौन हैं, काल के देवता, यानि महाकाल। ब्रह्मवैवर्तमहापुराण में भगवान् शिव के लिए कहा गया है-

'कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण।
कालादतीत कालस्य कालकाल नमोऽस्तुते॥'

अर्थात्, 'कालगणना करनेवालों के लक्ष्यभूत कालरूप हे परमेश्वर! आप काल के भी काल, काल के भी ईश्वर और काल के भी कारण हैं। हे कालों के काल! आपको नमस्कार है।'

भारतभर के हिन्दू एवं संसारभर में फैले प्रवासी हिन्दू 'संकल्प-पाठ' के द्वारा अपने दैनिक जीवन में अपनी परम्परागत कालगणना को स्मरण रखते हैं। किसी भी धार्मिक कृत्य को करने से पूर्व हाथ में पुष्प, जल एवं अक्षत लेकर 'संकल्प-पाठ' किया जाता है। संकल्प-पाठ में इस ब्रह्माण्ड के चतुर्द्दश भुवनों, सप्तद्वीपों, खण्ड, वर्ष आदि देश के परिमाण के साथ ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युगादि से लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, लग्न, नक्षत्रादि का उच्चारण किया जाता है[२]- 'हरि ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे

*सम्पादक, **'पटना परिक्रमा'** (पटना बिज़नेस डायरेक्टरी); सम्पादक, **'पगडण्डी'** (हिन्दी-त्रैमासिकी, जमुई); सह-सचिव, भारतीय-इतिहास-संकलन समिति, दक्षिण बिहार

भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तेकदेशान्तर्गते ब्रह्मावर्तेकपुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे अमुक नदीतीरे (नदी का नाम) अमुक क्षेत्रे (स्थान का नाम) कलियुगाब्दे........ वैक्रमाब्दे......शालिवाहन शके......वर्तमाने अमुकनाम संवत्सरे अमुकायने (उत्तरायणे/दक्षिणायने) महामांगल्यप्रदे मासोत्तमे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते भौमे अमुकराशिस्थिते बुधौ अमुकराशिस्थिते गुरौ अमुकराशिस्थिते शुक्रे अमुकराशिस्थिते शनौ सत्सु अमुकयोगे अमुककरणे एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रोत्पन्नः..........(अपना नाम) अहंममात्मनः.........(पिता का नाम) अहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य क्षेमस्थैर्यारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थमाधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकत्रिविधतापशमनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्राप्त्यर्थं नित्यकल्याणलाभाय भगवत्प्रीत्यर्थं अमुक देवस्य (देवता का नाम) पूजनं करिष्ये।'[3]

अर्थात्, 'श्री पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर उत्पन्न ब्रह्माजी के द्वितीय परार्ध के श्वेतवाराह नामक कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २८वें कलियुग के प्रथम चरण में जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के भरतखण्ड के आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त नामक पुण्यप्रदेश में, जब (अन्तिम बार भगवान् विष्णु का) 'बुद्ध' नामक अवतार हुआ था, अमुक नदी के किनारे स्थित अमुक क्षेत्र में कलियुगाब्द......., विक्रम संवत्........, शालिवाहन संवत्....... में अमुक संवत्सर के अमुक अयन के अमुक मास के अमुक पक्ष की अमुक तिथि, अमुक वार को और अमुक नक्षत्र में, जब सूर्य अमुक राशि में स्थित है, चन्द्र अमुक राशि में स्थित है, मंगल अमुक राशि में स्थित है, बुध अमुक राशि में स्थित है, गुरु अमुक राशि में स्थित है, शुक्र अमुक राशि में स्थित है, शनि अमुक राशि में स्थित है, अमुक योग, अमुक करण में; सभी वेद, स्मृति, पुराणसम्मत फलप्राप्ति के लिए अमुक गोत्र में उत्पन्न मैं...........(अपना नाम),............का पुत्र (पिता का नाम) अमुक कर्म के लिए संकल्प ले रहा हूँ।'

यही है हमारी परम्परागत कालगणना और यही है हमारा इतिहास। जो हमारी कालगणना है, वही हमारा इतिहास है; और जो हमारा इतिहास है, वही हमारी कालगणना है। हमारी कालगणना और हमारा इतिहास एक है। हमारा इतिहास विगत पाँच या दस या बीस हजार वर्षों से एकाएक कहीं से प्रारम्भ नहीं हो गया, बल्कि वह कालचक्र के प्रवर्तन के साथ प्रारम्भ हुआ है। भगवान् विष्णु के

नाभिकमल पर उत्पन्न ब्रह्माजी ने जिस दिन प्रथम बार सृष्टि की सर्जना शुरू की, अर्थात् ब्रह्माजी के प्रथम परार्ध के प्रथम कल्प के प्रथम मन्वन्तर के प्रथम चतुर्युग के सत्ययुग के प्रथम मास की प्रथम तिथि, यानि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा भारतीय इतिहास का प्रस्थान-बिन्दु है। अर्थात्, १५ नील, ५५ खरब, १३ अरब, ३३ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार ११३ वर्ष का भारतवर्ष का इतिहास है। इतने वर्षों से हमारा धर्म चला आ रहा है। इसलिए इसे सनातन धर्म कहा जाता है, भारतवर्ष को सनातन हिन्दू-राष्ट्र कहा जाता है और वैदिक ग्रन्थों को अनादि-अपौरुषेय कहा जाता है। योगीराज श्रीअरविन्द (१८७२-१९५०) ने सनातन धर्म को ही राष्ट्रीयत्व कहा है।[4] और इसलिए सनातन धर्म में आजतक कोई 'पैग़म्बर' नहीं हुआ, जैसा कि विभिन्न सम्प्रदायों में हुए। और इसलिए सनातन धर्म का कोई 'एक धर्मग्रन्थ' नहीं है, जैसा कि विभिन्न सम्प्रदायों में हैं। और इसलिए हिन्दू-समाज किसी 'एक निश्चित उपासना-पद्धति' से भी बँधा हुआ नहीं है, जैसा कि विभिन्न सम्प्रदाय एक निश्चित उपासना-पद्धति से बँधे हुए हैं।

अस्तु, जिस समय हमने, यानि संसार के प्रथम मनुष्य, यानि स्वायम्भुव मनु ने संसार में पहली बार कदम रखा, उसी समय से हम समय की गणना करते आ रहे हैं। इसलिए हमारी गणना में एक सेकेण्ड की भी गड़बड़ी नहीं है। सृष्टि के प्रथम दिन से लेकर आजतक एक-एक दिन का हिसाब हमने रखा है। इतने वर्षों का इतिहास अपने पुराणों में सुरक्षित है और वह भी कालगणना के साथ। पुराणों में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण सदैव कालक्रम के चौखटे में ही दिया गया है। कहीं भी कालक्रम की उपेक्षा नहीं की गयी है। आर्ष-ग्रन्थों में घटनाक्रम की कालबद्ध चर्चा परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर, नक्षत्र इत्यादि में की गयी है। सम्पूर्ण पुराणों, उपपुराणों, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में इन्हीं मापदण्डों को अपनाया गया है। इनके सहारे सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक के भारतीय इतिहास की समयावली (क्रोनोलॉजी) प्राप्त हो जाती है।[5]

भगवान् बुद्ध की पौराणिक (ऐतिहासिक) तिथि :

बौद्ध-सम्प्रदाय, सनातन धर्म की एक शाखा के रूप में उसका अभिन्न अंग है और इसीलिए संकल्प-पाठ में 'बौद्धावतारे' शब्द से बुद्ध का स्मरण किया जाता है। गौतम बुद्ध, भगवान् विष्णु के २४ अवतारों में २३वें अवतार माने जाते हैं। पुराणों में भी बुद्ध का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया गया है और प्रायः सभी पुराणों, जैसे- पद्म, मत्स्य, अग्नि, भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, भविष्य, वाराह, गरुड़,

नरसिंह, स्कन्द, नारद, लिंग और विष्णुमहापुराणों में; कल्कि, देवीभागवत और हरिवंश- जैसे उपपुराणों में तथा वाल्मीकिरामायण, योगवासिष्ठ, महाभारत, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र और बुद्धचरितम्-जैसे ग्रन्थों में भगवान् बुद्ध के विषय में विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास भगवान् बुद्ध और बौद्ध-सम्प्रदाय से बहुत कुछ प्रभावित है। किन्तु, इन सबके बाद भी यह विषय आजतक विवादग्रस्त बना हुआ है कि भगवान् बुद्ध का आविर्भाव-काल सही-सही क्या है।[६]

लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता प्रो. (डॉ.) ठाकुर प्रसाद वर्मा ने उल्लेख किया है कि 'भगवान् बुद्ध की तिथि पर पिछली दो शताब्दियों में अनेक ग्रन्थ लिखे गये और घूम-फिरकर उन्हें छठीं शताब्दी ई.पू. का मान लिया गया, क्योंकि यह तिथि यूरोपीय-विद्वानों के अनुकूल पड़ रही थी। सिकन्दर के आक्रमण की तिथि को मूलाधार मानकर भारतीय इतिहास की तिथियों को उसी ढाँचे में इस प्रकार न्यस्त कर दिया गया है कि इससे निकलने का मार्ग नहीं मिल पा रहा है। जहाँ यह सब सिकन्दर के काल के पूर्व की भारतीय-परम्परा की अनदेखी करके किया गया, वहीं भारतीय-पुराण-ग्रन्थ, जिनके प्रमाण मौर्यकाल तथा बाद के इतिहास के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, मौर्यपूर्व काल के लिए अप्रामाणिक मान लिये गये।'[७]

विभिन्न देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा बुद्ध-निर्वाण की ६० भिन्न-भिन्न तिथियाँ निकाली गयी हैं, जो २७० ई.पू. से २४२२ ई.पू. तक फैली हुई हैं। इतनी मतभिन्नताओं के बावजूद बिना कोई कष्ट उठाए बुद्ध के समय के विषय में दो भिन्न तिथियाँ ५६३-४८३ ई.पू. अथवा ६२४-५४४ ई.पू., इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ायी जा रही हैं और इसी आधार पर अन्य तिथियों को भी मान्यता दी जा रही है।[८]

पाश्चात्य इतिहासकारों ने गौतम बुद्ध का जन्म-वर्ष ५६३ ई.पू. निकालने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण की कल्पित तिथि ३२० ई.पू. में उसके और उसके पुत्र बिन्दुसार के राज्यकाल के वर्षों को घटाकर अशोक का राज्यारोहण-वर्ष २६५ ई.पू. निकाला है और उसमें २१८ वर्ष जोड़कर गौतम बुद्ध के निर्वाण का वर्ष ४८३ ई.पू. निश्चित किया है; क्योंकि श्रीलंका के इतिहास-ग्रन्थ 'दीपवंश'[९], 'महावंश'[१०] और विनयपिटक पर बुद्धघोष (५वीं शताब्दी) की 'समन्तपासादिका' नामक पाली-टीका (जो चीनी-त्रिपिटक के तैशो-संस्करण में संकलित है) में लिखा हुआ है कि 'तथागत के निर्वाण के २१८ वर्ष बाद समूचे जम्बूद्वीप पर

स्वयं का राज्याभिषेक करनेवाले राजा ने शासन प्रारम्भ किया।' इसी को आधार मानकर ४८३ ई.पू. में गौतम बुद्ध की पूर्णायु में ८० वर्ष जोड़कर ५६३ ई.पू. उनका जन्म-वर्ष माना गया है।

६२४-५४४ ई.पू. वाली तिथि भी इन्हीं ग्रन्थों पर आधारित है। आधुनिक थेरवादी-परम्परा के पाली-स्रोत सम्राट् अशोक के राज्यारोहण की एक कल्पित तिथि ३२६ ई.पू. देते हैं। इसी आधार पर इस परम्परा को माननेवाले देश, जिनमें श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैण्ड, कम्पूचिया और लाओस आत हैं, सम्मिलित रूप से बुद्ध का निर्वाण-काल ५४४ ई.पू. मानते हैं, क्योंकि उक्त ग्रन्थों में लिखा हुआ है कि 'तथागत के निर्वाण के २१८ वर्ष बाद समूचे जम्बूद्वीप पर स्वयं का राज्याभिषेक करनेवाले राजा ने शासन प्रारम्भ किया।' अर्थात्, अशोक के राज्यारोहण के २१८ वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध का निर्वाण हुआ था। इसी को आधार मानकर ५४४ ई.पू. में गौतम बुद्ध की पूर्णायु में ८० वर्ष जोड़कर ६२४ ई.पू. उनका जन्म-वर्ष माना गया है।[११]

भारतीय-इतिहास-परिशोध की दृष्टि से बुद्ध को छठीं शताब्दी ई.पू. में रखना एक अत्यन्त भयंकर भूल है; क्योंकि भारतीय-पुराणों में उपलब्ध विभिन्न राजवंशों की वंशावलियाँ एवं अन्य प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि भगवान् बुद्ध का जन्म १८८७ ई.पू. में और निर्वाण १८०७ ई.पू. में हुआ था। इसका अर्थ यह है कि भगवान् बुद्ध के मान्य काल में १,३०० वर्षों से अधिक की भूल है।[१२]

पौराणिक राजवंशावलियाँ : भगवान् बुद्ध की प्रामाणिक तिथि ज्ञात करने की विश्वसनीय स्रोत

पुराणों में राजवंश या ऋषि-वंश का जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका आरम्भ प्रायः वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम चतुर्युग से होता है। वर्तमान में वैवस्वत मन्वन्तर के २७ चतुर्युग बीत चुके हैं और २८वें चतुर्युग के भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं तथा कलियुग का ५,११३वाँ वर्ष चल रहा है। इस प्रकार १२ करोड़, ५ लाख, ३३ हजार, ११३ वर्ष के इतिहास की रूपरेखा हमारे यहाँ सुरक्षित है। किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि इस बात पर हमारे ही देश के अधिकतर आधुनिक विद्वान् विश्वास नहीं करते। वे 'युग' शब्द को अंग्रेजी के 'पीरियड' शब्द का समानार्थी मानते हैं, जैसा कि हिन्दी साहित्य में 'भारतेन्दु-युग', 'द्विवेदी-युग' इत्यादि व्यवहृत होते हैं। कुछ विद्वान् पुराणों में वर्णित १२,००० दिव्य वर्ष की चतुर्युगी को ही मानुष-वर्ष मानते हैं। इस प्रकार सैकड़ों वर्ष शासन करनेवाले प्राचीन राजाओं के काल को १६-१६, २०-२० वर्ष के औसत में बाँधकर करोड़ों वर्ष के भारतीय

इतिहास को केवल तीन-चार हजार वर्ष के दायरे में ठूँस दिया गया है। किन्तु सृष्टि की वंश-परम्परा को अर्वाचीन सिद्ध करने के लिए जितना ही अधिक प्रयत्न किया गया है, पुराणों में उन कल्पनाओं के विरुद्ध उतने ही अधिक प्रमाण मिलते गये हैं।[१३]

पुराणों से यह सिद्ध है कि भगवान् बुद्ध इक्ष्वाकु वंश की लिच्छवि शाखा में उत्पन्न हुए थे। इक्ष्वाकु वंश के संस्थापक वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु का समय वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर का प्रथम चतुर्युग, अर्थात् लगभग १२ करोड़ ४ लाख वर्ष पूर्व था।[१४] इस वंश के ७१वें प्रमुख राजा[१५] थे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम।[१६] श्रीराम के स्वर्गारोहण के बाद सभी राजपुत्रों में कोसल राज्य का बँटवारा हुआ। फलस्वरूप राम के पुत्रों को मुख्य कोसल का राज्य मिला।[१७] वाल्मीकिरामायण के अनुसार लव ने श्रावस्ती को राजधानी बनाकर[१८] उत्तरी कोसल पर और कुश ने कुशस्थली (कौशाम्बी) को राजधानी बनाकर दक्षिणी कोसल पर राज्य प्रारम्भ किया। लक्ष्मण के पुत्रों- अंगद और चन्द्रकेतु को वर्तमान नेपाल मिला। भरत के पुत्रों- तक्ष और पुष्कल ने क्रमशः तक्षशिला और पुष्करावती को अपनी राजधानियाँ बनायीं। शत्रुघ्न के पुत्रों- सुबाहु और शत्रुघाती को लवणासुर का राज्य मिला। इन सभी राजपुत्रों के अपने-अपने वंश और उपवंश चले। इनमें पव, मल्ल और लिच्छवि आदि थे। नेपाल पर शासन करनेवाला लक्ष्मण के पुत्रों का वंश 'लिच्छवि' कहलाया। भगवान् बुद्ध का जन्म इसी लिच्छवि शाखा में हुआ था।[१९]

विष्णुमहापुराण के अनुसार कुशस्थली को राजधानी बनाकर राज्य करनेवाला कुशवंश (मूल इक्ष्वाकु वंश) का ११२वाँ राजा बृहद्बल महाभारत-युद्ध में अभिमन्यु के हाथों मारा गया था।[२०]

महाभारत-युद्ध और कलियुग की तिथि :

अब हम महाभारत-युद्ध की तिथि पर विचार करते हैं। महाभारत का युद्ध कब हुआ? इस यक्ष-प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ लेने पर भगवान् बुद्ध की तिथि सहित भारतीय इतिहास की बहुत-सी काल-सम्बन्धी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। मैं यह भी बता दूँ कि महाभारत-युद्ध की भी ४८ तिथियाँ ज्ञात हैं, जो छठीं शताब्दी ई.पू. से ५५६१ ई.पू. तक फैली हुई हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित तिथि है- ९५० ई.पू., जिसे प्रतिपादित किया है कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश और रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन (The Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, RAS: estd. 1824) के उपाध्यक्ष फ्रेडरिक ईडन पार्जीटर (Frederick Eden Pargiter: 1852-1927) ने। महाभारत-युद्ध भारतीय

इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसका सही-सही काल-निर्धारण समूचे भारतीय-इतिहास-तिथिक्रम में स्थिरता और क्रमबद्धता ला सकता है, किन्तु इस प्रश्न पर भी स्वनामधन्य भारतीय इतिहासकार पश्चिम के जालसाज और दामपन्थी-इतिहासकारों पर निर्भर रहे हैं, यह दुःख का विषय है। यह भारतीय इतिहासकारों के मुँह पर करारा तमाचा है कि उनके रहते हुए भारतीय इतिहास का काल इंग्लैण्ड का इतिहासकार निर्धारित कर रहा है और भारतीय इतिहासकार उसके मनमाने आकलन को सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं। क्या भारतीय इतिहासकारों ने अपनी सारी विद्वत्ता पश्चिमी इतिहासकारों के पास ही गिरवी रख दी है? हमारा मानना है कि महाभारत-युद्ध की सही-सही तिथि ज्ञात किए बगैर भगवान् बुद्ध की प्रामाणिक तिथि पता करना असम्भव है; क्योंकि जब नींव का ही कोई अता-पता नहीं, तो इमारत कैसे खड़ी होगी? इसलिए महाभारत-युद्ध की तिथि के प्रश्न को हँसी-मजाक में छोड़ा नहीं जा सकता। महाभारत-युद्ध की प्रामाणिक तिथि ज्ञात करके ही हम भगवान् बुद्ध की प्रामाणिक तिथि तक पहुँच सकते हैं।[२१]

महाभारत का युद्ध कब हुआ, इस प्रश्न का उत्तर भी हमें महाभारत और पुराणों में मिल जाता है। महाभारत में कहा गया है कि 'जब द्वापर और कलि की सन्धि का समय आनेवाला था, तब समन्तपंचक क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं का परस्पर भीषण युद्ध हुआ।'[२२] भविष्यमहापुराण में कहा गया है कि 'भविष्य नामक महाकल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २८वें द्वापरयुग के अन्त में कुरुक्षेत्र में महाभारत-युद्ध हुआ था।'[२३]

महाभारत में कहा गया है कि महाभारत-युद्ध के बाद गान्धारी ने श्रीकृष्ण को शाप दिया था कि आज से ३६ वर्ष के बाद यदुवंश का विनाश होगा और तुम भी मृत्यु को प्राप्त होगे।[२४] जब ३६वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ, तब राजा युधिष्ठिर को तरह-तरह के अपशकुन दिखाई देने लगे।[२५]

भविष्यमहापुराण के अनुसार युधिष्ठिर ३६ वर्षों तक राज्य करके (३७वें वर्ष) स्वर्ग सिधारे थे।[२६] स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में युधिष्ठिर का राज्यकाल ३६ वर्ष, ८ मास और २५ दिन लिखा है।[२७] इस दृष्टि से भी ३७वें वर्ष में पाण्डवों के राज्य-त्याग और परीक्षित के राज्याभिषेक की बात सिद्ध होती है।[२८]

महाभारत के अनुसार महाभारत-युद्ध के बाद ३६वें वर्ष वृष्णिवंशियों में महान् अन्यायपूर्ण कलह प्रारम्भ हो गया। उसमें काल से प्रेरित होकर उन्होंने एक-दूसरे

को मूसलों से मार डाला।[२९] इस प्रकार समय का विचार करते हुए श्रीकृष्ण ने गान्धारी के शाप का विशेष चिन्तन किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि महाभारत-युद्ध के बाद यह ३६वाँ वर्ष आ पहुँचा।[३०] तब वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और अपने स्वर्गारोहण की प्रतीक्षा करने लगे।[३१]

विष्णुमहापुराण[३२], वायुपुराण[३३], ब्रह्ममहापुराण[३४] और भागवतमहापुराण[३५] के अनुसार, 'जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधाम को पधारे थे; उसी दिन, उसी समय पृथिवी पर कलियुग प्रारम्भ हो गया था।'

सारांश यह है कि महाभारत-युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष, ८ मास और २५ दिनों तक शासन किया और तत्पश्चात् उन्होंने द्रौपदी व भाइयों सहित हिमालय की ओर प्रस्थान किया। उसी ३७वें वर्ष में भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधाम को सिधारे। जिस दिन वह गोलोक सिधारे; उसी दिन, पृथिवी पर कलियुग प्रारम्भ हो गया। तो कलियुग का प्रारम्भ कब हुआ?[३६] भारतवर्ष के महान् खगोलविद् आर्यभट्ट I(४७६-५५०)[३७], भास्कराचार्य II(१११४-११८५)[३८], कालिदास (प्रथम शताब्दी ई.पू.)[३९] और फ्रांसीसी खगोलविद् जीन सेल्वेन बेली (Jean-Sylvain Bailly: 1736-1793) ने कलियुग-सम्बन्धी जो उल्लेख किया है, उससे कलियुग का प्रारम्भ ३१०२ ई.पू. सिद्ध होता है। बेली ने यहाँ तक कहा है कि 'हिन्दुओं की खगोलीय गणना के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरी को २ बजकर २७ मिनट ३० सेकेण्ड पर हुआ था। इस प्रकार यह कालगणना मिनट तथा सेकेण्ड तक की गयी। कलियुग के समय सभी ग्रह एक ही राशि में थे तथा हिन्दुओं के पंचांग भी यही बताते हैं। ब्राह्मणों द्वारा की गयी गणना हमारे खगोलीय पंचांग द्वारा पूर्णतः प्रमाणित होती है।'[४०]

महाभारत-युद्ध कलियुग के प्रारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व हुआ था, अतः महाभारत-युद्ध की तिथि है ३१०२+३७=३१३९ ई.पू.। यह महाभारत-युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी, तदनुसार दिसम्बर, ३१३९ ई.पू. को प्रारम्भ होकर १८ दिनों तक चला। इन १८ दिनों में दो तिथियों- पौष कृष्ण पंचमी और पौष कृष्ण षष्ठी की हानि हुई[४१], अतः पौष कृष्ण अमावस्या, जनवरी ३१३८ ई.पू. को युद्ध समाप्त हुआ।[४२]

युद्ध में मारे गये लोगों के श्राद्धादि के बाद चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, तदनुसार अप्रैल, ३१३८ ई.पू. में इन्द्रप्रस्थ में चन्द्रवंशीय धर्मराज युधिष्ठिर का, मगध में बार्हद्रथवंशीय मार्जारि का और कुशस्थली में कुशवंशीय राजा बृहत्क्षत्र का

राज्याभिषेक हुआ।[४३] बृहत्क्षत्र की वंश-परम्परा में २३वें वंशज शाक्य हुए, जो नेपाल के सान्निध्य में हिमालय की तराई के उत्तर-पश्चिमी भाग के राजा बने। कपिलवस्तु इनकी राजधानी थी। २४वें वंशज शुद्धोधन एवं २५वें वंशज गौतम बुद्ध थे। ३१वें एवं अन्तिम वंशज सुमित्र के साथ इक्ष्वाकु वंश का अन्त हो गया।[४४] यह वंश-परम्परा ब्रह्माण्डमहापुराण[४५], भागवतमहापुराण[४६] एवं विष्णुमहापुराण[४७] में दी हुई है। इस प्रकार, इस वंश में बुद्ध को छोड़ कुल ३० राजाओं ने १,५०४ वर्षों तक शासन किया।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि ३१३८-१५०४=१६३४ ई.पू. में सुमित्र पर यह वंश-परम्परा समाप्त हो चुकी थी और इस प्रकार २५वें वंशज गौतम बुद्ध निश्चय ही उससे पहले हुए हैं। अब बुद्ध के जीवन-यापन का कालखण्ड निर्धारित करने के लिए उनके समकालीन राजाओं की भी कालगणना करनी होगी।[४८]

बौद्ध सन्दर्भ-ग्रन्थ, भारतीय-विद्या भवन से १९८८ ई. में कई खण्डों में प्रकाशित *'Histroy & Culture of the Indian People'* एवं जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७) के नाटकों तक में हमें यह तथ्य सर्वमान्य रूप से स्वीकृत मिलता है कि गौतम बुद्ध मगध-नरेश बिम्बिसार एवं अजातशत्रु के समकालीन थे और अजातशत्रु के शासनकाल में ही बुद्ध का निर्वाण हुआ था।[४९]

मगध का राजनीतिक इतिहास कब से प्रारम्भ होता है? हम महाभारत-युद्ध की तिथि ज्ञात कर चुके हैं। स्वामी राघवाचार्य ने उल्लेख किया है कि मगध में बृहद्रथ-राजवंश की स्थापना महाराज बृहद्रथ ने महाभारत-युद्ध से १६१ वर्ष पूर्व, अर्थात् ३३०० ई.पू. में की थी।[५०] बृहद्रथ से १०वीं पीढ़ी में थे महाराज जरासन्ध। जरासन्ध के पुत्र सहदेव महाभारत-युद्ध में मारे गये। युद्ध के बाद सहदेव के पुत्र मार्जारि मगध की गद्दी पर राज्याभिषिक्त हुए, जिनके नाम पर यह वंश 'मार्जारि-वंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस नये वंश में २२ राजा हुए, जिन्होंने कुल १,००६ वर्ष तक, अर्थात् ३१३८ ई.पू. से २१३२ ई.पू. तक राज्य किया।[५१] बार्हद्रथ-वंश का २२वाँ राजा रिपुंजय हुआ, जिसे उसके मन्त्री सुनिक ने मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को मगध के सिंहासन पर राज्याभिषिक्त किया।[५२] विष्णुमहापुराण के अंश ४ के २४वें अध्याय के ८वें श्लोक के अनुसार प्रद्योत-वंश में ५ राजा हुए, जिन्होंने १३८ वर्षों तक[५३,५४], अर्थात् २१३२ ई.पू. से १९९४ ई.पू. तक राज्य किया।

१९९४ ई.पू. काशी-नरेश शिशुनाग ने नन्दिवर्धन को पदच्युतकर अपना शिशुनाग-राजवंश मगध में स्थापित किया। इस राजवंश में १० राजा हुए, जिन्होंने

३६० वर्षों तक[५५], अर्थात् १९९४ ई.पू. से १६३४ ई.पू. तक शासन किया। शिशुनाग-वंश के चौथे राजा क्षेत्रज, भगवान् बुद्ध के पिता शुद्धोधन के समकालीन थे। पाँचवें राजा बिम्बिसार के शासनकाल में गौतम ६ वर्ष तक तप करने के पश्चात् ज्ञान प्राप्त करके 'बुद्ध' बन गये। छठें राजा अजातशत्रु के शासनकाल में भगवान् बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए। अतः भगवान् बुद्ध का काल इन्हीं तीन राजाओं- क्षेत्रज, बिम्बिसार और अजातशत्रु के आस-पास, अर्थात् १८९२ ई.पू. से १७८७ ई.पू. के मध्य होना चाहिए।[५६]

महावंश के अनुसार अजातशत्रु के राज्यारोहण के ८ वर्ष पश्चात् बुद्ध का निर्वाण हुआ था।[५७] पौराणिक-गणनानुसार अजातशत्रु का राज्याभिषेक १८१४ ई.पू. में हुआ था। अतः १८१४-८=१८०६ ई.पू. के आस-पास बुद्ध का निर्वाण-वर्ष आता है।[५८] मज्झिमनिकाय[५९] और दीघनिकाय[६०] के अनुसार भगवान् बुद्ध ८० वर्षों तक जीवित रहे थे। अतः उनके निर्वाण-वर्ष १८०६ ई.पू. में ८० जोड़ने पर १८८६ ई.पू. भगवान् बुद्ध का जन्म-वर्ष निकलता है।[६१] इस स्थापना की पुष्टि करने के लिए हम कुछ आनुषंगिक तथ्यों का विवेचन करते हैं।

सिकन्दर के आक्रमण की तिथि :

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में सभी भारतीय तिथियों की अवहेलना करते हुए सिकन्दर के आक्रमण को ही भारतीय इतिहास का प्रस्थान-बिन्दु मान लिया है। चूँकि उनका विश्वास था कि सिकन्दर के समकालीन यूनानी इतिहासकार इस सम्बन्ध में सर्वाधिक विश्वस्त व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने यूनानी तिथिवृत्तों में प्राप्त उनकी सहायक तिथियों से भारतीय इतिहास-तिथिक्रम में बुद्ध का समय निकालने का प्रयास किया। चूँकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन के समय सिकन्दर का भारतवर्ष पर आक्रमण हुआ था, अतः सर्वप्रथम इसी प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ा जाए कि चन्द्रगुप्त मौर्य का वास्तविक समय क्या है, और सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध पर किस राजा का शासन था।[६२]

हम गणना करते हुए आ रहे हैं कि १६३४ ई.पू. में शिशुनाग-वंश का अन्त हुआ। शिशुनाग-वंश का अन्तिम राजा महानन्दिन था। इसकी एक शूद्रा-स्त्री से नन्द नामक पुत्र हुआ था। उसने नन्दवंश की नींव डाली और ८८ वर्षों तक एकछत्र राज्य किया।[६३] उसके ८ पुत्रों ने केवल १२ वर्ष तक राज्य किया।[६४] इस प्रकार इन नवनन्दों का राज्य १०० वर्ष तक[६५], अर्थात् १६३४ ई.पू. से १५३४ ई.पू. तक चला।

१५३४ ई.पू. में चाणक्य ने नन्दवंश को समाप्त कर चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।[६६] चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३४ वर्ष और उसके पुत्र बिन्दुसार ने २८ वर्षों तक शासन किया। इस प्रकार १४७२ ई.पू. में अशोक का शासन प्रारम्भ हुआ जो १४३६ ई.पू. तक चला। इस तरह अशोक के शिलालेख १५वीं शताब्दी के हैं और फ्रेडरिक मैक्समूलर (Friedrich Max Muller : 1823-1900) के इस वक्तव्य में भी पर्याप्त सत्यता मानी जा सकती है कि 'चीन वर्णनों में अशोक की मृत्यु-तिथि ८५० ई.पू. दी हुई है एवं बुद्ध-निर्वाण और अशोक की मृत्यु के मध्य ३७१ वर्षों का अन्तर है।'[६७] चूँकि पौराणिक-गणना से अशोक की मृत्यु १४३६ ई.पू. में हुई थी, अतः १४३६+३७१=१८०७ ई.पू. ही गौतम बुद्ध का निर्वाण-वर्ष निकलता है।[६८]

हमारी गणना से यदि चन्द्रगुप्त मौर्य १५३४ ई.पू. में हुआ था, तो क्या सिकन्दर ने १५३४ ई.पू. में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था? उस समय तो यूनानी राजाओं की स्थिति ही ऐसी नहीं थी। तब तो पाश्चात्य इतिहासकारों की गणना में कहीं-न-कहीं भूल अवश्य हुई है। यदि वे चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन का समय सही बतला रहे हैं तो सिकन्दर के आक्रमण का समय गलत बतला रहे हैं; और यदि वे सिकन्दर के आक्रमण का समय सही बतला रहे हैं, तो चन्द्रगुप्त मौर्य Μεγασθενης के शासन का समय गलत निर्धारित कर रहे हैं। इस प्रश्न का हल खोजने के लिए हमें सिकन्दर के समसामयिक तथ्यों का भारतीय गणना-पद्धति से मिलान करना होगा।[६९]

प्राचीन यूनानी इतिहासकारों- डियोडोरस सिक्यूलस (Diodorus Siculus, यूनानी: ΔιοδωροςΣικελιωτης : ९०-२७ ई.पू.)[७०], मेस्ट्रियस प्लूटार्क (Mestrius Plutarchus, यूनानी: Πλουταρχος : 46-120)[७१], स्ट्रैबो (Strabo, यूनानी: Στραβων : ६३ ई.पू.-२४ ई.)[७२] एवं एरियन (Arrian : २३-७९)[७३]; लैटिन इतिहासकार जूनेनियस जस्टिनस (Junianus Justinus : 2nd-३rd Century)[७४] एवं रोमन इतिहासकार और लेखक क्वांटियस कर्टियस र्‌यूफस (Quintus Curtius Rufus : 1st Century AD)[७५] और प्लिनी ज्येष्ठ (Pliny the Elder : 2३-७९)[७६] की रचनाओं में सिकन्दर के आक्रमण के विषय में विविध उल्लेख मिलते हैं। इन लेखकों ने बड़ी ही ईमानदारी से यह स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने लेखन-कार्य के लिए एक यूनानी इतिहासकार, भूगोलवेत्ता और पर्यटक मेगास्थनीज (Megasthenes: यूनानी: :

: 350-290 BC)[७७], जो तृतीय शताब्दी ई.पू. में यूनानी शासक सेल्यूकस I निकेटर (Seleucus I Nicator: यूनानी : : ३०५-२८१ ई.पू.) का राजदूत बनकर भारतवर्ष आया था और जो पाँच वर्ष तक भारतीय सम्राट 'सेण्ट्रोकोट्टस' के राजदरबार में उसकी राजधानी 'पालीबोथ्रा' में रहा था, की तत्कालीन भारत पर लिखी 'इण्डिका' ('Indika' or 'Indica') नामक पुस्तक का उपयोग किया है। 'इण्डिका' तो दुर्भाग्यवश अपने मौलिक स्वरूप में कहीं मिलती नहीं, किन्तु उसके छितराये हुए अंश केवल उक्त लेखकों की रचनाओं में ही पाये जाते हैं, जिसका अंग्रेजी अनुवाद जॉन वाट्सन मैक्क्रिंडल (John Watson McCrindle)[७८] ने और जर्मन अनुवाद ई.ए. स्वानबेक (E.A. Schwanbeck)[७९] ने प्रकाशित किया था।

इन एरियन इत्यादि लेखकों ने मेगास्थनीज की 'इण्डिका' के आधार पर सिकन्दर के समकालीन, मगध के ३ शासकों का उल्लेख क्रमशः 'जेन्ड्रमस' अथवा 'एग्रमस' ('Xandrammes' or 'Aggrammes'), 'सेण्ड्रोकोट्टस' अथवा 'एण्ड्रोकोट्टस' ('Sandrocottus' or 'Andracottus': यूनानी:), और 'सेण्ड्रोकप्टस' (Sandrokuptos: यूनानी:) के रूप में किया है।[८०] किन्तु इन लेखकों ने यह कभी नहीं बताया कि सिकन्दर के समकालीन मगध के ये ३ शासक किस वंश के थे। किन्तु पाश्चात्य इतिहासकारों ने बिना कुछ सोचे-विचारे यह निष्कर्ष निकाल लिया कि ये नाम क्रमशः नन्दवंशीय महापद्मनन्द, मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त मौर्य और समुद्रगुप्त के लिए ही प्रयुक्त हैं।[८१] २८ फरवरी, १७९३ ई. को कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी के एक सम्मेलन में उसके संस्थापक सर विलियम जोन्स ने सगर्व यह घोषणा कर डाली कि 'उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के रूप में 'सेण्ड्रोकोट्टस' को पाकर भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी, सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे कठिन समस्या का निदान पा लिया है।'[८२]

डॉ. देवसहाय त्रिवेद ने लिखा है: 'चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर की समकालिकता का सुझाव सर्वप्रथम विलियम जोन्स ने इसलिए दिया था; क्योंकि विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षस' नाटक में वर्णित चन्द्रगुप्त मौर्य के अतिरिक्त उसे किसी अन्य चन्द्रगुप्त का ज्ञान ही न था। अन्ततोगत्वा मैक्समूलर को स्वीकार करना पड़ा कि यह कथित समकालिकता भारतीय, चीनी तथा अन्य प्रमाणों के प्रतिकूल पड़ती है; किन्तु भारतीय इतिहास, यूरोपीय इतिहास से किसी अन्य उपाय या समता से मेल नहीं खाता। अतः इस समकालिकता को अवश्य ही

निर्णीत और अन्तिम मानना होगा, भले ही इसके मानने में कठिनाइयाँ हों।'[८३]

प्रख्यात इतिहास संशोधक पं. कोटा वेंकटचलम ने लिखा है: 'सिकन्दर के समकालीन मौर्य चन्द्रगुप्त को मान लेने की त्रुटि ने भगवान् बुद्ध की तिथि सहित भारत के प्राचीन इतिहास की सभी तिथियों को भ्रष्ट कर दिया है। इस त्रुटि के कारण भारत के प्राचीन इतिहास में १२ शताब्दियों का अन्तर आ गया है। सिकन्दर का आक्रमण ३२६ ई.पू. में हुआ था और यह चन्द्रगुप्त गुप्तवंश का है, जिसका सम्बन्ध ३२७-३२० ई.पू. से है।'[८४]

हम पौराणिक दृष्टिकोण से गणना करके यह सिद्ध कर चुके हैं कि मौर्य-वंश ने १५३४ ई.पू. से १२१८ ई.पू. तक मगध पर शासन किया था। १२१८ ई.पू. में मौर्य-वंश के १२वें राजा बृहद्रथ को उसके ब्राह्मण-सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने मारकर राज्य हस्तगत किया[८५] और शुंग-वंश की नींव डाली। इस वंश में १० राजा हुए[८६], जिन्होंने ३०० वर्षों तक, अर्थात् १२१८-९१८ ई.पू. तक शासन किया। ९१८ ई.पू. में शुंग-वंश के व्यभिचारी राजा देवभूति को कण्ववंशीय वसुदेव नामक उसके मन्त्री ने मारकर राज्य पर अधिकार किया।[८७] कण्व-वंश में ४ राजा हुए, जिन्होंने ८५ वर्षों तक, अर्थात् ९१८-८३३ ई.पू. तक राज्य किया।

८३३ ई.पू. में कण्ववंशीय सुशर्मा को मारकर आन्ध्रवंशीय श्रीमुख मगध की गद्दी पर बैठा। भारतीय इतिहास के काल को संकुचित करने के कलुषित उद्देश्य से पाश्चात्य और उनके पदानुगामी भारतीय इतिहासकारों ने आन्ध्रवंश के राज्यकाल को कई भागों में विभक्त ही नहीं कर डाला है, प्रत्युत उसका आरम्भ ईसा के बाद से ही किया है। परन्तु जब यह स्पष्ट है कि कण्ववंशीय सुशर्मा का वधकर आन्ध्रवंशीय श्रीमुख ने राज्य स्थापित किया, तो आन्ध्रवंश के राज्यकाल की गणना कण्ववंश के बाद से ही करनी होगी। आन्ध्रवंश की परम्परा में कुल ३३ राजा हुए, जिन्होंने ५०६ वर्षों तक शासन किया।[८८]

जिस समय सिकन्दर का आक्रमण होने को था, उस समय मगध की गद्दी पर आन्ध्रवंश के ३२वें राजा चन्द्रश्री शातकर्णि विराजमान थे। इन्हीं चन्द्रश्री को यूनानी इतिहासकारों ने 'जेन्ड्रमस' के नाम से अभिहित किया है। इन्हीं की सेना के विषय में सिकन्दर को सूचना दी गयी थी: '२ लाख पैदल, २० हजार घुड़सवार, २ हजार रथ एवं ३ हजार हाथी।'[८९]

चन्द्रगुप्त इन्हीं चन्द्रश्री शातकर्णि का मन्त्री एवं सेनापति था। चन्द्रश्री शातकर्णि के बाद पुलोमन III अल्पवयस्क अवस्था में ही आन्ध्रवंश का राजा हुआ, तब चन्द्रगुप्त ने रानी की सहायता से अपने राजा का संरक्षक बना लिया

और ३२७ ई.पू. में पुलोमन को समाप्तकर स्वयं राजा बन बैठा। आन्ध्रवंश का सेनापति होने के कारण यह नया वंश 'आन्ध्रभृत्य' कहलाया, किन्तु चन्द्रगुप्त ने अपने को 'गुप्तवंश' का संस्थापक बताकर 'विजयादित्य' की उपाधि धारण की। कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रथम पत्नी के पुत्र समुद्रगुप्त 'अशोकादित्य प्रियदर्शन' को राज्य न देकर अपनी द्वितीय पत्नी के पुत्र को देना चाहा था। फलस्वरूप समुद्रगुप्त को अपने नाना नेपाल के लिच्छवि-नरेश से सहायता लेनी पड़ी थी। विद्रोह की इस स्थिति में ही सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था और चन्द्रश्री, चन्द्रुप्त विजयादित्य और समुद्रगुप्त अशोकादित्य ही यूनानियों के सामने क्रमशः 'जेन्ड्रमस', 'सेण्ड्रोकोट्टस' और 'सेण्ड्रोकिप्टस' के रूप में उपस्थित हुए थे।[९०] गलती से (या जान-बूझकर) इन्हें क्रमशः महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार मान लेने से भारतीय इतिहास स्वयमेव १,२०० वर्ष नीचे सरक गया।[९१]

इतिहासकार देवदत्त ने लिखा है: 'सिकन्दर का आक्रमण ३२६ ई.पू. में हुआ था, अतः उस समय मगध की गद्दी पर गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त प्रथम 'विजयादित्य' आसीन हो चुका था; और इस प्रकार सिकन्दर के आक्रमण की ध्रुव-तिथि भी भगवान् बुद्ध के काल-निर्धारण में कोई बाधा नहीं डालती।'[९२] हम यह भी देखते हैं कि ध्वन्यात्मक समानता की दृष्टि से भी 'जेन्ड्रमस', 'सेण्ड्रोकोट्टस' और 'सेण्ड्रोकिप्टस' से क्रमशः 'चन्द्रश्री', 'चन्द्रगुप्त' और 'समुद्रगुप्त' ही अधिक समीप हैं, 'महापद्मनन्द', 'चन्द्रगुप्त मौर्य' और 'बिन्दुसार' नहीं।[९३] डॉ. देवसहाय त्रिवेद ने ठीक ही लिखा है: 'ग्रीक लेखकों का भ्रष्ट विवरण गुप्त-राजाओं के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है, मौर्य-वंश के लिए नहीं।'[९४] पं. कोटावेंकटचलम् ने लिखा है: 'गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन मगध-नरेश मान लेना हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियों के प्राचीनकालीन पवित्र और धार्मिक साहित्य में वर्णित सभी प्राचीन तिथियों से मेल खाता है।'[९५]

गवर्नमेण्ट आर्ट्स कॉलेज, राजमुन्द्रि (आन्ध्रप्रदेश) के भूतपूर्व गणित-विभागाध्यक्ष एवं प्रख्यात ज्योतिषाचार्य प्रो. व्ही. तिरुवेंकटाचार्य ने बुद्ध की परम्परागत जन्म-कुण्डली में प्रदर्शित ग्रहों की स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि भगवान् बुद्ध का निर्वाण वैशाख शुक्ल पूर्णिमा, विशाखा-नक्षत्र, तदनुसार २७ मार्च, १८०७ ई.पू., मंगलवार की ब्राह्मवेला में हुआ था। इस विषय पर लिखे गये एक लेख में वह कहते हैं कि १८०७ ई.पू. के अतिरिक्त अन्य किसी भी वर्ष में नक्षत्रों की स्थिति जन्म-कुण्डली में वर्णित

स्थिति से मेल नहीं खाती।[९६]

अन्य प्रमाण:

अब हम भगवान् बुद्ध की पौराणिक-तिथि १८८७-१८०७ ई.पू. को प्रमाणित करने के लिए कुछ अन्य प्रमाणों का उल्लेख करेंगे।

ज्योतिषाचार्य शाक्यानन्द ने खगोलीय गणना करके भगवान् बुद्ध का समय कृत्तिका नक्षत्र में, अर्थात् २६२१-१६६१ ई.पू. के बीच निर्धारित किया है।[९७] इस दृष्टि से भी भगवान् बुद्ध का समय १९वीं शताब्दी ई.पू. में रखा जा सकता है। भूटान के १६वीं शताब्दी के एक बौद्ध-लामा पद्मकारपो ने भगवान् बुद्ध का निर्वाण-काल १८५८ ई.पू. घोषित किया है।[९८] प्रो. के. श्रीनिवासराघवन का मानना है कि भगवान् बुद्ध का समय महाभारत-युद्ध के १२५९ वर्ष बाद आता है।[९९] इस दृष्टि से भी भगवान् बुद्ध का समय १८८० ई.पू. सिद्ध होता है। डॉ. देवसहाय त्रिवेद ने पौराणिक गणना के आधार पर बुद्ध-निर्वाण-काल १७९३ ई.पू. में निर्धारित किया है।[१००] स्वामी राघवाचार्य ने पौराणिक गणना के आधार पर घोषित किया है कि भगवान् बुद्ध १८२५ ई.पू. के आस-पास जीवित थे।[१०१] विजयवाड़ा के पं. कोटावेंकटचलम्[१०२] और उनके पुत्र कोटा नित्यानन्द शास्त्री[१०३], पुणे के पुरुषोत्तम नागेश ओक[१०४], हैदराबाद के राम साठे[१०५], दिल्ली के रघुनन्दन प्रसाद शर्मा[१०६], पाण्डिचेरी के देवदत्त[१०७] तथा वृन्दावन पार्कर[१०८] ने पौराणिक गणना के आधार पर बुद्ध-निर्वाण-काल १८०७ ई.पू. निर्धारित किया है।

ए.वी. त्यागराज अय्यर ने लिखा है: 'एथेन्स में अभी हाल ही में मिली एक समाधि में एक अभिलेख है, जिस पर उत्कीर्ण है कि यहाँ बोधगया से आये एक भारतीय श्रमणाचार्य चिरनिद्रा में लेटे हैं। इन शाक्य मुनि को उनके यूनानी शिष्यों द्वारा एथेन्स लाया गया था। लगभग १००० ई.पू. में हुई उनकी मृत्यु के समय यह समाधि बनायी गयी थी।'[१०९] इस वर्णन से स्पष्ट है कि जब १००० ई.पू. में कोई बौद्ध भिक्षु एथेन्स गये थे, तो बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध तो निश्चित ही उससे पूर्व हुए होंगे। और वह समय १८८७-१८०७ ई.पू. के आस-पास ही होगा, जो कि हमारी खोज है।[११०]

इसी प्रकार दिनांक ०७ अक्टूबर, १९६६ ई. को 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' सहित भारत के सभी प्रमुख दैनिक समाचार-पत्रों में अहमदाबाद से प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा भेजा गया समाचार प्रकाशित हुआ था जिसमें 'ईसा से २००० वर्ष पूर्व की सात बौद्ध-गुफाओं की उपलब्धि' की सूचना दी गयी थी। प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार-पत्र 'नवभारत टाइम्स' ने शनिवार, ०८ अक्टूबर, १९६६ के अंक

में पृष्ठ ३ पर अपने 'विचार-प्रवाह' स्तम्भ के अन्तर्गत इस उपलब्धि की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा था कि भड़ौच जिले के भगड़िया तालुका में झाजीपुर गाँव के पास कड़िया पहाड़ियों में एक गुफा की खोज की गयी है, जो ईसा से २००० वर्ष पूर्व की है। गुजरात के तत्कालीन उप-शिक्षामन्त्री डॉ० भानु प्रसाद पाण्डेय के अनुसार इस गुफा में एक सिंहयुक्त स्तम्भ मिला है। गुफा में कई कक्ष, बरामदे आदि भी मिले हैं। यह गुफा और यहाँ मिली वस्तुओं से पता चलता है कि इसे बौद्ध-भिक्षुओं ने अपना स्थल बनाया होगा। कड़िया पहाड़ियों में मिली गुफा की उपलब्धि भी हमारी इस मान्यता को बल प्रदान करती है कि बुद्ध छठीं शताब्दी ई.पू. के व्यक्ति नहीं थे। यही नहीं, यह खोज हमारी इस धारणा को पुष्ट करती है कि बुद्ध २००० ई.पू. जीवित थे; यदि यथार्थ वर्णन किया जाए तो कहा जाएगा कि वे १८८७ से १८०७ ई.पू. तक विद्यमान थे।[१११]

जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य की तिथि भी भगवान् बुद्ध की तिथि को प्रतिपादित करने में सहायक है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भगवान् बुद्ध और आद्य शंकराचार्य के मध्य लगभग १,३०० वर्षों का अन्तर था, जो क्रमशः ज्योतिर्मठ, द्वारका शारदा मठ, शृंगेरी शारदा मठ, गोवर्धन मठ एवं काँची कामकोटि मठ के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। इनमें से गोवर्धन मठ, द्वारका शारदा मठ और काँची कामकोटि मठ में क्रमशः १४४, ७८ और ७० शंकराचार्यों की अखण्डित परम्परा चली आ रही है और इन तीनों मठों में अपने पूर्ववर्ती शंकराचार्यों की विस्तृत सूची सुरक्षित है, जिसमें प्रत्येक शंकराचार्य का वास्तविक नाम, उनका पीठासीन वर्ष, उनका कार्यकाल, उनकी निर्वाण-तिथि, मास, वर्ष तथा स्थान का उल्लेख है।[११२] ये विस्तृत सूचियाँ अपने संस्थापक आद्य शंकराचार्य को ५०९-४७७ ई.पू. में प्रतिपादित करती हैं, जो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित भगवान् बुद्ध का समय है। इससे १,३०० वर्ष पूर्व, अर्थात् १८८७-१८०७ ई.पू. में बुद्ध का काल निश्चित होता है।[११३] इस सन्दर्भ में डॉ. देवसहाय त्रिवेद का यह कथन प्रासंगिक है: 'यह तो भारतीयों की महत्ता है कि उन्होंने इतने सूक्ष्म रूप से अपने इतिहास की सुरक्षा की है, किन्तु यूरोपीय विद्वानों ने यथासम्भव हमारे इतिहास की प्राचीन परम्परा को बर्बाद किया और भ्रामक एवं काल्पनिक तिथियों का ढिंढोरा डेढ़ सौ वर्षों तक लगातार पीटा।'[११४]

एम. कृष्णमाचार्य ने भी लिखा है: 'भारत का अपना भली-भाँति लिखा इतिहास है और पुराण उस इतिहास तथा तिथिक्रम का दिग्दर्शन करते हैं। पुराण पवित्र धोखापट्टी नहीं हैं।'[११५] पुरुषोत्तम नागेश ओक लिखते हैं: 'भारतीय पुराणों

को ढोंग की संज्ञा देना या ऐसा समझते हुए एथेन्स, कैण्डी, लन्दन या टोक्यो से प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कालक्रम को निश्चित करने का यत्न करना, अधिक-से-अधिक भारतीय इतिहास के प्रति भैंगापन ही कहा जा सकता है।'[११६] यूरोपीय इतिहासकार विंसेन्ट आर्थर स्मिथ को भी स्वीकार करना पड़ा है कि 'पुराणों में दी गयी राजवंशावलियों की आधारभूतता को आधुनिक यूरोपीय लेखकों ने अकारण ही निन्दित किया है; इनके सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनमें अत्यधिक मौलिक व मूल्यवान ऐतिहासिक परम्परा प्राप्त होती है।'[११७] एडवर्ड पोकॉक ने लिखा है: 'पुराणों में वर्णित तथ्य, परम्पराएँ और संस्थाएँ क्या किसी दिन स्थापित हो सकती हैं? अरे भाई, ईसवी सन् से तीन सौ वर्ष पूर्व भी उनका अस्तित्व पाया जाता है, जिससे वह बहुत प्राचीन लगते हैं, इतने प्राचीन कि उनकी बराबरी अन्य कोई भी प्रणाली कर ही नहीं सकती।'[११८]

संसार, इतना नूतन नहीं हो सकता। इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि वह भूगर्भ, ज्योतिर्गणना तथा पुरातत्त्व को भी ध्यान में रखकर सभी गुत्थियों को सुलझाने का यत्न करे। विज्ञान का अध्ययन एकांगी नहीं हो सकता। सिकन्दर ने अपने भूतपूर्व सभी ग्रन्थों और अभिलेखों का विनाश उसी प्रकार किया[११९], जिस प्रकार चीन के सम्राट् चीन-इजो-वंग ने। वह चाहता था कि भविष्य में लोग जानें कि संसार तथा यूनान की सभ्यता पूर्णरूपेण उसी के राज्यकाल में फली और फूली। अतः ग्रीक और रोम का प्राचीन इतिहास पूरी तरह नष्ट हो गया। कालान्तर में लोगों ने स्मरण-मात्र से इतिहास रचने की चेष्टा की; अतः वे कदापि विश्वसनीय नहीं हो सकते।[१२०]

सोमयाजुलु ने लिखा है: 'सभी जैन और हिन्दू एकमत हैं कि ५२७ ई.पू. में वर्धमान महावीर की मृत्यु हुई, कुमारिल भट्ट सम्पूर्ण भारत में जैनियों पर प्रबल शास्त्र-प्रहार कर रहे थे और इसका अनुसरण किया शंकराचार्य ने। शंकराचार्य और बुद्ध के मध्य लगभग १,४०० वर्षों का अन्तर था। अतः यह निश्चित है कि बुद्ध छठीं शताब्दी ई.पू. के व्यक्ति नहीं थे। श्रीलंका निवासियों के पास उपलब्ध थोथे वर्णन बुद्ध का काल-निर्धारण करने के लिए किसी भी प्रकार आधिकारिक नहीं हैं। जापानियों ने बौद्ध मत को ७वीं शताब्दी के पश्चात् अंगीकार किया; अतः जापानी-पंचांग भी बुद्ध की तिथि निश्चित करने के लिए कोई आधिकारिक वस्तु नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी बुद्धि और धुन के अनुसार अटकलें लगायी हैं। भारतीय विद्यालयों में अब पढ़ाया जा रहा इतिहास ऐसी गलत धारणाओं और आधारहीन उहापोहों का बोझा मात्र है।'[१२१]

इस सन्दर्भ में डॉ. देवसहाय त्रिवेद ने ठीक ही लिखा है: 'यह आश्चर्य और दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय इतिहास की रचना आधुनिक इतिहासकारों ने विदेशी स्रोत के आधार पर की है तथा भारतीय स्रोतों से उसकी पूर्ति करने की चेष्टा की गयी है। किन्तु अच्छा तो यह होता कि स्थानीय स्रोतों के आधार पर इतिहास की रचना की जाती तथा सभी उपलब्ध स्रोतों से उस इतिहास की पूर्ति होती।'[१२२] प्रो. शिवशंकर दूबे ने कहा है कि 'भारतीय इतिहास को ठीक से लिखने के लिए तथा तिथिक्रम को ठीक करने के लिए पुरानी भित्तियों को गिराना आवश्यक है। वर्तमान प्रचलित धारणाएँ निराधार और निर्मूल हैं तथा हमारी परम्पराएँ बहुत प्राचीन हैं।'[१२३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य इतिहासकारों की परस्पर बुरी तरह से विरोधी तिथियों के विपरीत पौराणिक-तिथिक्रम प्राचीन भारतीय इतिहास का एक संयत लेखा प्रस्तुत करते हैं, और इनके आधार पर भगवान् बुद्ध की ऐतिहासिक तिथि १८८७-१८०७ ई.पू. सिद्ध हो जाती है। इसलिए, भारतीय इतिहासकारों को अपना बहुप्रचारित कालक्रम ठीक कर लेना चाहिए और भगवान् बुद्ध का जन्म १८८७ ई.पू. तथा उनका निर्वाण १८०७ ई.पू. रखना चाहिए। बुद्ध पर अनुसन्धान करते समय ठीक की गयी प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी इसी प्रकार भारतीय इतिहास-ग्रन्थों में शुद्ध कर लेनी चाहिए, क्योंकि वे प्राचीन भारतीय इतिहास के समांग-वर्णन से ठीक बैठती हैं।[१२४]

हम समझते हैं कि किसी भी राष्ट्र का इतिहास, उसी की अपनी परम्पराओं और उसी देश से उपलब्ध अभिलेखों को सन्देह की दृष्टि से देखते हुए, कभी भी ठीक से खोजा नहीं जा सकता। प्राचीन भारतवर्ष का क्रमबद्ध, प्रामाणिक इतिहास पुराणों में सुरक्षित है। लेकिन उनकी उपेक्षा करके, उन्हें 'माइथोलॉजी' कहकर, अधकचरे विदेशी स्रोतों के आधार पर भारतीय इतिहास निश्चित किया जा रहा है। प्रसंग बहुत लम्बा है। हम इसके विस्तार में नहीं जाना चाहते। सारांश यह है कि पुराणों के आधार पर भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की गहरी आवश्यकता है। तभी हम अपने राष्ट्र के सच्चे गौरव और सच्चे इतिहास के प्रति न्याय कर सकते हैं।[१२५] ☐

सन्दर्भः

१. ब्रह्मपर्व, १४९, ५५-५७

२. 'कल्याण', अप्रैल, १९८९, 'पुराणकथांक', पृ. ३४२, गीताप्रेस, गोरखपुर

३. 'नित्यकर्म पूजा-प्रकाश', प्रकाशकः गीताप्रेस, गोरखपुर

४. "This Hindu nation was born with the Sanatan Dharma, with it it moves and with it it grows. When the Sanatan Dharma declines, then the nation declines, and if the Sanatan Dharma were capable of perishing, with the Sanatan Dharma it would perish. The Sanatan Dharma, that is nationalism."

-Delivered at Uttarpara, Bengal, on 30 May 1909. Text published in the Bengalee, an English-language newspaper of Calcutta, on 01st June; thoroughly revised by Sri Aurobindo and republished in the *Karmayogin* on 19 and 26 June.

५. 'इतिहास-दर्प्रण', १६(२), विजयादशमी, २०११, पृ. १४०, अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना, नयी दिल्ली

६. 'भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि', लेखकः गुंजन अग्रवाल, प्रस्तावना, पृ. ९, प्रकाशकः विभा प्रकाशन, ५० चाहचन्द, इलाहाबाद, २००९

७. 'इतिहास-दर्प्रण', १४(२), विजयादशमी, २००९, पृ. ११५

८. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ४७

९. दीपवंश, परिच्छेद १

१०. महावंश, परिच्छेद ५

११. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ३१

१२. वही, पृ. ४७

१३. वही, पृ. ५०-५१

१४. वही, पृ. ५१

१५. पुराणकारों ने कहा है कि इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता-

'श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥'-भागवतमहापुराण, ९.१.७

इसलिए पुराणकारों ने संक्षिप्तीकरण के विचार से इक्ष्वाकु-वंश के प्रधान-प्रधान राजाओं के ही नाम कहे हैं-

'एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृतः।
वंशे प्रधना एतस्मिन् प्राधन्येत प्रकीर्तिताः॥' - वायुपुराण, उत्तर., २६.११२

जो राजा प्रतापवान् और उल्लेखनीय माने गये हैं, उन्हीं के नाम पुराणों में गिनाये गये हैं। यही कारण है कि विभिन्न पुराणों में उपलब्ध इक्ष्वाकु-राजवंशावली में इक्ष्वाकु (संस्थापक) से लेकर सुमित्र (अन्तिम राजा) तक केवल १४३ राजाओं के नाम गिनाये गये हैं, जबकि दोनों के मध्य लगभग १२,०४,५५,८५४ वर्षों का अन्तर है, अर्थात् एक राजा का राजत्वकाल औसतन ८,४२,३४९ वर्ष जो कि

सम्भव नहीं है। महाराज इक्ष्वाकु का समय वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम चतुर्युग का सत्ययुग था जबकि २४वें राजा मान्धाता १५वें त्रेतायुग में हुए। ७१वें राजा कौसल्यानन्दन श्रीराम का समय २४वाँ त्रेता और द्वापर की सन्धि है। ११२वें राजा बृहद्बल का समय २८वाँ द्वापरयुग (महाभारतकाल) है। किन्हीं दो राजाओं के बीच लाखों वर्ष का अन्तर होना सम्भव नहीं; अतः यह मानना पड़ेगा कि पुराणों में प्राप्त वंशावलियों में प्रधान-प्रधान राजाओं के नाम गिनाये गये हैं।

१६ १. इक्ष्वाकु, २. विकुक्षि, ३. रिपुंजय/पुरंजय/इन्द्रवाह, ४. अनेना, ५. पृथुरोमन्, ६. विश्वसन्धि/विश्वराश्व, ७. चान्द्र/आर्द्र, ८. भद्राश्व, ९. युवनाश्व I, १०. श्रावस्त/श्रावन्तक, ११. वत्सक/वंशक, १२. बृहदश्व, १३. कुवलयाश्व/धुंधुमार, १४. चन्द्राश्व/कपिलाश्व, १५. दृढ़ाश्व, १६. प्रमोद, १७. हर्यश्व I, १८. निकुम्भ, १९. बर्हणाश्व, २०. संकटाश्व/संहताश्व/अमिताश्व, २१. शाश्व/अरुणाश्व, २२. प्रसेनजित् I/सेनजित्, २३. युवनाश्व II/रवणाश्व, २४. मान्धता, २५. पुरुकुत्स, २६. त्रस्द्दस्यु, २७. सम्भूति, २८. अनरण्य, २९. त्रस्दश्व/पृषदश्व, ३०. हर्यश्व II, ३१. वसुमान्/वसुमना/सुमति/सुधन्वा, ३२. त्रिधन्वा, ३३. त्रय्यारुण, ३४. त्रिबन्धन, ३५. सत्यव्रत/त्रिशंकु, ३६. हरिश्चन्द्र, ३७. रोहिताश्व, ३८. हरित, ३९. चंचुभुप, ४०. विजय, ४१. भरुक/रुरुक, ४२. वृक, ४३. बाहु/फल्गुतंत्र, ४४. सगर, ४५. असमंजस, ४६. अंशुमान, ४७. दिलीप I/खट्वांग I, ४८. भगीरथ, ४९. श्रुतसेन/सुहोत्र/श्रुतवान्, ५०. नाभाग, ५१. अम्बरीष, ५२. सिन्धुद्वीप, ५३. अयुतायु, ५४. ऋतुपर्ण, ५५. सर्वकाम, ५६. सुदास/सौदास, ५७. मित्रसह कल्माषपाद, ५८. अश्मक, ५९. उरकाम, ६०. मूलक/नारीकवच, ६१. दशरथ I/शतरथ, ६२. इलिविल/एडविड, ६३. वृद्धशर्मा, ६४. विश्वसह, ६५. दिलीप II/खट्वांग II, ६६. दीर्घबाहु, ६७. सुदर्शन, ६८. रघु, ६९. अज, ७०. दशरथ II, ७१. राम

१७ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५२-५३

१८ 'श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य च।' -वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड

१९ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५३

२० 'तस्य बृहद्बलः योऽर्जुनतनयेभिमन्युना भारतयुद्धे क्षयमनीयत।' -विष्णुमहापुराण, ४४११२

२१ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५३-५४

२२ 'अनन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपंचमके युद्धे कुरुपाण्डवसेनयोः॥' -आदिपर्व, २.१३

२३ 'भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे।
अष्टाविंशद्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत्॥' -प्रतिसर्गपर्व, ३.१.४

२४ 'त्वय्युपस्थिते षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः॥
अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलाभितः।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि॥' -स्त्रीपर्व, २५.४४.४५

२५ 'षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥' -मौसलपर्व, १.१

२६ 'षट्त्रिंशदब्दराज्यं हि कृत्वा स्वर्गपुरं ययुः।' -भविष्यमहापुराण, प्रतिसर्गपर्व, ३.४.३

२७ एकादशसमुल्लास, पृ. २७१

२८ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५४

२९ 'षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयोमहान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजहनुः कालचोदितः॥' -महाभारत, मौसलपर्व, १.१.३

३० 'विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंश पर्व वै केशिसूदनः॥' -वही, मौसलपर्व, २.२०; स्कन्दमहापुराण, प्रभासखण्ड, २३७.३

३१ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५५

३२ 'यदैव भगवान्विष्णोरंशो यातोदिवं द्विज।
वसुदेव कुलोद्भूतस्तैवात्रागतः कलि॥' -विष्णुमहापुराण, ४.२४.१०८

३३ 'यस्मिन कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे॥' -वायुपुराण, १९.४२८.४२९

३४ 'यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिनं सन्त्याज्य मेदिनीम्।
यस्मिन्नेवावतीर्णोऽयं कालकायो बली कलिः॥' -ब्रह्ममहापुराण, २१२.८

३५ 'यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेत सामधर्महेतुः कलिश्न्ववर्ततः॥' -भागवतमहापुराण, १.१६.३६
'यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम्।
त दैवेहानुवत्तोऽसावधर्म्मप्रभवः कलिः॥' -वही, ११८.६
'यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नैव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥' -वही, १२.२.३३

३६ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५५

३७ 'षष्टब्दानां षष्टिदाव्यतीतास्त्रश्च युगपादाः।
त्रयधिकाविंशति रबदास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः॥' -आर्यभट्टीयम्, कालक्रियापाद, श्लोक १०

३८ 'याताः षणमन्वो युगानि भमितान्यन्यद्युगांधित्रायं।
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः॥' -सिद्धान्तशिरोमणि, मध्यमाधिकार, कालमानाध्याय, २८

३९. ‘वर्षे सिन्धुर्दर्शनाम्बरगुर्णेर्याते कलौ संमिते।
मासे माधवसंमितेऽत्रविहितो ग्रन्थ क्रियोपक्रमः॥’ -ज्योतिर्विदाभरण, २२.२१

४०. 'According to the astronomical calculations of the Hindoos, the present period of the world, *Kaliyug*, commenced 3102 years before the birth of Christ, on the 20th of the February, at 2 hours, 27 minutes, and 30 seconds, the time being thus calculated to minutes and seconds. They say that a *conjunction of the planets* then took place, and their tables show this conjuction.'

- '*The theogony of the Hindoos; WITH THEIR SYSTEM OF PHILOSOPHY & COSMOLOGY: AN ESSAY*', p.34, by Count Magnus Fredrik Ferdinand Bjornstjerna (grefve), Published by John Murray, London, 1844.

४१. ‘चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्।
इमां तु नाभिजानेऽहममावस्यां ज त्रयोदशीम्॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्।
मासवर्ष पुनस्तीव्रमासेत् कृष्ण चतुर्दशीम्॥’ -महाभारत, भीष्मपर्व, ३.३२.३३

४२. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ५९

४३. वही, पृ. ५९-६०

४४ १. बृहद्रण/बृहद्व्य/बृहत्क्षण/बृहत्क्षत्र, २. उरुक्रिय/उरुक्षय, ३. वत्सवृद्ध/वत्सव्यूह, ४. प्रतिव्योम, ५. भानु, ६. दिवाकर/दिवार्क, ७. सहदेव, ८. बृहदश्व, ९. भानुमान्, १०. प्रतीकाश्व/प्रतीताश्व, ११. सुप्रतीक, १२. मरुदेव, १३. सुनक्षत्र/सुनक्षण, १४. पुष्कर/किन्नर, १५. अन्तरिक्ष, १६. सुतपा/सुतपस्/सुपर्ण/सुषेण, १७. अमित्रजित्, १८. बृहद्राज, १९. बर्हि/धर्मी, २०. कृतंजय, २१. रणंजय, २२. संजय, २३. शाक्य, २४. शुद्धोधन, २५. सिद्धार्थ गौतम (राज्य नहीं किया), २६. राहुल (लांगल), २७. प्रसेनजित् III, २८. क्षुद्रक, २९. रणक/कुण्डक, ३०. सुरथ, ३१. सुमित्र (अन्तिम राजा)

४५. उपोद्घात, अध्याय ४

४६. स्कन्ध ९, अध्याय १२

४७. अंश ४, अध्याय २२

४८. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६०

४९. वही, पृ. ६०

५०. भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, १९४८, पृ.२१

५१. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६०-६१

५२. ‘पुलिकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति।’ -मत्स्यमहापुराण, २७२.१

५३. ‘इत्येतेऽत्रिंशदुत्तरमब्दशतं पंच प्रद्योताः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति।’ -विष्णुमहापुराण, ४.२४.८

५४. ‘नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पंच प्रद्योतना इमे।
अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवी नृपाः॥’ -भागवतमहापुराण, १२.१.४

५५. मत्स्यमहापुराण, अध्याय २७२; विष्णुमहापुराण के अनुसार ३६२ वर्ष

५६. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६२

५७. ‘अजातशत्तुनो अट्ठमे वस्से मुनि निव्वुते।’ -महावंश, परिच्छेद २

५८. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६३

५९. ‘भगवादि आसीटिको अहमपि आसीटिको’ -मज्झिमनिकाय

६०. ‘भगवादि आसीटिको अहमपि आसीटिको’ -महापरिनिव्वाण सुत्त, २.३.१६

६१. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६३

६२. वही, पृ. ६३

६३. वही, पृ. ६३

६४ ‘महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्व्वक्षत्रान्तको नृपः॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्या शूद्रयोनयः।
एकराट् स महापद्मो एकच्छत्रो भविष्यति॥
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिव्याश्च भविष्यति।
सर्व क्षत्रमथोत्साद्य भाविनार्थेन चोदितः॥
सुकल्पादिसुताह्यष्टौ समाद्वादश ते नृपाः।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्॥’ -मत्स्यमहापुराण, २७२.१७.२०

६५. ‘महापद्मपुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति॥’ -विष्णुमहापुराण, ४.२४.२५

६६. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६४

६७ 'The Chinese accounts assign 850 B.C. for Ashoka. The interval between Buddha's Nirvana and Ashoka's death is 371 years.' - '*History of Ancient Sanskrit Literature*', Allahabad Edition, p.142.

६८. भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६५

६९. वही, पृ. ६५

७०. *Bibliotheca historica (Library of World History)*, translated by Old Father.

७१. (a) *On the Fortune or the Virtue of Alexander the Great,*
(b) *Parallel Lives: The Life of Alexander the Great.*

७२. 17-Vols. work *Geographica.*

७३. *Anabasis Alexandri (The Campaigns of Alexander)*, translated by Aubrey de Selincourt.

७४ *Historiarum Philippicarum libri XLIV.*

७५ *Historiae Alexandri Magni (The History of Alexander)*, translated by J.S. Yardley.

७६ *Naturalis Historia (Natural History).*

७७ 'Three Greek ambassadors are known by name: Megasthenes, ambassador to Chandragupta; Deimachus, ambassador to Chandragupta's son Bindusara; and Dyonisius, whom Ptolemy Philadelphus sent to the court of Ashoka, Bindusara's son.'

-*The Shape of Ancient Thought: Comparative studies in Greek and Indian Philosophies'*, by Thomas McEvilley, p.367.

७८ *'Ancient India As Described By Megasthenes and Arrian'*, Published by Thacker, Spink, 1877.

७९ *'Indica by Megasthenes'*, Edited by E.A. Schwanbeck, Published by Sumptibus Pleimesii, bibliopolae, 1846.

८० *'Dictionary of Greek and Roman Biography and Mythology'*, William Smith (ed), 1870, Vol 3, pp.705-6.

८१ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ६७

८२ *'Early History of India'*, p.43; *'Asiatic Researches'*, Vol. IV, p.11.

८३ परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, अप्रैल १९६८, पृ. २७

८४ 'This wrong identification of the Maurya Chandragupta as the contemporary of the Alexander visited the entire chronology of the ancient history of Bharat including the date of Lord Buddha---Due to this wrong identification the ancient history of Bharat has been shifted by a difference of 12 centuries. Alexander's invasion took place in 326 B.C. (and) it is Chandragupta of the Gupta dynasty who belongs to 327-320 B.C.'

-*'The Age of Buddha, Milinda and King Amtiyoka and Yoga Purana'*, pp. 1-2.

८५ 'पुष्यमित्रस्सेनापतिस्स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः॥' -विष्णुमहापुराण, ४.२४.३४

८६ 'तेषामन्ते पृथिवीं दश शुंगा भोक्ष्यन्ति॥' -वही, ४.२४.३३

८७ (१) 'देवभूतिं तु शुंगराजानां व्यसनिनं तस्यैवामात्यः काण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य स्वयमवनीं भोक्ष्यति॥' -विष्णुमहापुराण, ४.२४.३९

(२) 'अतिस्त्रीसंगरतम् अनंगपरवशं शुगम् अमात्यो वसुदेवोदेवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यंजनया वीतजीवितम् अकारयत्॥' -हर्षचरितम्, षष्ठ उच्छ्वास, पृ. ४७७

८८ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ७०

८९ *Library of World History* XVII.93-2; *The History of Alexander, Parallel Lives: The Life of Alexander the Great*, 62.3.

९० डॉ. देवसहाय त्रिवेद के निम्नलिखित लेखों के आधार पर-

(क) Sheet Anchor of Indian History.

(ख) *'Anals of Bhandarkar Oriental Research Institute'*, Vol.XXIII, pp. 82-91.

(ग) भारतीय इतिहास का आधार, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग

(घ) अनुग्रह-अभिनन्दन ग्रन्थ, पटना

९१ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ७२

९२ परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जनवरी १९६८, पृ. ४९

९३ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ७२

९४ परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जनवरी १९६८, पृ. ३५

९५ 'The identification of Gupta-Chandragupta of Magadh as the contemporary of Alexander tallies with all the dates of Ancient events noted in the sacred and secular literature of Ancient times of Hindu, Buddhas and Jains.'

-*'The Age of Buddha, Milinda and King Amtiyoka and Yoga Purana'*, p.3

९६ भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ८५

९७ *Reestablishing the Date of Lord Buddha*, by Stephan Knapp, published at http:èkèkwww.stephenknapp.com

९८ भारत के इतिहास में विकृतियाँ : क्यों, कैसे और क्या-क्या?, पृ. १२९

९९ *'Chronology of Ancient Bharat'*, Pt.IV, Chapter II

१०० भगवान् बुद्ध की जन्म-तिथि और उनका काल : १७९३ ई.पू., प्रदीप (हिन्दी दैनिक) पटना, २५ मई, १९६४ ई.; भारत का नया इतिहास, पृ. १०-१५

१०१ भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, १९४८, पृ. २२

१०२ *'The Age of Buddha, Milinda and King Amtiyoka and Yoga Purana'*, Published by Pt. Kota Venkatchelam, 23-34-18, 2nd floor, Manepallivari Street, S.N. Puam, Vijaiwada (Andhra Pradesh), 1956

१०३ *' Age of Lord Buddha'*, Published by Kota Nityananda Sastri, 23-34-18, 2nd floor, Manepallivari Street, S.N. Puam, Vijaiwada (Andhra Pradesh), 2006

१०४ 'Lord Buddha's Antiquity Underestimated by over 1300 years', Pub-

lished in *'Some Blunders of Indian Historical Research'*, Published by Surya Prakashan, Delhi, 1966

१०५. *'Dates of the Buddha'*, Published by Akhil Bhartiya Itihaas Sankalan Yojna Samiti, Haidarabad, 1987.

१०६. **भारत के इतिहास में विकृतियाँ : क्यों, कैसे और क्या-क्या?, पृ. १२८-१२९, प्रकाशक : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली, २००३**

१०७. **भगवान् बुद्ध का काल : एक ऐतिहासिक विवेचन, परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जनवरी १९६८, पृ. ४४-५०**

१०८. 'The Vedic Buddha Date', Published in www.vnn.org

१०९. 'Here lies Indian Shrmanacharya from Bodh Gaya, a Sakya monk taken to Greece by his Greek pupils and the tomb marks his death about 1000 B.C.' -*Indian Architecture*

११०. **भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ८३**

१११. **भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, पृ. २४६-२४७, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन, नयी दिल्ली, २००३**

११२. **भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ८०**

११३. **वही, पृ. ८१**

११४ **परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जनवरी १९६८, पृ. ३८**

११५. 'India has its well written history and the Puranas exhibit that history and chronology. Puranas are not pious frauds.'

-*History of classical Sanskrit Literature*, 1937. p. 2

११६. 'To try fixing ancient historical chronology from Athens, Kandy, London or Tokyo dubbing or presuming the Indian Puranas to be frauds is at best a very squint-eyed view of Indian History.'

-*Some Blunders of Indian Historical Research*, p p. 206-207

११७. 'Modern European writers have inclined to disparge unduly the authority of the Puranic lists, but closer study find in them, much genuine and valuable historical tradition.'

-*Early History of India*, p. 2

११८. *India in Greece: or, Truth in mythology: containing the sources of the Hellenic race, the colonisation of Egypt and Palestine, the wars of the Grand Lama, and the Bud'histic propaganda in Greece*, Published by J.J. Griffin, 1852.

११९. *'Modern Review'*, June 1936. p. 501

१२०. **भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ८७**

१२१. 'All Jains and Hindu agree that in 527 B.C. Vardhamana Mahavira died and that Kumaril Bhatta (557-493 B.C.) was vehemently attacking the Jains all over India and was followed by Shankaracharya (509-477 B.C.). The interval of time between Shankaracharya and the Buddha was about 1400 years. Hence the Buddha did not live in the 6th Century B.C. The scanty accounts kept by the inhabitats of Ceylon are no authority for fixing the date of the Buddha and for calculating all dates in Indian history on that basis.The Japanese acqured Buddhism in the 7th century A.D. Hence the Japanese calender is no genuine authority for fixing the date of the Buddha as it is only second-hand information. The western scholars piled upon conjecture according to their whims and fancies. The history now taught in Indian school is simply a heap of such misrepresentions and baseless conjectures.'

-*'Dates in Ancient History of India'*, pp. 112-114

१२२. **परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, जनवरी १९६८, पृ. ३२-३३**

१२३. **वही, पृ. ३४**

१२४ **भगवान् बुद्ध और उनकी इतिहास-सम्मत तिथि, पृ. ८९**

१२५. **वही, पृ. ८९**